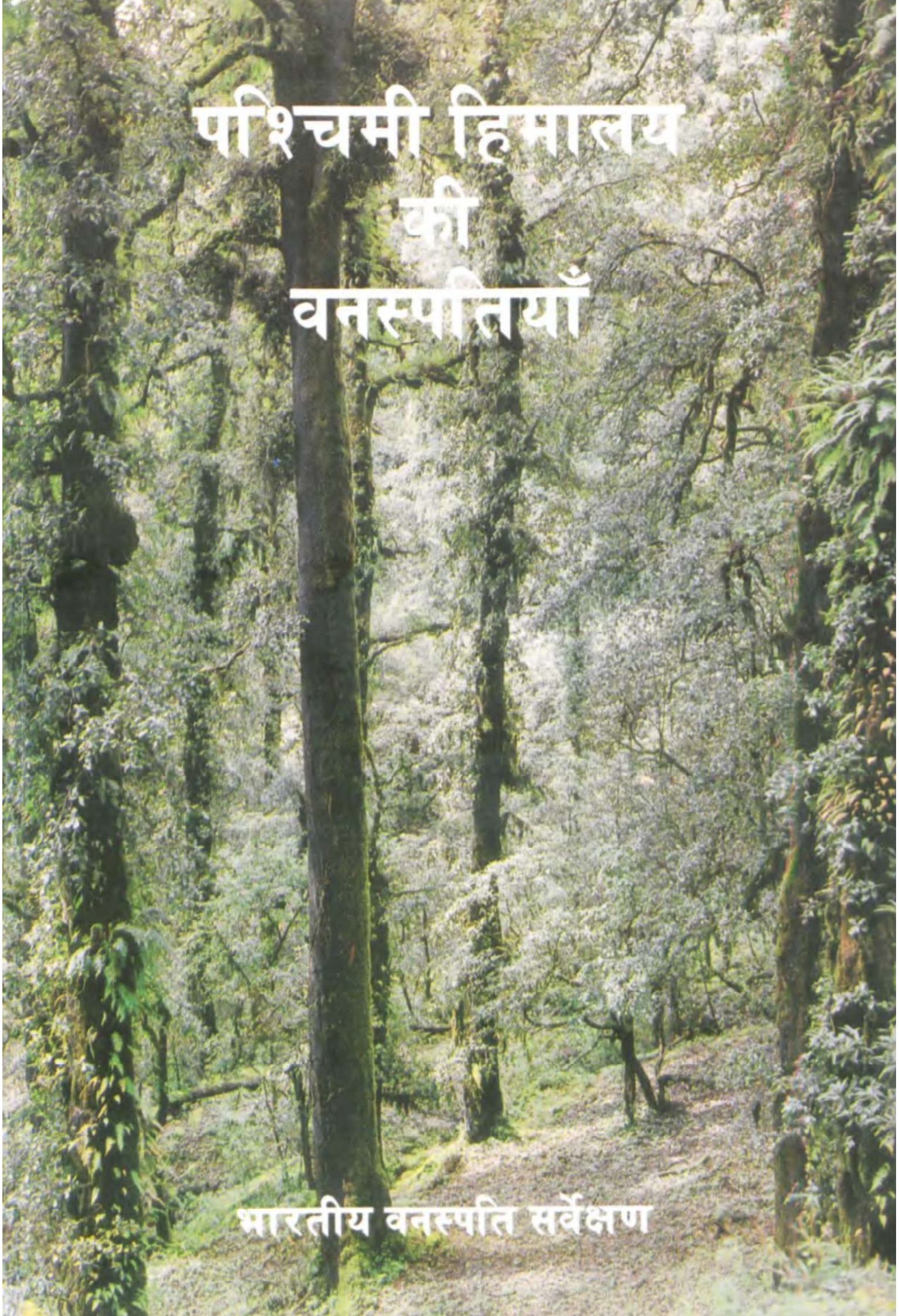
पश्चिमी हिमालय
की
वनस्पतियाँ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

पश्चिमी हिमालय की वनस्पतियाँ

पश्चिमी हिमालय की वनस्पतियाँ

संकलन एवं संपादन

देवेन्द्र कुमार सिंह

भगवती प्रसाद उनियाल

सहयोग

श्री कृष्ण मूर्ति एवं जय राम शर्मा

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

© भारत सरकार, 1994

मूल्य :

मुख पृष्ठ : शीतोष्ण उपहिमाद्रि क्षेत्रों में पाये जाने वाले *एबीज* - *रहोडोडेन्ड्रोन* के मिश्रित वन

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पी-8, ब्रेबोर्न रोड़, कलकत्ता - 700001 द्वारा प्रकाशित एवं शिवा आफसेट प्रेस, 14 ओल्ड कनाट प्लेस देहरादून - 248001 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

हिमालय प्राकृतिक सौन्दर्य व वानस्पतिक सम्पदा की दृष्टि से न केवल समृद्ध है, वरन् पर्यावरण सन्तुलन का आधार भी है। हिमालय के विभिन्न भागों में पाये जाने वाले विभिन्न जीव-जन्तुओं एवं वनस्पतियों की जहां एक ओर पर्यावरण सन्तुलन में महत्वपूर्ण भूमिका है, वहीं दैनिक जीवन में इनकी औषधीय और आर्थिक उपयोगिता के लिए भी सम्पूर्ण मानव जाति हिमालय की ऋणी है। अपनी अमूल्य एवं दुर्लभ वानस्पतिक सम्पदा के अपार भण्डार के लिए पश्चिमी हिमालय विश्व विख्यात है।

दिसम्बर, 1967 में संसद में राजभाषा सम्बन्धी एक संकल्प पारित किया गया था, जिसे 18 जनवरी, 1968 में अधिसूचित किया गया। इस संकल्प के अनुसार हिन्दी के प्रचार-प्रसार, विकास तथा सरकारी कामकाज में इसके उत्तरोत्तर प्रयोग में गति लाने का आह्वान किया गया था। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण का उत्तरी परिमण्डल, देहरादून राजभाषा नीति के पूर्ण अनुपालन के लिए न केवल वचनबद्ध हैं, अपितु निरन्तर प्रयासरत भी है। इसके लिए यह परिमण्डल कार्यालय के कामकाज में हिन्दी के प्रयोग में होने वाली प्रगति के लिए संसदीय राजभाषा समिति की प्रशंसा का पात्र भी रहा है।

मुझे प्रसन्नता है कि 30 जुलाई, 1990 को भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल, देहरादून के निरीक्षण के अवसर पर संसदीय राजभाषा समिति की तीसरी उप-समिति के माननीय सदस्यों को दिये गये आश्वासनों का अनुपालन करते हुए "पश्चिमी हिमालय की वनस्पतियाँ" के प्रकाशन को मूर्त रुप प्रदान किया जा सका है। आशा है कि राजभाषा समिति के अनुपालन के साथ-साथ यह पुस्तक पर्यावरण एवं वनस्पति के अध्ययन के क्षेत्र में शोध अध्येताओं तथा इन विषयों में रुचि रखने वाले जनसाधारण के लिए लाभदायक सिद्ध होगी।

प्रभात कुमार हाजरा
निदेशक
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

संपादकीय

वनस्पतियों के बिना जीवन की कल्पना ही व्यर्थ है। सघन वनों से युक्त, अनन्योपयोगी वनस्पतियों का भण्डार पश्चिमी हिमालय अपनी अतुल सम्पदा के लिए सदैव से विख्यात रहा है। इस वन सम्पदा के निर्मम व अविवेकपूर्ण दोहन के फलस्वरुप कुछ वनस्पतियाँ विरल हो गई हैं व कुछ लुप्त होने के कगार पर हैं। इनका संरक्षण आवश्यक है। इसके लिए सरकारी स्तर पर किये जा रहे प्रयासों के साथ-साथ जनसाधारण की भागेदारी भी आवश्यक है। जन साधारण को वनस्पतियों का महत्व समझाना होगा व उनके अभाव से उत्पन्न होने वाली समस्याओं की और ध्यान आकृष्ट कराना होगा। ऐसा ही एक प्रयास है "पश्चिमी हिमालय की वनस्पतियां।

वृक्षो रक्षित रक्षितः। कहने का तात्पर्य है कि यदि वृक्ष सुरक्षित हैं तो जीवन सुरक्षित है। वनों और वन्य जीवन के बीच परस्पर सम्बन्ध की भरपूर झलक हमें पौराणिक काल से ही हमारी संस्कृति में मिलती है, जो कि इस पुस्तक में सम्मिलित दो लेखों, "बाल्मीकि रामायण में वन और वन्य जीवन" तथा "कालीदासीय नाटकों में वन और वन्य जीवन" से स्पष्ट है। हमें भूलना न होगा कि " हिमालय सुरक्षित है तो मैदानी भाग सुरक्षित हैं और सुरक्षित है हमारा पर्यावरण"। आशा है पुस्तक में प्रकाशित लेख जन जन को वनस्पतियों के महत्व से परिचित कराने में व हिमालयी परितन्त्र की अस्थिरता से होने वाली हानि के प्रति सजग रखने में सफल होंगे।

प्रस्तुत पुस्तक में पौधों के वानस्पतिक नाम, पाठकों की सुविधा की दृष्टि से उनके प्रचलित उच्चारणों के अनुरुप दिये गये हैं।

इस पुस्तक को प्रस्तुत रुप देने में, डा0 सर्वेश कुमार, सिक्किम हिमालय परिमण्डल, गंगटोक, व इस परिमण्डल के सभी कर्मचारियों व अधिकारियों का परोक्ष अथवा अपरोक्ष योगदान सराहनीय है।

संपादक

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,
उत्तरी परिमण्डल, देहरादून
4 फरवरी, 1994

विषय - सूची

1.	भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल, देहरादून : एक पूर्वावलोकन	देवन्द्र कुमार सिंह एवं भगवती प्रसाद उनियाल	1
2.	पश्चिमी हिमालयः एक दृष्टि	देव राज अग्रवाल	10
3.	पश्चिमी हिमालय में पादप सर्वेक्षण	श्री कृष्ण मूर्ति	23
4.	*पश्चिमी हिमालय में वनस्पतीय विविधता*	*भगवती प्रसाद उनियाल*	29
5.	पश्चिमी हिमालय का शीत मरुस्थल-वनस्पति एवं वानस्पतिक विविधता	श्री कृष्ण मूर्ति	34
6.	जनपद पिथौरागढ़ (उ0प्र0) का वानस्पतिक विवेचन एवं पर्यावरण संरक्षण	बिपिन बलोदी	39
7.	पश्चिमी हिमालय के अनावृतबीजी पादप	देवयानी बसु	49
8.	पश्चिमोत्तर हिमालय में एक रोचक किन्तु अल्प-ज्ञात अपुष्पी पादप समूह "लिवरवर्ट्स" की विविधता	देवेन्द्र कुमार सिंह	52
9.	पश्चिमी हिमालय के "काष्ठ को विगलित" करने वाले कवक (अफिल्लोफोरेल्स) व उनकी विविधता	जय राम शर्मा	56
10.	नन्दा देवी जीवमण्डल सुरक्षित क्षेत्र एवं पर्यावरण संरक्षण	प्रभात कुमार हाजरा एवं बिपिन बलोदी	62
11.	राष्ट्रीय उद्यान फूलों की घाटी एव हेमकुण्ड की वनस्पति	बी0एम0 वाधवा, सी0एल0 मल्होत्रा, रेशमा माथुर एवं आर0आर0 राव	66
12.	पश्चिमी हिमालय की विषैली किन्तु उपयोगी वनस्पति "*एकोनाइटम*"	सुरेन्द्र सिंह एवं पूरन चन्द्र विश्वकर्मा	74
13.	उत्तर पश्चिमी हिमालय के स्थानिक, विरल एवं आर्थिक रुप से उपयोगी पर्णांग (फर्न)	सुरेन्द्र सिंह एवं बिपिन बलोदी	76
14.	पौड़ी तथा खिर्सू (गढ़वाल) की अल्प परिचित वनस्पतियों का अध्ययन	अनीस अहमद अन्सारी एवं घना नन्द भदोला	81
15.	पश्चिमी हिमालय के उपयोगी पौधे और उनका संरक्षण	सी0एल0 मल्होत्रा एवं बिपिन बलोदी	84
16.	ईंधन के रुप में उपयोग किये जाने वाले पौधे	भोला दत्त नैथानी	88
17.	पौड़ी गढ़वाल क्षेत्र में पाई जाने वाली खर-पतवार वनस्पतियों का आर्थिक महत्व	घना नन्द भदोला एव अनीस अहमद अन्सारी	90
18.	पश्चिमी हिमालय के कुछ खाद्योपयोगी "खुम्ब" (मशरुम)	प्रदीप कुमार घोष एवं पूरन चन्द्र विश्वकर्मा	96

19.	फसली पौधों के स्वजात सम्बन्धी	सर्वेश कुमार	98-99
20.	वाल्मीकि रामायण में वन और वन्य जीवन	गिरिजा शंकर त्रिवेदी	100-110
21.	पश्चिमी हिमालय के कुछ संरक्षित क्षेत्र	पूरन चन्द्र पन्त	111-117
22.	पर्यावरण एवं प्राकृतिक सम्पदा का संरक्षण	हर्ष चौधरी	118-120
23.	प्रदूषण का पता लगाने में हरितोद्भिदों का योगदान	जे0 एन0 वोहरा एवं सर्वेश कुमार	121-122
24.	कालिदासीय नाटकों में वन एवं वन्य जीवन	अमिता अग्रवाल	123-131
25.	पर्यटक गतिविधियों द्वारा जम्मू-कश्मीर राज्य की वानस्पतिक सम्पदा का ह्रास	श्री कृष्ण मूर्ति, सर्वेश कुमार एवं भोला दत्त नैथानी	132-138
26.	ऋणी तेरे	भगवती प्रसाद उनियाल	139

लेखक

1. अनीस अहमद अन्सारी : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, येरकाड - 636602.

2. अमिता अग्रवाल : दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक महाविद्यालय, देहरादून - 248001.

3. आर0 आर0 राव : राष्ट्रीय वनस्पति अनुसन्धान संस्थान, लखनऊ - 226001.

4. गिरिजा शंकर त्रिवेदी : दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक महाविद्यालय, देहरादून - 248001

5. घना नन्द भदोला : प्रायोगिक वनस्पति उद्यान, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पौड़ी - 246001.

6. जय राम शर्मा : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल, देहरादून 248195.

7. जे0 एन0 वोहरा : 289, न्यू हाउसिंग बोर्ड कालोनी, करनाल 132001.

8. देव राज अग्रवाल : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल, देहरादून - 248195.

9. देवयानी बसु : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल, देहरादून - 248195.

10. देवेन्द्र कुमार सिंह : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल, देहरादून - 248195.

11. प्रदीप कुमार घोष : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल, देहरादून - 248195.

12. पूरन चन्द्र पन्त : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल, देहरादून - 248195.

13. पूरन चन्द्र विश्वकर्मा : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल, देहरादून 248195.

14. प्रभात कुमार हाजरा : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कलकत्ता 700001.

15. बिपिन बलोदी : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल, देहरादून 248195.

16. बी0 एम0 वधवा : 676, ईस्टर्न एवेन्यू, न्यूबर्ग पार्क इलफोर्ड, एसेक्स, आईजी 2 6 पीएफ यू0 के0

17. भगवती प्रसाद उनियाल : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल, देहरादून 248195.

18. भोला दत्त नैथानी : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल, देहरादून 248195.

19. रेशमा माथुर : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल, देहरादून 248195.

20. श्री कृष्ण मूर्ति : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल, देहरादून 248195.

21. सर्वेश कुमार : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सिक्किम हिमालय परिमण्डल, गंगटोक 737101.

22. सी0 एल0 मल्होत्रा 150/12 ए-6 गोविन्द गढ, देहरादून 248001.

23. सुरेन्द्र सिंह भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल, देहरादून 248195.

24. हर्ष चौधरी : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, अरुणाचल प्रदेश परिमण्डल, इटानगर 791111.

पश्चिमी हिमालय का एक मिश्रित वन।

नन्दा देवी जैव मण्डलीय सुरक्षित क्षेत्र में शकुधारी वन का एक दृश्य

गढ़वाल (चमोली) का प्रसिद्ध बुग्याल वेदिनी

एक शीत मरुस्थलीय परिदृश्य

साउस्सुरेआ आबवल्लाटा (डीसी0) एजवर्थ पवित्र "ब्रह्मकमल"

साउस्सुरेआ सिम्पसोनियाना (फील्ड0 एव गार्ड0) लिपशिच्ज 4400 मी0 की ऊचाई से ऊपर पाई जाने वाली एक दुर्लभ जाति।

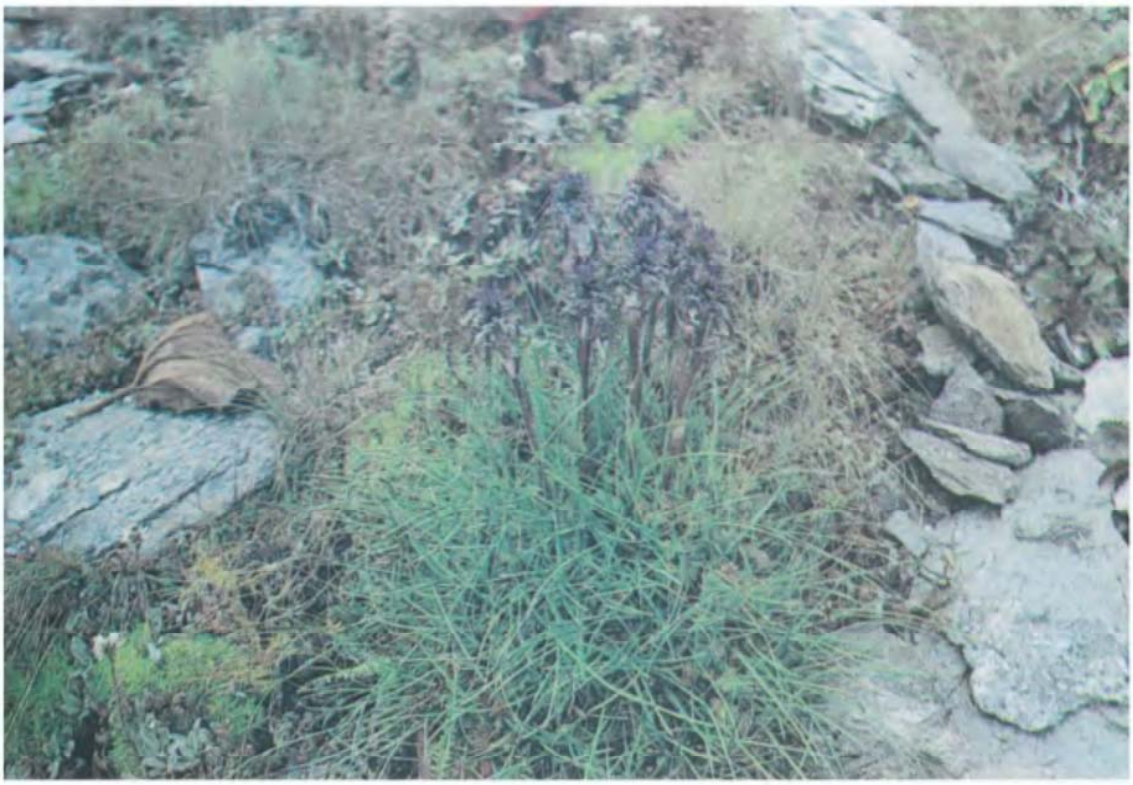

साउस्सुरेआ ग्रेमिनीफोलिया वालिच बुग्यालों की सुन्दरता

रिहयम मृग्क्रॉफ्टियानम गॉयल प्रकृति का अनुपम वरदान, एक औषधीय पौधा

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल, देहरादून: एक पूर्वावलोकन

देवेन्द्र कुमार सिंह एवं भगवती प्रसाद उनियाल

उत्पत्ति से ही प्राणिमात्र वनस्पति सम्पदा पर आश्रित है। वनस्पतियाँ न केवल हमें भोजन देती हैं, अपितु प्राणवायु व जल की आपूर्ति भी करती हैं। किन्तु समय के साथ इनकी बढ़ती हुई मांग व संकुचित होते भण्डार के कारण यह आवश्यक हो गया है कि हम विभिन्न प्रकार से उपयोगी एवं अन्य पादप जातियों के नये स्रोतों का पता लगायें। इसके साथ ही इस हरित सम्पदा के विवेकपूर्ण दोहन के लिए इनके विषय में कुछ मौलिक जानकारियाँ जैसे, सही परिचय, परिमाण, उत्पत्ति के स्थल व वितरण आदि पूर्वापेक्षित हैं। इन्ही उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुये, भारत की वनस्पति सम्पदा के अध्ययन व मूल्यांकन हेतु 13 फरवरी सन् 1890 में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की स्थापना की गई। कालान्तर में सन् 1954 में इसके पुर्नगठन के साथ साथ कलकत्ता में मुख्यालय एवं देश के पादपभौगोलिक दृष्टिकोण से चार महत्वपूर्ण क्षेत्रों में परिमण्डलों की स्थापना हुई। ये परिमण्डल थे: पूर्व में शिलांग, पश्चिम में पुणे, दक्षिण में कायेम्बटूर व उत्तर में देहरादून।

उत्तरी परिमण्डल

देश के उत्तरी तथा पश्चिमोत्तर भाग में स्थित तथा गिरिराज हिमालय के सबसे भव्य एवं मनोरम स्थलों से संपन्न उत्तरी परिमण्डल, 1 मार्च सन् 1956 को कलकत्ता में अस्तित्व में आया, तथा 1 अगस्त 1956 में 63, राजपुर मार्ग, देहरादून स्थित एक किराये के भवन से अपना कार्य आरम्भ किया। सन् 1967 में इसे 3-लक्ष्मी मार्ग स्थित एक अन्य किराये के भवन में स्थानान्तरित किया गया, पर आज यह 192-कौलागढ़ मार्ग पर 16 एकड़ के परिसर में स्थित अपने विशाल पादपालय एवं कार्यालय भवन में आ गया है।

स्थापना के समय इस परिमण्डल का कार्यक्षेत्र उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, पंजाब एवं हरियाणा तक विस्तृत था। कालान्तर में इलाहाबाद में मध्य परिमण्डल (1962) व जोधपुर में शुष्क क्षेत्र परिमण्डल (1972) की स्थापना के बाद इसका अधिकार क्षेत्र घटकर केवल पश्चिमोत्तर उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, व चण्डीगढ़ के 80 जिलों तक ही सीमित रह गया है।

अपने समकालीन अन्य तीन परिमण्डलों, जिन्हें कि विरासत में प्रचुर मात्रा में सम्बन्धित क्षेत्रों के पादपीय प्रतिदर्शों का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक संग्रह प्राप्त हुआ, के विपरीत उत्तरी परिमण्डल को प्रारम्भ से ही अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ा पर इसके प्रथम प्रभारी अधिकारी, डा० एम० अनन्तस्वामी राव, के कुशल नेतृत्व में शीघ्र ही इस कमी को पूरा कर लिया गया तथा हिमालय के

दुर्गम एवं अन्य दूर दराज के क्षेत्रों से पादप प्रतिदर्शों को संग्रहीत कर यहाँ के पादपालय की स्थापना की गई।

मुख्य उपलब्धियाँ: उद्भव काल से ही यद्यपि उत्तरी परिमण्डल में पादप सर्वेक्षण की गतिविधियाँ मुख्यतः हिमालय क्षेत्र में ही केन्द्रित रहीं. पर इसके अधिकार क्षेत्र के विभिन्न स्थानों के पादपीय प्रतिदर्शों से पादपालय को सज्जित करने के प्रयास भी जारी रहे। यहाँ के वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अनेकों पादप समृद्ध क्षेत्रों में 175 से अधिक व्यापक सर्वेक्षणों के फलस्वरुप अब तक लगभग 1,00,000 नमूने संग्रहित किये जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ के वैज्ञानिकों ने कई पर्वतारोहण अभियानों, जैसे भारतीय वायु सेना पर्वतारोहण अभियान (1959), भारत सोवियत अभियान (1960), नीलकण्ठ अभियान (1962) रुपकुण्ड अभियान (1963), त्रिशूल अभियान (1965), केदारनाथ पर्वत अभियान (1967), हेमकुण्ड लौकपाल अभियान, भारतीय थल सेना के इंजीनियरी कोर का नन्दा देवी का वैज्ञानिक एवं पारिस्थितिक अभियान (1993), में भी भाग लेकर यहाँ की वनस्पति सम्पदा का अध्ययन किया। इस प्रकार इस परिमण्डल के अंतर्गत आने वाले जिन क्षेत्रों में सर्वेक्षण कार्य लगभग पूर्ण कर लिया गया है उनमें प्रमुख हैं हिमाचल प्रदेश, पंजाब, लद्दाख, लाहुल व स्पिति के शीत मरुस्थल तथा जम्मू व कश्मीर एवं पर्वतीय उत्तर प्रदेश के अनेक पादप समृद्ध क्षेत्र।

इसके अतिरिक्त जिन संरक्षित क्षेत्रों का वानस्पतिक अध्ययन इस परिमण्डल में किया गया उनमें प्रमुख हैं नन्दा देवी जैवमण्डलीय सुरक्षित क्षेत्र, राजाजी राष्ट्रीय उद्यान, कारबेट राष्ट्रीय उद्यान, दुधवा राष्ट्रीय उद्यान, उत्तराखण्ड अथवा फूलों की घाटी राष्ट्रीय उद्यान, इत्यादि।

इन सभी सर्वेक्षणों के दौरान किये गये संग्रहीत नमूनों के अध्ययन के फलस्वरुप इस परिमण्डल के वैज्ञानिकों द्वारा अब तक 16 पुस्तकें एवं लगभग 300 शोध पत्र प्रकाशित किये जा चुके हैं, जिनमें निम्न प्रकाशन उल्लेखनीय है:

1. इल्लस्ट्रेशन्स आफ वेस्ट हिमालयन प्लान्ट्स (एम0 ए0 राव, 1963)
2. हाई अल्टीट्यूड प्लान्ट्स ऑफ वेस्टर्न हिमालय (एम0 ए0 राव, 1975)
3. फ्लोरा आफ बशहर हिमालय (एन0 सी नायर, 1977)
4. फ्लोरा ऑफ पंजाब प्लेन्स (एन0 सी0 नायर, 1978)
5. हर्बेसियस फ्लोरा ऑफ देहरादून (सी0 आर0 बाबू, 1977)
6. फ्लोरा ऑफ अपर गंगेटिक प्लेन्स एड ऑफ द एडजेसेंट शिवालिक एंड सब हिमालयन ट्रेक्ट्स चेकलिस्ट (एम0 ए0 राव, 1969)
7. हिप्नोब्रायेल्स सब-आर्डर लिस्कने (मसाई) ऑफ द हिमालयाज (जे0 एन0 वोहरा, 1983)
8. फ्लोरा ऑफ कार्बेट नेशनल पार्क (पी0 सी पन्त, 1986)
9. फ्लोरा ऑफ चमोली डिस्ट्रिक्ट खण्ड प्रथम व द्वितीय (बी0डी0 नैथानी, 1984)
10. फ्लोरा ऑफ हिमाचल प्रदेश-एनालिसिस खण्ड प्रथम, द्वितीय व तृतीय (एच0 जे0 चौधरी व बी0एम0 वाधवा, 1984)
11. ब्रह्मकमल एंड इट्स एलाइज द जीनस *सास्सुरेआ* (पी0 के हाजरा, 1988)
12. जेन्शियानेसी ऑफ वेस्टर्न हिमालय (सुनीता गर्ग, 1987)

13. फ्लोरे इंडिके इन्यूमरेशियों एस्टरेसी (आर0 आर0 राव व अन्य, 1988)
14. कम्पाइलेशन आफ प्लान्ट रेकार्डस (बी0पी0 उनियाल व डी0 बसु, 1989)
15. ग्रासेज ऑफ उत्तर प्रदेश चैक लिस्ट (बी0 पी उनियाल व अन्य, 1994)
16. बॉटनी ऑफ नन्दा देवी नेशनल पार्क (पी0 के हाजरा, 1983)

इसके साथ ही इस परिमण्डल से विज्ञान जगत के लिए वनस्पतियों की लगभग 60 नयी जातियों, उपजातियों एवं प्रभेद की भी खोज की गई। साथ ही 10 शोध छात्रों ने पादपजातीय एव वर्गिकी के विभिन्न पक्षों का अध्ययन कार्य पूर्ण कर "डाक्टरेट" की उपाधि अर्जित की।

उत्तरी परिमण्डल ने अपने अधीनस्थ क्षेत्रों में चलने वाली विभिन्न परियोजनाओं, विशेषकर पन-बिजली एवं सिंचाई, जैसे व्यास सतलज लिंक नहर परियोजना, टिहरी पन बिजली परियोजना तथा धौली गंगा गौरी गंगा पन बिजली परियोजना, के निर्माण स्थल के वानस्पतिक सर्वेक्षण के साथ साथ इनके द्वारा इस क्षेत्र में पाई जाने वाली वनस्पतियों के अस्तित्व एवं पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का भी अध्ययन कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न किया। साथ ही इस परिमण्डल द्वारा न केवल इस क्षेत्र में पाई जाने वाली लगभग 162 दुर्लभ एवं संकटग्रस्त जातियों की गणना प्रकाशित की जा चुकी है, अपितु इस विषय पर सन् 1981 में यहाँ "भारत के संकटग्रस्त पौधे" (थ्रिटेण्ड प्लांटस ऑफ इण्डिया) शीर्षक से एक राष्ट्रीय गोष्ठी का सफल आयोजन भी किया गया।

पादपालय : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल का पादपालय, जिसे कि अन्तर्राष्ट्रीय पादपालय सूची (इन्डेक्स हर्बेरिओरम) में बी एस डी के परिवर्ण (एक्रोनिम) से जाना जाता है, को पश्चिमोत्तर भारत में वन अनुसन्धान संस्थान के बाद द्वितीय स्थान प्राप्त है। यहाँ के वैज्ञानिकों के समर्पित प्रयासों से अब तक इस पादपालय में लगभग 92 हजार पुष्पी पौधों एवं पर्णांगों के प्रतिदर्शों का परिग्रहण किया जा चुका है। साथ ही अन्य अपुष्पी पौधों, जिनमें हरितोद्भिद् (ब्रायोफाइट्स) एव कवक मुख्य हैं, के भी 2500 प्रतिदर्श संरक्षित है। इसके अतिरिक्त प्रत्यावर्तन के आधार पर फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका जापान व स्वतन्त्र देशों के राष्ट्र कुल (भू0 पूर्व सोवियत सघ) आदि देशों से प्राप्त पादप नमूनों का संग्रह भी उपलब्ध है। साथ ही इस क्षेत्र से अन्वेषित नई वनस्पति जातियों के 60 प्रारुप भी इस पादपालय की विशिष्ट धरोहर हैं (देखें सलग्न तालिका)

प्रायोगिक वनस्पतिक उद्यान : वनस्पतिक उद्यान विभिन्न प्रकार के उपयोगी व शोधक पौधों की शरण स्थली के साथ साथ वनस्पतिविदों, विद्यार्थियों एवं शौकीनों आदि के लिए एक महत्वपूर्ण शिक्षा व प्रशिक्षण के केन्द्र भी होते हैं। इसी उद्देश्य के साथ उत्तरी परिमण्डल का प्रायोगिक उद्यान देहरादून स्थित इसके मुख्यालय से 180 कि0मी0 दूर पौड़ी में सन् 1975 में स्थापित किया गया। यह उद्यान परस्पर 21 कि0मी0 दूर दो खण्डों, नागदेव व खिर्सू में स्थित है। 35 एकड़ क्षेत्र में फैले हुये उद्यान के नागदेव स्थित खण्ड में अनावृतबीजी वृक्षों के घने समूह हैं। जिनमें प्रमुख *एबीज पिण्ड्रो, क्यूप्रेससस टोरुलोजा, क्यू0 एरिजोनिका, सिड्रस देवदारा, पाइनस वालिचियाना, टैक्सोडियम* सहित इस समुदाय की लगभग 21 जातियाँ हैं। इस सीमित क्षेत्र में शंकुधारी पौधों की इस सम्पन्नता के कारण ही उद्यान के इस भाग को "राष्ट्रीय अनावृतबीजी आश्रय" (नेशनल जिम्नोस्पर्म सैंकचुरी) घोषित कर दिया गया है। उद्यान के ऊंचाई वाले एक छोटे से हिस्से में *कुएरकस, रहोडोडेन्ड्रान, माइरिका,*

उत्तरी परिमण्डल के पादपालय 'बी० एस० डी०' में संग्रहित प्रारुपों का विवरण

क्रम० सं०	नाम	कुल	संग्रहकर्ता	स्थान
1.	*ऐनीमोन रौआई* गोयल एव भट्टाचार्य	रेननकुलेसी	सी० एम० अरोड़ा	बकरी उदियार, कुमाउं
2.	*ऐलेक्ट्रा पेरासिटिका* ए० रिच प्र० *चित्रकूटेन्सिस*	स्क्रोफुलेरिएसी	एम० ए० राउ	चित्रकूट, बांदा
3.	*आरजीरोलोबियम एलबम* भट्टाचार्य	पैपीलियोनेसी	यू० सी० भट्टाचार्य	धार, गुरदासपुर, पंजाब
4.	*एपल्यूडा एरिसटाटा* लिन० प्र० *जैनिई* जैन	पोएसी	आर० के० जैन	राजपुर, देहरादून
5.	**एग्रोस्टिस मुनरोआना ऐट० एवं हेम्सले उपजा० *इन्डिका* भट्टाचार्य एव जैन**	पोएसी	यू० सी० भट्टाचार्य	ब्रह्मताल, गढ़वाल
6.	*एग्रोस्टिस तुगनाथाई* भट्टाचार्य एवं जैन	पोएसी	सुनन्दा भट्टाचार्य	तुगंनाथ मार्ग चमोली
7.	*वल्वोफिल्लम राउई* अरोड़ा	आर्किडेसी	सी० एम० अरोड़ा	पिथौरागढ़
8.	*केरेक्स* नन्दादेविएन्सिस घिल्डियाल, भटटाचार्य एव हाजरा	साईपरेसी	पी० के० हाजरा	रमनी से भोजगारा, नंदादेवी नेशनल पार्क
9.	*कोरीस्पर्मम लदाखिआनम* ग्रे बिल्सन एवं वाधवा	वीनोपोडिएसी	बी० एम० वाधवा	खारदुंग, लद्दाख
10.	*सिम्बोपोगान म्यूटिया* गुप्ता	पोएसी	बी० के० गुप्ता	हल्द्वानी में उगाये गये नमूने के आधार पर
11.	*ईरिया आक्सीडेन्टेलिस* सेंडनफाडेन	आर्किडेसी	सी० एम० अरोड़ा	चोप्ता मैताली, पिथौरागढ़
12.	*यूफोरबिया शर्मी* भट्टाचार्य	युफोरबिएसी	यू० सी० भट्टाचार्य	हेमकुण्ड, गढ़वाल
13.	*इक्वीसीटम आर्वेन्स* लिन० *डिफ्यूसम* डौन प्र० *डिफ्यूसम* सी० एन० पेज	इक्वीसीटेसी	एम० ए० राउ	गोहना, गढ़वाल
14.	*इक्वीसीटम डिफ्यूसम* डान प्र० *सेमीडेन्टेटम* सी० एन० पज	इक्वीसीटेसी	एम० ए० राउ	गढ़वाल
15.	*फेस्ट्यूका नंदादेविका* पी० के० हाजरा	पोएसी	पी० के० हाजरा	ड्योडी से रमनी, नंदादेवी
16.	*फिल्किगेरिया हेस्पेरिस* सेंडनफाडेन	आर्किडेसी	सी० एम० अरोड़ा	असकोट, पिथौरागढ़
17	*जैनशियाना स्पिटिऐन्सिस* नायर	जेन्शिएनेसी	एन० सी० नायर	चन्द्रताल झील, स्पिति

क्रम० सं०	नाम	कुल	संग्रहकर्ता	स्थान
18.	*जिअम एक्वीलोबेटम* पुरोहित एवं पानीग्राही	रोजेसी	बी० डी० नैथानी	घुटटू मार्ग, टिहरी
19.	*हिबिस्कस होशियारपुरें-सिस* टी० के० पाल एवं नायर	मालवेसी	ओ० पी० मिश्रा	धोलबा, होशियारपुर
20.	*हेलोजिटान काशीमिरिआनस* ग्रे विल्सन एवं वाधवा	चीनोपोडिएसी	बी० एम० वाधवा	लेह, लदाख
21.	*हेडीकियम रेडीएटम* राव एवं हाजरा	जिन्जीबरेसी	ए० एस० राव	नियतसिफू वाना कैम्प मार्ग कामेंग, अरुणाचल प्रदेश
22.	*लेक्टूका काशमीरीआना* ममगाईन एवं राव	एस्टरेसी	बी० एम० वाधवा	दिगवान, जम्मू-कश्मीर
23.	*लेक्टूका लाहुलेन्सिस* ममगाईन एवं राव	एस्टरेसी	यू० सी० भट्टाचार्य	केलंग, लाहुल
24.	*लिसटेरा म्यूक्रोनाटा* पानीग्राही एवं वुड	आर्किडेसी	बी० डी० नैथानी	अमृत गंगा वैली, गढवाल
25.	*लिसटेरा नंदादेविएन्सिस* हाजरा	आर्किडेसी	पी० के० हाजरा	हिमतोली, नंदादेवी नेशनल पार्क
26.	*मिनुएर्शिया ईब्रैक्टियोलेटा* मजुमदार एवं गिरी	केरियोफायलेसी	एन० सी० नायर	बताल, लाहुल
27.	*नीसिएला इन्टरमिडिया* माधवन	एकेन्थेसी	यू० सी० भटटाचार्य	महोबा, हमीरपुर
28.	*पिम्पीनेला डाईवर्सीफोलिया* डीसी० प्र० सारमेन्टीफेरा गोयल एवं भट्टाचार्य	एपिएसी	ए० के० गोयल	गांगी, टिहरी
29.	*प्यूसीडेनम देहरादूनेन्सिस* सी० आर० बाबू	एपिएसी	सी० आर० बाबू	बिदांल नदी, हाथीबरकला देहरादून
30.	*पोटेन्टिला सोजाकिई* दिक्षित एवं पानीग्राही	रोजेसी	यू० सी० भटटाचार्य	शेतीगार, स्पिति
31.	*पोगोनेथेरम सांतापाउई* पी० आर० सूर	पोएसी	जे० एन० वोहरा	लैन्सडाउन, अल्मोड़ा
32.	*पालीस्टाइकम गढ़वालिकम* नायर एवं नाग	ऐस्पीडिएसी	यू० सी० भट्टाचार्य	भूना, गढवाल
33.	*टेरिस राधवेन्द्री* चौधरी एवं एस० सिंह	टेरीडेसी	एच० जे० चौधरी	धौलीगंगा, घाटी, पिथौरागढ
34.	*पिजिओफाईटोन गढवालेन्सिस* चौधरी एवं एस० सिंह	ब्रेसिकेसी	एम० ए० राउ	वासुनिक ताल, गढ़वाल
35.	*प्यूसीडेनम जोसेफिआनम* वाधवा एवं चौधरी	ऐपीएसी	जे० जोसफ	अगस्त्यमलाई, त्रिवेदन्द्रम
36.	*रोडियोला इम्बीकाटा* एजवर्थ प्रजाति *लोब्युलाटा* सिंह एवं भटटाचार्य	क्रेसूलेसी	एन० सी०	सचपास, चबा

क्रम० सं०	नाम	कुल	संग्रहकर्ता	स्थान
37.	*रोरिप्पा स्यूडोआइलैन्डिका* चौधरी एवं राव	ब्रेसीकेसी	यू० सी० भट्टाचार्य	बेला ताल, हमीरपुर
38.	*सैजीरिशिया किश्तवारेन्सिस* भन्डारी एवं मंसाली	रैहमनेसी	टी० ए० राव	किस्तवार पर्वत
39.	*सीडम पेडीसीलेटम* सिंह एवं भटटाचार्य	क्रेसुलेसी	पी० सी० पंत	बोगदयार, कुमाऊ
40.	*सेक्सीफ्रेगा पोल्यूनिनियाना* स्मिथ प्रभेद म्यूक्रोनाटा एवं विश्वनाथन	सेक्सीफ्रेगेस	यू० सी० भट्टाचार्य	कुकिना खल, चमोली
41.	*स्पाईरिया चम्बाएन्सिस* पुरोहित एव पानीग्राही	रोजेसी	एन० सी० नायर	संतरुडि, चम्बा
42.	*सस्सुरिया सुधांशुई* हाजरा	ऐस्ट्रेसी	पी० के० हाजरा	धरांसी नंदादेवी, नेशनल पार्क
43.	*साईनोक्रेसुला इन्डिका* (डीसेनी) बर्जर प्रजाति *पैनीकुलाटा* सिंह एव भट्टाचार्य	क्रेसुलेसी	यू० सी० भट्टाचार्य	दिओल्सरी, टिहरी
44.	*स्वेर्शिया एलपिना* भट्टाचार्य एवं सुनीता	जैनशिएनेसी	एम० ए० राउ	केदारनाथ गलेशियर वैली चमोली
45.	*सिसामम मुलयानम* नायर	पेडालिएसी	एन० सी० नायर	कनाना, दादरी
46.	*टेट्रास्टिगमा इन्डिका* एम० मलिक	वाईटेसी	पी० सी० पंत	लिलम-गौरी वैली मार्ग, पिथौरागढ़
47.	*वैलेरीआना हिमालयऐन्सिस* वेद प्रकाश	वैलेरीयेनेसी	बी० एम० वाधवा	थाटटी वन हिमाचल प्रदेश
48.	*वेरोनिका बाईलोबा* प्रजाति *मिनीमा* नायर	स्क्रोफ्यूलैरियेसी	एन० सी० नायर	बताल लाहुल
49.	*एन्ड्रोसेसी गढवालिकम* बलोदी एवं सिंह	प्रिमुलेसी	यू० सी० भट्टाचार्य	हेमकुण्ड गढ़वाल
50.	*बल्बोफिलम रेपटेन्स* लिन्डल प्रजाति *एक्यूटा* मल्होत्रा एवं बलोदी	आर्किडेसी	सी० एम० अरोड़ा	डाफिया, पिथौरागढ़
51.	*कोरेलोराइजा आनंदी* मल्होत्रा एवं बलोदी		टी० ए० राव	मरतोली बुग्याल, कुमाऊ
52.	*यूलोफिया उपबीई* मल्होत्रा एवं बलोदी	आर्किडेसी	बी० बलोदी	गारजिया, पिथौरागढ
53.	*ऐलीमस हरसुखिआई* एच० एस० दुबे	पोऐसी	जे० मुरगेसन	अमरनाथ मार्ग, जम्मू व कश्मीर
54.	*ऐपीलोबियम स्पीति* *आनम* चौधरी एव मूर्ति	औनाग्रेसी	यू० सी० भट्टाचार्य	ग्रेटटा, स्पीति हिमाचल प्रदेश
55.	*एपीलोबियम सेमीएम्प्लेक्सिकौल,* चौधरी एवं एस० सिंह	औनाग्रेसी	के० पी० जनार्दनन	रकचाम, हिमाचल प्रदेश

क्रम0 सं0	नाम	कुल	संग्रहकर्ता	स्थान
56.	*गोजिआ पामिरिका* ग्रोश प्रजाति *स्पिति आन्सिस* बलूदी एवं उनियाल	लिलिऐसी	यू0 सी0 भट्टाचार्य	कुनजुम, स्पीति, हिमाचल प्रदेश
57.	*जिरेनियम एकोनिटी फोलियम* एल0 हैरिट प्रजाति एलबम घोष एव भटटाचार्य	जिरेनीएसी	यू0 सी0 भटटाचार्य	थुमला स्पिति
58.	*जन्कस उपेन्द्राई* गोयल	जन्केसी	सी0 एम0 अरोड़ा	रूंगलिंग वन, पिथौरागढ़
59.	सेक्सीफेगा *क्रिस्टोफेराई* वाधवा	सेक्सीफेगेसी	ग्रे विल्सन एवं फिलिप्स	लंगला पास, शीनान लंगला मुर के बीच, नेपाल
60.	*सेक्सीफेगा कौरडीजेरा* प्रजाति *सिक्किमेन्सिस* वाधवा	सेक्सीफेगेसी	बी0 एन0 स्टलिंग आदि	दजोंग्री सिक्किम

लायोनिया, पायरस, पापुलस आदि के प्राकृतिक घने वन हैं। इसके अतिरिक्त वनस्पतियों की लगभग 300 जातियों, जिनमें ऑर्किड्स, पर्णांग (फर्न) तथा नारियल कुल की एक स्थानिक एवं अत्यंत दुर्लभ जाति *ट्रेकीकार्पस टाकिल,* (जिसे प्रारूपीय संग्रहण के लगभग 120 वर्ष बाद इस परिमण्डल के वैज्ञानिकों द्वारा पुनः संग्रहित किया गया) आदि प्रमुख है, का प्रवेशन किया गया है। 20 एकड़ में फैले उद्यान के *कुएरकस, रहोडोडेन्ड्रान एवं बरबेरिस* के प्राकृतिक वन से आच्छादित खिर्सू स्थित खण्ड को इसके स्वाभाविक स्वरुप में ही सुरक्षित रखा गया है।

संग्रहालय : उत्तरी परिमण्डल के संग्रहालय में वनस्पतियों के विभिन्न वर्ग, यथा शैवाल, कवक, शैक, हरितोद्भिद, पर्णांग, अनावृतबीजी एवं आवृतबीजी, के नमूनों को सुरुचि पूर्ण ढंग से प्रदर्शित किया गया है। आवृतबीजी वर्ग में वानस्पतिक दृष्टि से रोचक कीटभक्षी एवं परजीवी पौधे, विषैले पौधे, औषधीय एवं अन्य आर्थिक महत्व के पौधे, शीत मरुस्थलीय पौधे तथा कुछ सीमित क्षेत्री, दुर्लभ व संकटग्रस्त पौधे प्रदर्शित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र की वनस्पतिक सम्पदा व विविधता को श्वेत-श्याम व रंगीन छाया चित्रों के माध्यम से भी दर्शाया गया है।

पुस्तकालय : उत्तरी परिमण्डल के पुस्तकालय में पादपजातीय अध्ययन, वर्गिकी, परिस्थितिकी, पादप भूगोल, पर्यावरण एवं संरक्षण आदि विषयों के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित 3146 पुस्तकें व 5111 जर्नल वैज्ञानिकों एवं शोध छात्रों के लिए उपलब्ध हैं, तथा इनमें प्रतिवर्ष निरंतर वृद्धि हो रही है। पुस्तकालय में उपस्थित महत्वपूर्ण प्राचीन प्रकाशनों में बरमन का "फ्लोरा इन्डिका" फोर्स्कल का "फ्लोरा एजिप्टिका - अरेबिका" वालिच का "टेन्टामन - फ्लोरा नेपालेन्सिस" एवं "प्लान्टे एशियाटिके रेरियोरिस" वाइट का "आईकोन्स प्लान्टेरम इन्डे ओरियन्टेलिस" एवं "प्रोड्रोमस फ्लोरे पेनिन्सुली इन्डे ओरियन्टेलिस" डान का "प्रोड्रोमस" वानरीड का "हार्टस माला बारिकस,

राक्सबर्ग का "प्लांट्स आफ कोरोमण्डल कोस्ट" एवं "फ्लोरा इन्डिका" लिनियस का "स्पिसीज प्लांटेरम" एवं "जेनेरा प्लाटेरम्" तथा रायल के "इलश्ट्रेशन आफ बाटनी आफ हिमालयन माउन्टेन्स एण्ड आफ फ्लोरा आफ कश्मीर" आदि उल्लेखनीय हैं। इस समय यहाँ पर 35 भारतीय व 65 विदेशी पत्रिकायें (जर्नल) नियमित रुप से प्राप्त की जा रही है।

इसके अतिरिक्त कार्यालय के हिन्दी अनुभाग में 'हिन्दी विश्वकोष' (25 खण्डों में) एवं हिन्दी कार्य-विधि साहित्य सहित पर्यावरण तथा अन्य विविध सामान्य विषयों पर लगभग 375 पुस्तकें उपलब्ध हैं।

राष्ट्रीय न्यास आधार (नेशनल डाटा बेस) : वनस्पतिक अध्ययनों के नित् नये बढ़ते आयाम को ध्यान में रखते हुये विभिन्न पक्षों पर उपलब्ध जानकारी के सरल संचयन एवं शीघ्र पुनः-प्राप्ति के लिए उत्तरी परिमण्डल में हाल ही में एक कम्प्यूटर इकाई स्थापित की गयी जिससे सम्बद्ध क्रमक्षीवक (स्कैनर) व लेजर मुद्रक से क्रमशः छाया एवं रेखा चित्रों के क्रमक्षीवण (स्कैनिंग) तथा पाण्डुलिपियों के मुद्रण की भी व्यवस्था है। पुस्तकालय से सम्बद्ध आँकड़ो के कम्प्यूटरीकृत करने के साथ ही इस प्रणाली से विभागीय प्रकाशनों को भी संसाधित करने का प्रस्ताव है।

उतक संवर्धन प्रयोग शाला : अनेक जीवीय अथवा प्राकृतिक कारणों से लुप्त हो रहे अथवा स्थानिक वनस्पतियों की कुछ चुनी हुई जातियों को, जैव तकनीकी विधि से, शीघ्र एवं अधिक संख्या में उपजाने के लिए हाल ही में उत्तरी परिमण्डल में एक आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित उतक संवर्धन प्रयोग शाला की स्थापना की गयी।

वर्तमान गतिविधियाँ : भारत की वनस्पतियों का विस्तृत विवरण लिखना भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण का प्रमुख लक्ष्य है। उत्तरी परिमण्डल भी इस कार्य में अपनी भूमिका का सफल निर्वाह कर रहा है। "फ्लोरा इन्डिया" के खण्ड प्रथम को पूरा करने में इस परिमण्डल के वैज्ञानिकों का योगदान सराहनीय रहा है। खण्ड 5 को पूरा करने का दायित्व भी इस परिमण्डल को सौंपा गया है जो कि लगभग पूरा किया जा चुका है। खण्ड 12 व 13 भी इसी परिमण्डल के वैज्ञानिकों द्वारा लिखे गये हैं। शीघ्र ही इसका भी सम्पादन कार्य पूरा कर लिया जायेगा। इसके अतिरिक्त जम्मू - कश्मीर व पश्चिमी हिमालय के शीत मरुस्थलीय क्षेत्र में पाई जाने वाली वनस्पतियों का पादपजातीय विवरण लिखा जा रहा है। साथ ही पश्चिमोत्तर हिमालय के काष्ठ-स्वरुपी कवक (अफिल्लोफोरेल्स) का अध्ययन भी प्रगति पर है। देश के चार महानगरों में पाई जाने वाली विदेशी एवं अलंकारिक वनस्पतियों पर लोकप्रिय भाषा में सचित्र पुस्तक लिखने की योजना के अन्तर्गत उत्तरी परिमण्डल राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के पौधों के अध्ययन में भी रत है।

भावी योजनायें : उत्तरी परिमण्डल मे चल रही विभिन्न वर्तमान परियोजनाओं को समयबद्ध तरीके से सम्पूर्ण करने के पश्चात् उत्तर प्रदेश व हरियाणा की वनस्पतियों के पादपजातीय अध्ययन व विवरण का कार्य प्रारम्भ किया जायेगा। साथ ही इस परिमण्डल के अधीन अल्प-अन्वेषित व गैर अन्वेषित क्षेत्रों में पादप सर्वेक्षण के कार्यों में तेजी लाई जायेगी, तथा अल्प-ज्ञात उपयोगी पौधों के साथ साथ इस क्षेत्र की विभिन्न जनजातियों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली वनस्पतियों (एथनोबोटेनिकल) की

जानकारी भी संग्रहीत की जायेगी। इसके अतिरिक्त इस परिमण्डल की सीमा में स्थित विभिन्न नम स्थलों तथा शेष बचे संरक्षित क्षेत्रों के वानस्पतिक अध्ययन की भी योजना है। यमुना कार्य-योजना के अंतर्गत यमुना नदी के किनारे पाई जाने वाली वनस्पतियों की एक सूची भी तैयार की जायेगी।

उत्तरी परिमण्डल के कार्यालय परिसर में एक उद्यान विकसित करने का भी प्रस्ताव है जिसमें कि पश्चिमोत्तर हिमालय की विभिन्न दृष्टिकोण से रोचक वनस्पति जातियों का प्रवेशन किया जायेगा। विशेषकर इस क्षेत्र के आर्किड्स के संरक्षण एवं प्रवर्धन के लिये पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा प्रदान की गई वित्तीय सहायता से लागू एक परियोजना के तहत एक पौध घर (ग्रीन हाऊस) का निर्माण किया जायेगा। इसी परियोजना के अन्तर्गत इस समुदाय के स्थानिक, दुर्लभ व संकटग्रस्त जातियों की उतक संवर्धन विधि से उपजाने तथा प्रकृति में उनके पुनर्वास की भी योजना है।

पादप एवं पुस्तकालय सम्बन्धी विभिन्न आंकणों को सरल ही उपलब्ध कराने के लिये इनका कम्प्यूटरीकरण किया जायेगा। "फ्लोरा इन्डिया" के तहत समय समय पर मुख्यालय द्वारा आंवटित विभिन्न पादप कुलों का अध्ययन किया जायेगा, तथा इस परिमण्डल के कार्य क्षेत्र में लागू की जाने वाली पन-बिजली व अन्य विकास परियोजनाओं का उस क्षेत्र की वनस्पति पर होने वाले प्रभाव का अध्ययन व मूल्यांकन किया जायेगा। इसके अतिरिक्त शोध छात्रों के प्रशिक्षण की योजना पूर्ववत् जारी रहेगी।

पश्चिमी हिमालयः एक दृष्टि

देवराज अग्रवाल

भारत देश का मुख-शीर्ष-पश्चिमी हिमालय। हिमाच्छादित शिखरों से सजा, नदियों, वनों एवं घाटियों से ढका हिमालय। पंजाब और दोआब की धरती को सींचती गंगा-यमुना, सतलज-व्यास व झेलम-चेनाब नदियों का कल-कल स्वर जिसका संगीत है। शंकराचार्य की तपस्थली। पश्चिमी हिमालय जितना सुन्दर और सजीला है, उतना ही प्राकृतिक सम्पदा का धनी। इसके गहन वन, विशाल बुग्याल व पर्वतों की ऊंचाईयों के निर्मल ताल न जाने कैसे कैसे पशु-पक्षियों, कीड़ो मकोड़ों, तितलियों व पेड़-पौधों के आश्रय हैं। जहां के भव्य सूर्योदय व सूर्यास्तों ने ऋषियों को प्रेरणा दी है, वही आज वैज्ञानिकों एवं विद्यार्थियों की प्रश्नावली है।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के देहरादून स्थित उत्तरी परिमण्डल को गौरव प्राप्त है, इस क्षेत्र का वानस्पतिक सर्वेक्षण करने का। वैसे तो इस परिमण्डल के कार्य-क्षेत्र में उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब के कुछ मैदानी क्षेत्र भी आते है किन्तु हिमालय क्षेत्र की धनी वनस्पति, सर्वेक्षण की दृष्टि से विशेष रुचिकर है।

अध्ययन की सरलता एवं भौगोलिक असमताओं के आधार पर वैज्ञानिकों ने सम्पूर्ण हिमालय क्षेत्र, जिसका फैलाव अफगानिस्तान की सीमा से लेकर सुदूर पूर्व में अरुणाचल प्रदेश तक है, को तीन भागों में बांटा। भारत के उत्तर-पूर्व में पड़ने वाला भाग पूर्वी हिमालय, सम्पूर्ण नेपाल - मध्य हिमालय और नेपाल की पश्चिमी सीमा पर काली नदी से जम्मू-कश्मीर राज्य तक का क्षेत्र पश्चिमी हिमालय कहलाता है। चूंकि किसी क्षेत्र की जलवायु वहां की वनस्पति को प्रभावित करती है, अतः जहां पूर्वी हिमालयी वनस्पति में मलाया व बर्मा की वनस्पति का प्रभाव मिलता है, वहीं पश्चिमी हिमालय में मिलने वाली वनस्पति मध्य एशिया व यूरोप की वनस्पति से मेल खाती हैं।

हिमालय की पर्वत - श्रृंखलाएं उत्तर पश्चिम से दक्षिण - पूर्व की दिशा में स्थित है एवं ऊंचाई सबसे अधिक मध्य भाग में है। यही कारण है कि कराकोरम की नंगा - पर्वत व के-2 को छोड़कर हिमालय की सभी-ऊंची चोटियां नेपाल में पड़ती हैं। हिमालय की निचली पहाड़ियां, जिन्हें "लोवर हिमालय" नाम से जाना जाता है, के साथ साथ चलती है शिवालिक पर्वत श्रृंखला। हिमालय से अधिक प्राचीन ये पहाड़ियां कहीं कहीं तो हिमालय की पहाड़ियों के इतने समीप से गुजरती हैं कि लोग भ्रमवश इन्हें भी हिमालय ही समझ बैठते हैं।

शिवालिक वनों का मुख्य पेड़ साल (शोरिया रोबस्टा) है। लेकिन जैसे जैसे हम हिमालय क्षेत्र की निचली पहाड़ियों में प्रवेश करते हैं तो वनस्पति उप-उष्णकटिबन्धीय (सब-ट्रापिकल) हो जाती है। यह क्षेत्र लगभग 600 मी० से 1500 मी० ऊंचाई तक का क्षेत्र होता है। इसके मुख्य पेड़ों में चीड़ (पाइनस रॉक्सबर्घो) व कुछ चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष हैं। 1500-3000 मी० का क्षेत्र शीतोष्ण

कटिबन्धीय क्षेत्र कहलाता है। उत्तरी भारत के कुछ पर्यटन स्थल मसूरी, शिमला, नैनीताल, धर्मशाला, पत्नीटॉप आदि इसी भौगोलिक क्षेत्र में पड़ते हैं। देवदार (सैड्रस देवदारा), कैल (पाइनस वालिचियाना), रागा (एबीज पिन्ड्रो), थुनेर (टैक्सस बकाटा) व पीसिया (पीसिया स्मिथियाना) के शंकुयी वनों के साथ साथ बांज (कुएरकस वशं) एवम् बुरांस (रहोडोडैन्ड्रॉन आरबोरियम) के वृक्ष इन क्षेत्रों को अति-सुखमय बनाते हैं। ऐसे वन मार्च माह में विशेष रुप से सुन्दर दिखते हैं, जब बुरांस के मनभावन लाल पुष्प पूरे वन को एक उपवन में बदल देते हैं। ऐसे पर्यटक स्थलों व वनों के आस पास कुछ हिमालयी वनस्पतियों की जातियां पाई जाती हैं। जिनमें प्रमुख हैं :- प्रिमुला, जिरेनियम, एस्टर, बर्जीनिया, बिगोनिया एवं कुछ आर्किड जाति के पौधे। भालू, काकड़, बाघ आदि जानवर भी ऐसे वनों में मिलते हैं।

3000 मी0 से लगभग 3500 मी0 तक का क्षेत्र उप-हिमाद्रि क्षेत्र (सब-एल्पाइन) कहलाता है। काफी ठण्डे इस क्षेत्र में मुख्यतया रागा (एबीज पिन्ड्रो) रहोडोडैन्ड्रोन कम्पैन्नुलेटम, भोजपत्र (बेटुयूला यूटिलिस) एवं एसर के वृक्ष पाये जाते हैं। शाकीय पौधों में धनी यह क्षेत्र जून से सितम्बर माह तक अपने चरम सौन्दर्य पर होता है। इस दौरान यहां नाना प्रकार के पुष्प जैस जिरेनियम, प्रिमुला, पोटेनटिल्ला, एस्टर, सेनिशियो, कम्पैन्यूला, डल्फीनियम, पैडिकुलारिस आदि की खिलते हैं। भालू के अलावा कस्तूरा, थार व भरड़ भी यहां होते हैं।

लगभग 3500 मी0 से ऊपर का क्षेत्र हिमाद्रि क्षेत्र (एल्पाइन) कहलाता है इसी ऊंचाई से वृक्ष सीमा आरम्भ होती है। अर्थात् इसके ऊपर बड़े वृक्षों का दिखाई देना धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है और कुछ विशेष प्रकार की झाड़ियां एवं शाकीय पादप ही यहां उगते हैं। हिमाद्रि क्षेत्रों में कहीं कहीं पर सुन्दर और खुले घास के मैदान होते हैं, जिन्हें बुग्याल कहा जाता है। हरी भरी मखमली घास पर सुन्दर पुष्पों का बिछाव हिमालय की चोटियों की पृष्ठभूमि में विहंगम दृष्य प्रस्तुत करता है। बुग्याल पर्यटन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। कुछ प्रमुख बुग्याल हैं: गढ़वाल के बेदिनी, पंवाली औली, तुंगनाथ रुद्रनाथ आदि, हिमाचल का मढ़ी व कश्मीर के सोनमर्ग, तथा बालताल। हिमाद्रि क्षेत्र वानस्पतिक अध्ययन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। यहां औषधीय उपयोग में लाये जाने वाले पौधे अधिक होते हैं। एकोनाइटम, पोडोफिल्लम, जटामान्सी, डोलू आदि यहां के मुख्य औषधीय पौधे हैं। इसी क्षेत्र में हिम-सीमा (स्नो-लाइन) लगभग 4500 से 5000 मी0 क्षेत्र में होती है। अर्थात् ऐसे क्षेत्र जहां प्रायः बर्फ जमी रहती है। बर्फ की बाहुल्यता के कारण केवल गर्मी के कुछ ही महीनों में बर्फ पिघलने पर कुछ पौधे यहां उगते हैं। बड़े बड़े हिमखंडों के समीप बर्फ के पिघलते ही पुष्पों की छटा खिलती है। पहले, निचले हिस्सों में खिलता है विषैला किन्तु अति सुन्दर हिमालयन ब्लू-पॉपी। यहां के पौधों का जीवन अल्पकालिक होता है क्योंकि पुनः अक्टूबर माह में हिम-पात होने से पूर्व उन्हें अपना जीवन चक्र पूर्ण करना होता है। ऐसे स्थानों में ब्रह्मकमल मुख्य पौधा है। धार्मिक आस्था के चलते इसका स्थान यहां के घरों एवं मन्दिरों में है। इसी वंश के फेन कमल और भी अधिक ऊंचे स्थानों में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त सैक्सीफ्रागा, एन्ड्रोसेसी, पोलीगोनम, जैन्शियाना आदि इस ऊंचाई के अन्य आकर्षक पौधे हैं।

हिमालय की अधिकतम ऊंची चोटियाँ (5000 मी0 से अधिक) सदा बर्फ से ढकी रहती हैं। नंन्दा देवी, भागीरथी, त्रिशूली, नीलकंठ, पंचाचूली, शिवलिंग, चौखम्भा, कामत, व नुन-कुन आदि इस

क्षेत्र की प्रमुख चोटियां हैं। पश्चिमी हिमालय के उत्तरी छोर से जुड़ी कराकोरम श्रृंखला की के-2 नामक चोटी नेपाल के एवरेस्ट शिखर के बाद विश्व की द्वितीय ऊंची चोटी है। ये सभी हिम-शिखर और इनके नीचे स्थित भीमकाय ग्लेशियर, जिनमें से कुछ तो विश्व के विशालतम ग्लेशियर माने जाते हैं, हमारी प्रमुख नदियों के जल-स्त्रोत हैं।

पश्चिमी हिमालय का एक और अजूबा है यहां का शीत-मरुस्थल। शीत मरुस्थल? जी हां, जहां एक ओर राजस्थान के मरुस्थल शरीर जलाने वाली गर्मी के लिये प्रसिद्ध है तो वहीं हिमालयी मरुस्थल अपनी तथाकथित बंजरता एवं सांय सांय करती बर्फीली हवाओं के कारण। वास्तव में कुछ पर्वतीय क्षेत्र ऊंची पर्वत श्रृंखलाओं की आड़ में स्थित होने के कारण मानसूनी वर्षा से वंचित रह जाते हैं। इसी कारण यहां वर्षा नगण्य और भौगोलिक स्थिति मरुस्थलीय हो जाती है। जहां कश्मीर का लद्दाख क्षेत्र मुख्य हिमालय की आड़ में पड़ता है तो वहीं हिमाचल का लाहूल-स्पिति, गढ़वाल की निलंग व नीति घाटियां और कुमाऊं का मिलम क्षेत्र ऊंची पहाड़ियों के कारण शुष्क प्राय है। प्राकृतिक वनों से वंचित ये क्षेत्र वर्षाभाव व अत्यधिक शीत के कारण कुछ विशिष्ट प्रकार की वनस्पतियों के घर है।

उत्तरी परिमण्डल का सर्वेक्षण कार्य क्षेत्र शिवालिक की पहाड़ियों से आरम्भ होता है। देहरादून के समीप राजाजी राष्ट्रीय वन उद्यान एवं तराई क्षेत्र का कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान वनस्पति की दृष्टि से अत्यधिक धनी है। यहां की वनस्पति पर निर्भर हैं कई वन्य प्राणी, जिनमें प्रमुख हैं:- बाघ, हाथी, मृग एवं मगरमच्छ इत्यादि। और हां, पिछले कुछ वर्षों पूर्व वैज्ञानिकों ने पाया कि दुधवा राष्ट्रीय उद्यान की वनस्पति भारत से लुप्त होते जीव गैंडे, जो केवल आसाम में ही पाया जाता है, के लिए उपयुक्त है। अतः एक अति विशिष्ट वैज्ञानिक कार्यक्रम के तहत, जिसमें भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने यहां की वनस्पति पहचानने की अहम भूमिका अदा की, आसाम से लाकर कुछ गैंडों को एक बार फिर से यहां प्रविष्ट किया गया है। जाने माने कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान में बाघ परियोजना के तहत लुप्त होते भारतीय बाघों का संरक्षण सफलता पूर्वक चल रहा है।

हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं के आरम्भ में है जम्मू-कश्मीर राज्य। कश्मीर घाटी की शान झेलम नदी एक सूक्ष्म से जल स्त्रोत से जन्मी, तो इसके विपरीत चिनाब हिमाचल प्रदेश में चन्द्रा व भागा नदियों के संगम से। प्रदेश की अन्य प्रमुख नदियां हैं :-सिन्ध, द्रास, सुरु और श्योक आदि। शिवालिक से सटे जम्मू क्षेत्र में लगभग सभी स्थानों पर उप उष्ण कटिबन्धीय वनस्पति पाई जाती है। यहीं से कश्मीर घाटी को मुख्य मार्ग जाता है जिस पर धीरे धीरे ऊंचाई पर जाने से वनस्पति उप-उष्णकटिबन्धीय हो जाती है। इसी मार्ग पर कुद व पत्नीटॉप देवदार के भव्य जंगलों से आच्छादित सुन्दर स्थान है। इसी मार्ग के पूर्व में भदरवाह और किश्तवाड़ के सुन्दर क्षेत्र हैं। मुख्य कश्मीर घाटी या तो पीर पंजाल श्रृंखला की जवाहर सुरंग पार कर पहुंचते हैं या फिर किश्तवाड़ के सिन्थन दर्रे से। कश्मीर की अनगिनत झीलें कुछ विशेष प्रकार की जलीय वनस्पति का भण्डार हैं। मुख्य घाटी में उप-उष्णकटिबन्धीय वनस्पति मिलती है। घाटी के उत्तर पूर्व में विशाल वुलर झील है। झेलम नदी का सम्पूर्ण जल इसी झील में मिलता है। इसी क्षेत्र की किशन गंगा घाटी भी वानस्पतिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय उद्यानों मे कश्मीर घाटी के दाचीगांव राष्ट्रीय उद्यान का अपना ही महत्व है। इस संरक्षित वन का सबसे विशेष प्राणी है हंगुल मृग। इसके अलावा

उप-उष्णकटिबन्धीय से लेकर हिमाद्रि वनस्पति की सुन्दर विविधता दाचीगांव में देखते ही बनती है। कश्मीर के सुन्दर पर्यटक स्थल यात्रियों के लिए ही आकर्षण का केन्द्र नहीं है, अपितु वनस्पतिज्ञों के तीर्थस्थल भी हैं। अमरनाथ का पवित्र धाम अपनी ऊंचाई के कारण वनस्पतिज्ञों के बीच हमेशा से चर्चा का विषय रहा है। अमरनाथ हेतु पहलगांव से पैदल यात्रा आरम्भ कर हिमालय के कुछ सबसे सुन्दर हिमाद्रि क्षेत्रों को लांघते हुए सोनमर्ग के समीप बालताल नामक स्थान पर पहुंचते हैं। दुर्गम चट्टानों एवं नदी नालों, हिमाच्छादित ढालों और पुष्पों से भरे बुग्यालों के मध्य से गुजरते हुए वनस्पति प्रेमी रास्ते की सभी कठिनाईयों को भूल जाते हैं।

बालताल से आगे जोजीला का "कुख्यात" दर्रा, जो लगभग पांच महीने बर्फ की अधिकता के कारण बन्द ही रहता है लद्दाख की "मूरुभूमि" का द्वार है। जैसे ही आप लगातार घूमती सड़क से चढ़कर इस दर्रे को लांघते हैं, प्रकृति तुरन्त अपना रुप बदल लेती है। कश्मीर की हरी भरी वनों से सुसज्जित वादियां अदृश्य हो जाती हैं और सामने प्रकट होती हैं, विशाल चट्टानें और कुछ क्षितिज के समीप की हिमाच्छादित पर्वत मालाएं। लद्दाख भी वनस्पति की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यहां की जलवायु का वनस्पति पर स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। आंख से मरुस्थल दिखने वाले क्षेत्रों में वनस्पति शास्त्रियों को मिलते हैं कुछ विशिष्ट पौधे जिन्होंने प्रकृति की क्रूरता को अपने जीवन का अंग बनाया है। हर भौगोलिक दुविधा के अनुरुप ही अपने को ढाल कर ऐसे पौधे इस मरुभूमि में जीवित रहते हैं। थाइलाकौस्पर्म, एकेन्थोलिमॉन, एस्ट्रोगैलस, ड्राकोसेफालम और मिरीकेरिया आदि पौधे या तो अत्यन्त गहरी जड़ों वाले हैं या बिल्कुल धरती पर सिमट कर रहते हैं या फिर कड़ी झाड़ियों के रुप में अत्यधिक शीत सूखे एवं तेज हवाओं का सामना करते हैं।

जोजी ला के आगे लद्दाख का पहला नगर द्रास है, जिसे गौरव प्राप्त है, साइबेरिया के बाहर विश्व का सबसे ठंडा स्थान होने का। यहां तापमान जब शून्य से 50-60 डिग्री सेंटीग्रेड नीचे पहुंच जाता है तो यहां की चुलबुली द्रास नदी भी बर्फ की मोटी सतहों के नीचे छिप जाती है। आगे कार्गिल है। एक पुराना व्यापारिक केन्द्र। यहीं से सुरु नदी की घाटी में प्रवेश कर जांस्कर जाते हैं। भव्य नुन और कुन शिखर भी इस सुन्दर घाटी में दिखाई देते हैं। कश्मीर के एकदम पीछे स्थित होने के कारण सुरु घाटी परिवर्तन क्षेत्र (ट्राजिशन जॉन) में आती है। इसी कारण यहां लद्दाख की तुलना में अधिक हरियाली है और बहुत से उपहिमाद्रि एवं हिमाद्रि पौधे भी यहां दिखाई दे जाते हैं। लेकिन इससे आगे पैन्जी ला दर्रा पार करके मुख्य जांस्कर क्षेत्र आता है जो वानस्पतिक दृष्टि से शीतमरुस्थलीय ही है।

लद्दाख का कारगिल के अलावा दूसरा प्रमुख शहर है "लेह"। लेह सिन्ध नदी के तट पर स्थित प्राचीन व्यापार मार्ग का मुख्य शहर था। भारत की तीन बड़ी नदियां, सिन्ध, सतलज और ब्रह्मपुत्र हिमालय के पार तिब्बत से लगभग एक ही स्थान से निकलती हैं। प्रकृति का अजूबा देखिये कि जहां लेह से बहती सिन्ध अरब सागर में गिरती हैं वहीं ब्रह्मपुत्र हजारों कि0मी0 दूर, पूर्व में, बंगाल की खाड़ी में । इसके अलावा भारत की अन्य नदियों के विपरीत सिन्ध नदी यहां दक्षिण से उत्तर दिशा में बहती है।

लेह के दक्षिण में चुमाथांग नाम स्थान पर गर्म पानी के चश्मे हैं। यहां पर प्रातः काल सिन्ध नदी

के बीचोंबीच भाप के गुब्बारे दिखाई देते हैं जो प्रकृति का एक विशेष उपहार है। आगे दक्षिण का क्षेत्र यहां के प्राणी जंगली गधे क्यांग हेतु प्रसिद्ध है। इस मरुस्थल में मृगतृष्णा न देकर, प्रकृति ने दी है विशालकाय झीलें। त्सो मोरारी एवं पेंगौंग बड़ी ही मनोहारी झीलें हैं। लद्दाख के उत्तर मेमं, लद्दाख पर्वत श्रृंखला में संसार की सबसे ऊंची सड़क है। खार्दुंग ला दर्रा, जिसकी ऊंचाई 18380 फीट है, हम इस सड़क के द्वारा पार करते हैं और पहुंचते हैं एक घाटी में। ये नुब्रा घाटी है, जो दक्षिण लद्दाख की तुलना में अधिक उपजाऊ है। यहां का गौरव है पॉपलर व सैलिक्स के सुन्दर वृक्षों के बीच उगते यहां की प्रसिद्ध खुबानी के वृक्ष। लेह के निकट हेमिस वन्यजीव अभयारण्य में स्नोलैपर्ड (हिम-तेंदुआ) नामक दुर्लभ बाघ जाति को सम्पूर्ण संरक्षण प्राप्त है।

लद्दाख के दक्षिण में है लेह-मनाली-राष्ट्रीय-मार्ग जो संसार के सबसे दुर्गम मार्गों में स एक है। बात 1970 की है, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण उत्तरी परिमण्डल के डा0 यू0 सी0 भट्टाचार्य इस मार्ग से अपने दल सहित जीप में लेह पहुंचने वाले सबसे पहले असैनिक भारतीय बने। इस मार्ग की मुख्य कठिनाईयों में खराब सड़क, रेत व शीत लहरों के साथ साथ सदा खिसकते रहने वाले पहाड़ों से सटी सड़कों के ऊपर थंगलंग ला, लाचूलंग ला एवं बारालाचा ला दर्रे हैं जिनकी ऊंचाई 15000 फीट से ऊपर है। इन दर्रों में रहना व काम करना तो दूर, आक्सीजन की कमी के कारण सांस लेना भी दूभर हो जाता है। बारालाचा ला के दक्षिण से हिमाचल प्रदेश का लाहुल क्षेत्र आरंभ होता है और टान्डी नामक स्थान पर पहुंचने पर चन्द्रा व भागा नदियों का संगम दृष्टिगोचर होता है। यहीं से ये दोनों नदियां मिलकर चिनाब कहलाती हैं, जो आगे चलकर कश्मीर की शान बनती है।

ग्राम्फू के बाऐं से एक रास्ता कुंजम दर्रा होते हुए स्पिती को जाता है। स्पिती भी वानस्पतिक दृष्टि से लद्दाख जैसा ही है। आदिकाल से ही स्पिती बौद्ध धर्म के मानने वालों, जिनकी यहां बाहुल्यता है, का एक मुख्य केन्द्र रहा है।

लाहुल के दक्षिण में रोहतांग दर्रा है, जिसको पार करते ही मध्य हिमालय की रमणीय श्रृंखलाऐं फैली हैं। इसी दर्रे से व्यासनदी अपनी यात्रा आरम्भ करती है और इसी की घाटी में कोठी, मनाली और कुल्लू आदि अति रमणीक स्थल हैं। व्यास घाटी के पश्चिम में हिमालय का गौरव धौलाधार पर्वतमाला है। धर्मशाला, चम्बा और खजियार जैसे सुन्दर पर्यटक स्थलों के अलावा रावी नदी भी यहीं से आरम्भ होती है। यहीं की ऊंची पहाड़ियों के मध्य स्थित है मणिमहेश की पावन झील। रावी घाटी के वन एवं वनस्पति अभी भी अपने यौवन काल में हैं। पर्याप्त संसाधनों के अभाव में मानव के विनाशकारी हाथ अभी तक इन पर नहीं पड़ पाये हैं। हिमाचल के दक्षिणी छोर पर पंजाब से सटा है भाखड़ा का विशाल जल सागर। भाखड़ा परियोजना हिमाचल के विकास के लिए वरदान साबित हुई है। अभी कुछ ही वर्षों पूर्व एक अत्यन्त महत्वाकांक्षी योजना के द्वारा इस बांध की जल आपूर्ति को बढ़ाने के उद्देश्य से व्यास नदी का जल सतलज में मिलाया गया। इस परियोजना में भी सरकार ने भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण से इस योजना से संभावित वानस्पतिक क्षति के बारे में एक सर्वेक्षण करवाया। हिमाचल प्रदेश के मुख्य शहर शिमला का भारतीय पर्यटक स्थलों में अपना ही स्थान है। देवदार व बुरांश के घने वन, निम्न जलवायु एवं प्रकृति के विहंगम दृश्य यहां की विशेषताएं हैं। यहीं से आरम्भ् होता है भारत-तिब्बत राष्ट्रीय मार्ग। यह मार्ग भी एक दुर्गम मार्ग है। सतलज नदी के साथ-साथ यह सड़क हिमाचल के सबसे सुन्दर जिले किन्नौर को जाती है। किन्नर कैलाश का देश

किन्नौर। किन्नौर प्रसिद्ध है यहां के सुन्दर वासियों एवं उनकी वेशभूषा के लिए। और हां चिलगोजों के लिए। चिलगोजा एक बहुमूल्य मेवा है और भारत में केवल किन्नौर में ही पाया जाता है। यह एक विशेष प्रकार के चीड़ वृक्ष, (पाइनस जेरार्डियाना) का बीज होता है।

यही मार्ग आगे स्पिती की राजधानी काजा तक जाता है जो पूर्व में एक रिसायत थी। यह पूरा क्षेत्र भी बंजर सा ही है। यहां पर सर्वेक्षण कार्य करना अपने आप में एक चुनौती है। इस क्षेत्र की पिनघाटी भी एक संरक्षित क्षेत्र है। यहां पर पाया जाता है आई बैक्स बकरा। इसके अलावा इस मार्ग में सांगला, पूह और चितकुल भी उत्तम स्थल हैं।

हिमाचल के पूर्व में स्थित है उत्तर प्रदेश का पर्वतीय क्षेत्र। देहरादून शिवालिक एवं निम्न हिमालय के बीच की एक सुन्दर घाटी है जिसके पश्चिम में यमुना एवं पूर्व में गंगा नदियां बहती है। इसके अतिरिक्त गढ़वाल के उत्तरकाशी, टिहरी, चमोली, एवं पौड़ी जिले पर्वतीय जिले हैं। उत्तरकाशी जिले में हिमाचल की सीमा से लगे हरकी दून क्षेत्र की तो बात ही अपनी है। स्वर्गारोहिणी पर्वत के तले भोजपत्र के वृक्षों की छाया में, मखमली घास पर खिले रंग-बिरंगे पुष्पों का विहंगम दृश्य पृथ्वी पर स्वर्ग की संज्ञा को सार्थक करता है। यह क्षेत्र अब गोविन्द पशु विहार राष्ट्रीयउद्यान के नाम से एक संरक्षित क्षेत्र है। शीतोष्ण कटिबंधीय उप हिमाद्रि और हिमाद्रि वनस्पति की यहां बाहुल्यता है। वनस्पति की दृष्टि से यमुनोत्री क्षेत्र भी अच्छा है। यहीं से धरासू होते हुए उत्तरकाशी की प्राचीन नगरी पहुंचते हैं। भागीरथी के तट पर बसे इसी नगर से गंगा की घाटी में जाते हैं। घने एवं भीमकाय देवदारों के बीच से हर्सिल पहुंचते हैं। यह स्थान अपने सुन्दर दृश्यों और सेवों के लिये प्रसिद्ध है। आगे निलंग घाटी से पहुंची जाड गंगा को पार कर गंगोत्री पहुंचते हैं। कहते हैं किसी कियी समय गंगा का उद्गम गंगोत्री के पास से ही था किन्तु अब इसका उद्गम स्थल गोमुख ग्लेशियर पिघलते-पिघलते अठारह किलोमीटर पीछे खिसक गया है। आज गोमुख तक की पैदल यात्रा करनी पड़ती है। नाना प्रकार के पुष्पों से भरी यह खुली घाटी गोमुख के समीप जाकर बंजर सी लगती है।

गोमुख एक विचित्र सा स्थल है। धार्मिक आस्था के अतिरिक्त यहां का दृश्य भी दैविक ही है। भीमकाय बर्फीली भागीरथी, शिवलिंग, सुमेरु और सुदर्शन चोटियों के बीच गंगा का उद्गम होता है। गुफानुमा गोमुख का लंबा गंगोत्री ग्लेशियर, जिसके ऊपर गंगा की प्रहरी भागीरथी की तीन बर्फीली चोटियां हैं। इस लंबे और खतरनाक ग्लेशियर को पार कर तपोवन पहुंचते हैं जो गढ़वाल के सबसे मनोहारी स्थलों में से एक है। दूर तक फैले घास के मैदान जिसके एक छोर पर भागीरथी चोटियां हैं तो दूसरी ओर शिवलिंग। पर्वतारोही शिवलिंग को सुन्दर चोटी मानते हैं। उत्तरकाशी के उत्तर-पश्चिम में डोडीताल भी एक मनोरम स्थल है। सुन्दर वनों, पुष्पों एवं दृश्यों के अलावा यहां की शान्त झील हिमालय की प्रसिद्ध ट्राउट मछली के लिए प्रसिद्ध है।

इसी भागीरथी का टिहरी की प्राचीन नगरी में भिलंगना से मिलन होता है। यहीं पर एशिया का सबसे बड़ा जल विद्युत बांध निर्माणाधीन है। भारतीय वानस्पति सर्वेक्षण के श्री बी० पी० उनियाल ने हाल ही में इस बांध के निर्माण से भविष्य में होने वाली वनस्पतिक क्षति की संभावनाओं के विषय में एक महत्वपूर्ण अध्ययन किया है। भिलंगना घाटी से हिमालय के एक अन्य आन्तरिक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। घुत्तू इसी घाटी का एक गांव है, जहां तक कि बस यात्रा गढ़वाल के सबसे सुन्दर चीड़ के

वनों के मध्य से होती है। आदिकाल से तीर्थयात्री पैदल उत्तरकाशी से बूढ़ाकेदार होते हुए यहां पर पैदल केदारनाथ जाते थे।

भिलंगना के साथ-साथ पैदल मार्ग इसके उद्गम स्थल खतलिंग ग्लेशियर तक जाता है। यह मार्ग देवदार, बांज, बुरांस, रागा, थुनेर आर एसर व भोज पत्र के वनों से भरा है। रास्ते का गांव गंगी भी अपने आप में एक अजूबा है। ऊंची काठी और मध्यम नैन-नक्श के ये लोग न तो आस-पास के लोगों से कई मतलब रखते हैं और न ही उनका कोई रीति-रिवाज या रहन-सहन बाहरी लोगों से मेल खाता है। खतलिंग का हिमाद्रि क्षेत्र नाना प्रकार की वनस्पतियों का भंडार है। कई छोटी हिम श्रृंखलायें यहां से दिखाई पड़ती है। इसी घाटी के ऊपर पश्चिम में एक अति दुर्गम पैदल मार्ग से सहस्त्रताल पहुंचते हैं। लगभग सत्रह हजार फीट की ऊंचाई पर स्थित सहस्त्रताल हिमखण्डों के बीच का खुला मैदान है जहां पर सात ताल है। इन तालों के आसपास ब्रह्म कमल और फेनकमल प्रचुर मात्रा में दिखाई देते हैं।

घुत्तू से केदारनाथ की पैदल यात्रा अति कठिन चढ़ाई वाले वनों के बीच से होती है। जिसके बीच में पंवाली का सुन्दर बुग्याल है। यहां तक की कठिन यात्रा को स्थानीयलोग "पंवाली की चढ़ाई-चीन की लड़ाई" की संज्ञा देते हैं। वृक्ष सीमा पर स्थित होने के कारण वृक्ष तो यहां कहीं-कहीं ही दिखते हैं और वह भी केवल एक ही किस्म के बांज वर्ग का खरसू। पृथ्वी पर स्वर्ग तथा भारत का स्विट्जरलैंड जैसी उपाधियां पाने के बावजूद पर्याप्त संसाधनों के अभाव में यह क्षेत्र अभी भी पर्यटन की दृष्टि से बिलकुल पिछड़ा हुआ है।

गंगा के तट पर स्थित ऋषिकेश नगरी हिमालय का द्वार है। गंगा नदी के बाई ओर के क्षेत्रों में जाने के लिए यहीं से यात्रा प्रारम्भ करते हैं। वैसे यहीं से एक सड़क गंगा के दाहिनी ओर की घाटियों के लिए भी फट जाती है। इस घाटी की मुख्य विशेषता है यहां के प्रयाग। देवप्रयाग नामक स्थान पर उत्तरकाशी से आई भागीरथी का बद्रीनाथ क्षेत्र से आई अलकनंदा के साथ संगम होता है। यही दोनों नदियां मिलकर गंगा कहलाती हैं। अलकनन्दा घाटी में सबसे पहले श्रीनगर शहर आता है। प्राचीन गढ़वाल की राजधानी श्रीनगर का क्षेत्र अत्यधिक नीचा एवं गर्म है। इसी कारण यहां की वनस्पति उप-उष्णकटिबन्धीय है वैसे कुछ ऊंचे स्थानों पर चीड़ के वृक्ष भी दिखते हैं। इसके अलावा सबसे अधिक मात्रा में पाया जाता है कैक्टस नुमा विशालकाय यूफोर्बिया रॉयलेयाना, जो यहां की जलवायु के शुष्क होने का स्पष्ट प्रमाण है। आगे चलते हुए रुद्रप्रयाग के दर्शन होते हैं, जहां अलकनन्दा में केदारनाथ से आई मंदाकिनी नदी मिलती है। इसी के साथ-साथ एक सड़क केदारनाथ घाटी में प्रवेश करती है। घने वनों से ढकी केदारनाथ घाटी सुन्दर पुष्पों से भरी है इसी कारण केदारनाथ के लगभग 14 किलोमीटर के पैदल रास्ते में भांति-भांति के पुष्प मिलते हैं। केदारनाथ एक पावन तीर्थ स्थल के अलावा एक रमणीक दृश्यों वाली जगह है। इसकी महत्ता के विषय में शिवपुराण में कहा गया है :-

अस्य खण्डस्य स स्वामी सर्वेशोऽपि विशेषतः ।
सर्वकामप्रदः शम्भुः केदाराख्या न संशयः ।।

बद्रीनाथ मार्ग पर रुद्रप्रयाग से आगे कर्णप्रयाग है, जहां कुमाऊं अंचल से आकर पिंडरनदी

अलकनन्दा में मिलती है। पिंडर के साथ एक मार्ग दक्षिण को कुमाऊं में प्रवेश करता है। इसी मार्ग के उत्तर पूर्व में एक अन्य आकर्षक स्थल है रुपकुण्ड। जैसा कि नाम से ही विदित होता है रुपकुण्ड त्रिशूली व नन्दाघुंटी हिमशिखरों की जड़ में स्थित लगभग 17000 फीट की ऊंचाई पर एक अतिरमणीक झील है। यहां पर पड़े हैं घोड़ों एवं मानवों के अस्थि पंजर। कहते हैं किसी काल में गढ़वाल की पूजनीय देवी मां नन्दा की जात यात्रा पर आये कुछ यात्री यहां दबकर मर गये थे। आज भी बारह वर्ष मे एक बार यहां नन्दा की जात आती है जिसमें हजारों भक्तों का नेतृत्व करता है एक विचित्र चार सींग वाला मेढ़ा। यहां आने के पश्चात् यह मेंढा ऊंचे पर्वतों में अंर्तधान हो जाता है। रुपकुण्ड हिमाद्रि वनस्पति एवं पुष्पों का विशेष स्थान है। विष्णु भगवान का ब्रह्म कमल और फेनकमल आदि दुर्लभ पुष्प यहां सैकड़ों-हजारों की संख्या में उगते हैं। ऐसे स्थान साल में केवल वर्षा ऋतु में दो तीन महीनों के लिये ही खुल पाते हैं और इसी दौरान बर्फ के पिघलते ही इन पुष्पों की छटा खिल उठती है। रुपकुण्ड के मार्ग में ही गढ़वाल का गुलमर्ग बेदिनी बुग्याल है यहां से पूर्ण हिमालय श्रृंखलाओं का मनोहारी दृश्य दिखाई पड़ता है।

बद्रीनाथ मार्ग का चौथा प्रयाग है नन्द प्रयाग। यहां नन्दाकिनी नदी रुपकुण्ड के ऊपर स्थित नन्दा घुंटी चोटी से निकलकर अलकनन्दा में लीन होने के लिए पहुंचती है। इस सुन्दर घाटी में शीतोष्ण कटिबंधीय व उपहिमाद्रि वनस्पति के अलावा नाना प्रकार के शंकुधर वन हैं। इसके अलावा पर्णगो में यह घाटी विशेष रुप से धनी है। वास्तव में नन्दादेवी की रुपकुण्ड यात्रा, हेमकुण्ड से होती हुई इसी मार्ग से वापस आती है।

जोशीमठ चमोली जिले का मुख्य शहर है। कहते हैं कि हिन्दूधर्म के उत्थानकर्ता आदिशंकराचार्य ने यहीं तपस्या की थी, जिसका परिणाम है यहां का प्राचीन वृक्ष (मोरस सेर्राटा), जो देश के विशालतम एवं प्राचीनतम वृक्षों में से एक है। जोशीमठ के नीचे स्थित है विष्णुप्रयाग। यहां अलकनन्दा के साथ कुमाऊं से आई धौली नदी मिलती है। इस नदी की आधी नदी कुमाऊं में नेपाल सीमा पर काली नदी में मिल जाती है। विष्णु प्रयाग से ही बद्रीनाथ एवं वनस्पतिज्ञों की मक्का फूलों की घाटी का मार्ग जाता है। बद्रीनाथ का पावन धाम एवं उसके आगे माणा गांव इस मार्ग का अंतिम छोर है। बद्रीनाथ से नीलकंठ चोटी विशेष रुप से सुन्दर दिखाई देती है। बद्रीनाथ मार्ग पर ही पांडुकेश्वर स्थान पांडवों के निवास के कारण आज भी प्रसिद्ध है। यहां के मन्दिर में मिले शिलालेखों से सिद्ध होता है कि पांडव वानप्रस्थ से पूर्व इस स्थान पर ठहरे थे। यहीं पर गोविन्दघाट है। यहां से अलकनन्दा पार करके भ्यूंडर घाटी में प्रवेश करते हैं। फूलों की घाटी के लिए प्रसिद्ध इस घाटी में है वानस्पतिक विविधता एवं वानस्पतिक जातियों की बाहुल्यता अन्यजगहों से अधिक है। घंघरिया तक के बारह किलोमीटर पैदल रास्ते में उप-उष्ण कटिबंधीय वनस्पति के मध्य होकर जैसे-जैसे ऊंचे चढ़ते हैं, वनस्पति स्वरुप परवर्तित होता जाता है घाटी के घने वनों में नीचे तून, बांज, एस्कुलस और अखरोट आदि चौड़ी पत्ती के वन हैं तो थोड़ा ऊपर रागा के शंकुधर वन। भ्यूंडर गांव से एक दुर्गम रास्ता काकभुषुंडी नामक ऊंची झील को जाता है। यहीं से एक रास्ता फूलों की घाटी राष्ट्रीय उद्यान को जाता है। प्रसिद्ध अंग्रेज पर्वतारोही सर फ्रैंक स्माइथ ने इस घाटी को खोजा था और बाद में उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "वैली ऑफ फ्लावर्स" में इस घाटी की वानस्पतिक समृद्धि का वर्णनकरते हुए कहा है कि मैं घाटी में कहीं भी पैर नहीं रख सकता हूं क्योंकि हर जगह मेरे पैरों के नीचे सुन्दर, कोमल पुष्पों के कुचले जाने का डर है। घंघरिया से पुष्पावती नदी के साथ साथ, रागा

एवं भोज पत्र के जंगलों के बीच से एक रास्ता मुख्य घाटी को जाता है। यहां पहुंचते ही भव्य रतबन पर्वत के दर्शन होते हैं। इस घाटी को देखने के लिए सबसे उपयुक्त समय है जुलाई से सितम्बर के बीच, जब यहां सबसे अधिक किस्मों के पुष्प खिलते हैं। जितनी प्रजातियों के पुष्प अकेले इस घाटी में मिलते हैं,उतने शायद ही कहीं और देखने को मिलें। यहां पर खिलने वाले कुछ पुष्पों में हिमालयन ब्लू पॉपी, हथाजड़ी, अतीस, बनकाकड़ा, पॉलीगोनम इन्यूला, पैडिकुलारिस व सिप्रीपिडियम एवं एपीपोगियम नामक दुर्लभ ऑर्किड़ों के अलावा विचित्र पराजीवी बैलेनोफोरा मुख्य हैं। सर फ्रैंक स्माइथ के यहां के वर्णन से आकर्षित होकर इंगलैंड के एडिनबर्ग उद्यान से आई महिला जोएन लैगे तो यहीं फिसल कर मर गई उनकी कब्र आज भी इस घाटी में देखी जा सकती है।

पुष्पावती नदी के बायें तट की टिपराखड़क श्रृंखला के दूसरे छोर पर घंघरिया के ठीक ऊपर लगभग 15,500 फीट की ऊंचाई पर लोकपाल झील है। कहते हैं भगवान लक्ष्मण ने यहां तपस्या की थी। आजकल यहां प्रसिद्ध सिख गुरुद्वारा हेमकुण्ड साहब भी बन गया है। इस क्षेत्र में हिम सीमा के कुछ दुर्लभ पौधे मिलते हैं। ब्रह्मकमल, फेनकमल, एंड्रोसेसी, स्वर्शिया, पॉलीगोनम आदि की जातियों के अलावा डा0 यू0 सी0 भट्टाचार्य ने यहां से एक नवीन पौधा यूफार्बिया शर्मी भी खोजा। वास्तव में यह पूरी घाटी ही संरक्षित वन क्षेत्र में आनी चाहिए। अभी तक केवल मुख्य फूलों की घाटी ही राष्ट्रीय उद्यान क्षेत्र में आती है।

जोशीमठ से पूर्व में धौलीनदी के साथ-साथ रास्ता मलारी और नीती दर्रे को जाता है। इस मार्ग पर पहले दर्शन होते हैं गढ़वाल की सबसे ऊंची नन्दादेवी चोटी के। नन्दा देवी, गढ़वाल की पूजनीय देवी है। पर्वतारोहियों और वनस्पतिज्ञों की तपस्थली भी। थोड़ा आगे तपोवन नामक स्थानपर गर्म पानी के चश्मे दर्शकों को चकित कर देते हैं। धरती की कोख से निकलता गर्म जल ऊंचे फव्वारों के रुप में हवा में उड़ता है। आगे रेणी गांव है। यहां धौली नदी में नन्दा देवी से निकली ऋषि गंगा मिलती है। ऋषि गंगा घाटी नन्दा देवी क्षेत्र में प्रवेश करने का पुराना मार्ग है। यह रास्ता अपनी दुर्गमता के लिये विश्व भर में प्रसिद्ध है। चिपको आन्दोलन की प्रणेता गौरादेवी के इस गांव रेणी से ही नन्दा देवी जीवमण्डल सुरक्षित क्षेत्र की सीमा आरम्भ होती है। यह जीवमण्डल क्षेत्र देश के सात ऐसे क्षेत्रों में से एक है। इसकी विशेषता है यहां कि घनी वनस्पति एवं वन्य जीव। पिछले कुछ दशकों में नन्दा देवी क्षेत्र पर्वतारोहियों एवं सैलानियों के लिये विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा। पर्यटन से हुई प्राकृतिक संपदा की क्षति को ध्यान में रखते हुए इस क्षेत्र को संरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया है। वनस्पति एवं वन्य जीवन की विविधता से भरे यहां के वनों के बीच डिब्रूघेटा, सरसूपातल और धरांसी के सुन्दर बुग्याल हैं। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वर्तमान निदेशक डा0पी0 के0 हाजरा का यहां की वनस्पति का अध्ययन उल्लेखनीय है। यहीं से उन्होंने साउस्सुरेआ सुधान्शुई नामक नवीन पौधे की खोज की। एक संयुक्त पारिस्थितिकी एवं वैज्ञानिक अभियान के साथ गये भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण उत्तरी परिमण्डल के डा0 बिपिन बलोदी ने पिछले वर्ष इस जीवमण्डल क्षेत्र की वनस्पतियों का अध्ययन किया।

जोशीमठ क्षेत्र में ही ओली का बुग्याल आजकल बहुत प्रचलित है। ऊंचे खुले मैदानों में, नन्दा देवी चोटी के भव्य दृश्य की पृष्ठ भूमि में देश विदेश से आईस स्कीइंग क्रीड़ा करने हेतु सैकड़ों लोग हर साल यहां पहुंचते है। इसके अलावा क्वारी पास भी एक अति रमणीक स्थल है, जहां के लिए

जोशीमठ से ही पैदल मार्ग जाता है।

चमोली जिले के बीचों बीच है गढ़वाल के पंचकेदारों में से केदारनाथ के साथ के चार अन्य केदार जो तुंगनाथ, रुद्रनाथ, मध्यमहेश्वर और कल्पेश्वर के नाम से जाने जाते हैं। ये सभी स्थान हिमाद्रि, वानस्पतिक क्षेत्रों में स्थित हैं। ऊंचे खुले एवं हरी भरी मखमली घास के मैदानों में पुष्पों की छटा इन सभी जगहों में देखते ही बनती है। अलकनन्दा घाटी में चमोली जिले के मुख्यालय गोपेश्वर से एक सड़क मन्दाकिनी घाटी में जाकर मिलती है। यह सड़क इस क्षेत्र की सबसे ऊंची सड़क है। वानस्पतिक दृष्टि से यह क्षेत्र गढ़वाल का सबसे धनाढ्य क्षेत्र कहा जा सकता है। इसी मार्ग पर मंडल एक सुन्दर गांव है। बांज के घने वन एवं दर्जनों प्रकार के आर्किड पौधे यहां की विशेषता हैं। मंडल से लगातार चढ़ते हुए काँचुलाखड़क पहुंचते हैं। यह स्थान हिमालय के हिमाद्रि क्षेत्रों के दुर्लभ कस्तूरा मृग के प्रजनन केन्द्र के कारण प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में खरसू, कैल, बुरांस और रागा के घने व नम वन आज भी अपने सौंदर्य को संजोये हैं। रुद्रनाथ एवं तुंगनाथ के नन्दन वन से बुग्यालों को भी यहीं से जाते हैं। चोपता इस सड़क का सबसे ऊंचा गांव है, जिसकी ऊंचाई लगभग दस हजार फीट है। कस्तूरा मृग के अलावा यह वन बाघ, भालू और काकड़ आदि पशुओं तथा सैकड़ों प्रकार के कीड़े मकोड़ों व तितलियों से भरा पड़ा है। ऐसे वनों के संरक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इसी क्षेत्र में देवरिया ताल और मसरताल नामक सुन्दर पर्वतीय ताल भी है।

गढ़वाल का पौड़ी जिला पूर्ण रुप से मुख्य हिमालय एवं इसकी नदियों के दक्षिण में स्थित होने के कारण लगभग दस हजार फीट तक ही ऊंचा है। फिर भी कुछ क्षेत्रों में चीड़ तो कुछ में बांज व बुरांस के घनघोर जंगल हैं। इनमें दुधातोली के वन विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। यहीं से पवित्र रामगंगा नदी का जन्म होता है।

कुमाऊं अंचल में कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान को छोड़कर कोई अन्य क्षेत्र संरक्षण में नहीं आये हैं, किन्तु वानस्पतिक दृष्टि से यह अंचल सदा से भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की एकाग्रता का केन्द्र रहा है। नैनीताल रानीखेत और अल्मोड़ा आदि स्थान वैसे तो सुन्दर हैं किन्तु वानस्पतिक दृष्टि से निम्न सी। जिला अल्मोड़ा में पिण्डारी ग्लेशियर क्षेत्र रुचिकर है। वैसे भी यह क्षेत्र नन्दा देवी जैव मण्डल की सुरक्षित क्षेत्र की परिधि में आता है। अंचल का पूर्वी जिला पिथौरागढ़ उत्तर में तिब्बत तथा पूर्व में नेपाल की अंतर्राष्ट्रीय सीमा को छूता है। यहीं के लोहाघाट नामक स्थान से मध्य हिमालय (नेपाल) की ऊंची हिम श्रृंखलाओं के भव्य दर्शन होते हैं।

जौलजीबी नामक स्थान पर गौरी गंगा एवं काली गंगा नदियों का संगम है। गौरी गंगा नदी मिलम ग्लेशियर से निकलती है। अपने उद्गम से संगम तक यह घाटी घनी एवं विविध वनस्पतियों का भण्डार है। निचले क्षेत्रों में अत्यधिक गर्मी वाली इस संकरी घाटी में नदी के तेज प्रवाह से उत्पन्न पानी की बौछारों के कारण संपूर्ण क्षेत्र गर्म एवं नमी वाला है। इस कारण यहां की वनस्पति उप-उष्ण कटिबंधीय है, तथा यहां चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों का बाहुल्य है। इन वृक्षों पर नाना प्रकार के आर्किड मिलते हैं। घाटी के कुछ ऊंचे क्षेत्र जिनमें चीड़, बुरांस और बांज के वृक्ष मिलते हैं, भी वानस्पतिक भ्रमण हेतु रुचिकर हैं। कफलानी और दफियाधूरा सुरक्षित वन हैं। नदी के तट के आसपास के क्षेत्रों को वानस्पतिक विविधता के बावजूद किसी प्रकार का संरक्षण नहीं मिला है।

मुन्शियारी गौरी घाटी का एक मनोरम स्थल है। यहां से पंचाचूली समूह की चोटियां अतिसुन्दर दिखती हैं। इससे ऊपर गौरी घाटी के उत्तरी क्षेत्र रालम एवं मिलम ग्लेशियरों के लिए प्रसिद्ध हैं और साथ ही अपनी नाना प्रकार की वनस्पतियों के लिये भी। यहां भी मारतोली का विशाल बुग्याल है। कुछ क्षेत्र शीत मरुस्थलीय हैं। यहां कुछ शाकीय वनस्पतियां और झाड़ियां अधिक मिलती हैं। जिले के अन्तिम पूर्वी छोर के साथ-साथ आदिकाल से प्रचलित "सिल्करुव" है। यही वह मार्ग है जिस पर भारत व चीन के मध्य व्यापार हुआ करता था। आजकल इस मार्ग सें लिपू लेख दर्रे को पार करके पर्यटक कैलाश एवं मानसरोवर की यात्रा पर जाते हैं। तिब्बत के पठार के ठीक नीचे स्थित होने के कारण यहां की वनस्पति में भी शीत मरुस्थलीय तत्व मिलते हैं।

क्या आज पश्चिमी हिमालय की वानस्पतिक धरोहर अपने मौलिक वैभव को बनाये रखने में सक्षम है? यह एक अहम प्रश्न है। लगातार बढ़ती आबादी और आवश्यकताओं ने प्रकृति संरक्षण की संज्ञा पर एक प्रश्न चिह्न लगा दिया है। आबादी के साथ-साथ बढ़ती चारे एवं ईंधन की आवश्यकता ने पूर्ति के अभाव के चलते हिमालय के वनों को आड़े हाथों लेना आरम्भ कर दिया है। मुख्यतया लोवर हिमालय के घनी आबादी वाले क्षेत्र जो लगभग सात हजार फीट तक हैं, के वासी अन्धाधुन्ध पेड़ों को काटते हैं। मुख्य शिकार होते हैं बांज के वन, क्योंकि बांज एक अच्छी जलाऊ लकड़ी है और साथ ही उत्तम चारा भी। विडम्बना यह है कि बांज नमी बनाये रखने वाला एक सक्षम वृक्ष होता है। हिमालय के अधिकतर जल स्रोत भी बांज की शीतल छाया में जन्म लेते हैं। इस वृक्ष के विनाश से धरती सूख रही है। तीव्र गति से वनों के विनाश से पर्वतीय क्षेत्रों में तापमान बढ़ रहा है। वर्षा का आगमन कुछ डांवाडोल हो रहा है।

वृक्षों के कटान का दूसरा बड़ा परिणाम है मृदा ह्रास।पेड़ अपनी जड़ों के जाल से मिट्टी को बांधे रखते हैं किन्तु जिन स्थानों में कटान जारी है वहां पहाड़ खिसक रहे हैं। लाखों टन मिट्टी, धरती की सतह की सबसे ऊपजाऊ मिट्टी, एक छोटी वर्षा के साथ ही बहने लगती है। यही कारण है कि नदियों में मिट्टी की मात्रा बढ़ जाने से उनका जल स्तर बढ़ रहा है, बाढ़ें दिन-ब-दिन अधिक विनाशकारी हो रही हैं। एक अध्ययन के अनुसार पर्वतीय ढालों पर एक किलोमीटर सड़क निर्माण के लिऐ चालीस हजार से अस्सी हजार वर्ग मीटर तक मलबा हटाना पड़ता है साथ ही एक हेक्टेयर भूमि स्खलन से 143 ग्राम नाइट्रोजन, 628 ग्राम पोटाशियम, 1377 ग्राम कैल्शियम और 1316 ग्राम कार्बन तत्व नष्ट हो जाते हैं।

बढ़ते तापमान से हिमालय क्षेत्र के विशाल हिमखण्ड, जो बारह मासी बर्फ के कारण पानी के सदाबहार भंडार हैं और हमारी सभी मुख्य नदियों के स्रोत हैं, तीव्र गति से पिघल रहे हैं। यह कह सकते हैं कि जितनी बर्फ उन्हें हर वर्ष प्राप्त होती है, उससे अधिक मात्रा में पिघलने लगी है। क्या होगा समस्त उत्तर भारत के लाखों लोगों एवं खेतीबाड़ी का, यदि हमारे ये जल स्रोत दिन सूख गये? इस गति से हिमालय में पारिस्थितिक ह्रास से तो वह दिन दूर नहीं लगता जब पृथ्वी के रक्षा-कवच, ओजोन लेयर, में छिद्र होने का खतरा एक वास्तविकता बन जायेगा।

हिमालय विश्व की विशालतम पर्वता माला तो अवश्य है किन्तु उम्र में सबसे छोटा। भूविज्ञान की भाषा में तो यह अभी अपने बाल्यकाल की अस्थिर अवस्था से ही गुजर रहा है। यही कारण है जहां

एण्ड्स, आल्प्स और शिवालिक आदि प्रमुख पर्वतमालायें पुरानी होने के कारण स्थिर हो गई हैं, वही हिमालय की ऊंची हिम श्रृंखलायें, घाटियां, ढालें, चट्टानें, देखने में तो विशाल हैं परन्तु भीतर से अत्यंत कोमल। जरा झटका लगा नहीं कि पूरा पहाड़ नीचे। दुर्भाग्यवश इस सच्चाई को जानते हुए भी हम लोगों ने आज तक नजर अंदाज किया है शायद इसी कारण हमने हिमालय क्षेत्र को लेकर भी बहुत बड़ी-बड़ी योजनायें बना डालीं, जिनके लिए ये पर्वत शारीरिक रुप से पूर्णतया परिपक्व नहीं हुए हैं। आरम्भ में तो हमने अपनी इस विराट व बहुमूल्य राष्ट्रीय धरोहर को पहाड़, के अलावा कुछ समझा ही नहीं, दूरगामी क्षेत्रों तक सड़क-मार्ग बनाने की लालसा में डायनामाईट और बुलडोजरों का उपयोग, हिला चुका है, इन पर्वतों को। कई अबोध से छोटे पर्वत तो मिट्टी बन पास की नदियों में मिल चुके हैं। इस कार्य से वन विनाश एवं वनों पर अश्रित अन्य जीवों की स्थिति का अनुमान एहज ही लगाया जा सकता है।

इन सड़कों ने स्थानीय लोगों के जीवन को तो अवश्य आसान बनाया है किन्तु साथ ही कुछ अप्रत्यक्ष समस्याओं को भी जन्म दिया है। उदाहरण है बद्रीनाथ व गंगोत्री पहुंची सड़कें। यहां पर्यटकों की संख्या सड़क निर्माण के पश्चात् सैकड़ों गुना बढ़ गयी है। जब किसी क्षेत्र में वहां की क्षमता से अधिक लोग पहुंच जाते हैं तो उसका सीधा प्रभाव वहां के प्राकृतिक संसाधनों पर पड़ना आरम्भ होता है। अपर्याप्त ईंधन के अभाव में वन इनके शिकार होते हैं। इसके साथ ही अधिक मकानों की आवश्यकता भी वनों की बलि देकर ही पूरी की जा सकती है।

बढ़ती जनसंख्या से उत्पन्न खाद्यान्न की मांग कृषि भूमि को तीव्रता से बढ़ा रही है।

अस्थिर होने के कारण हिमालय क्षेत्र मूल रुप से किसी भी बड़ी निर्माण परियोजना जैसे बांध व सड़क आदि के लिये उपयुक्त नहीं है। हाल ही में आये भीषण भूकम्प ने उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों, विशेषकर गढ़वाल के उत्तरकाशी व टिहरी जिलों को हिलाकर रख दिया। उत्तरकाशी जिले में अगोडा नामक ग्राम पूर्ण रुप से धराशायी हो गया। पर्वतों के टूटने एवं नदियों के मार्ग अवरुद्ध होने के दृश्य प्रकृति के तांडव नृत्य के उदाहरण थे। भूगर्भशास्त्री एक बार पुनः यह सोचने को मजबूर हो गये हैं कि क्या वास्तव में हिमालय क्षेत्र की दुर्दशा हमारी महत्वाकांक्षाओं का परिणाम तो नहीं।

वाहनों के बढ़ते प्रदूषण, जलगुणवत्ता में होता ह्रास और घातक विदेशी वनस्पतियों का तीव्रता से भीतरी घाटियों में बढ़ना आदि भी गंभीर चिन्ता के विषय हैं। पार्थीनियम नामक पौधा जो मनुष्य, पशु-पक्षी, एवं अन्य वनस्पतियों के लिए हर प्रकार से घातक है, हिमालय की घाटियों में प्रवेश कर चुका है।

कुछ क्षेत्रों में तो स्थानीय लोगों की स्वार्थपरता और धनी बनने की महत्वाकांक्षा भी प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रही है। बड़े-बड़े शहरों के ठेकेदारों की मिली भगत से कुछ स्थानीय लोग बहुमूल्य जड़ी-बूटियों की चोरी करते हैं। डायोस्कोरिया, अतीस, सालमपंजा, जटामांसी और मीठा आदि बहुत अधिक मात्रा में चोरी किये जाते हैं। ऐसे लोग चोरी की गई वानस्पतिक संपदा को रातों रात दिल्ली व अमृतसर की मंडियों में पहुंचा देते हैं। इसके अलावा कुछ क्षेत्रों में सरकारी लाइसेंसो द्वारा कुछ विशेष बूटियों को निकाला जाता है किन्तु निकालने वाले कुछ अन्य मंहगी बिकने वाली जड़ी

बूटियों को भी खोदते हैं। चूंकी अधिकतर औषधिय पौधों की जड़ भी प्रयोग में आती है इसलिए उन्हें समूल उखाड़ा जाता है। यदि ये वनस्पतियाँ लुप्त हो गई तो ?

हिमाद्रि क्षेत्रों के हरी-भरी घास वाले बुग्यालों में ग्रीष्म ऋतु में जानवरों को चराने हेतु ले जाने की प्रथा पारम्परिक है किन्तु अब जानवरों की संख्या ऐसे बुग्यालों में उपलब्ध घास से अधिक बढ़ गयी है जिससे अब चराने से वनस्पति को होने वाले अप्रत्यक्ष लाभ के स्थान पर हानि ही हो रही है। वर्षा ऋतु में अत्यधिक पशुओं एवं बकरियों के कारण बेदिनी जैसे पुष्पों से सुसज्जित बुग्याल भी आजकल बंजर नजर आते हैं।

क्या अभी भी समय नही आया है कि हम इस दिशा में कुछ गहनता से विचार करे? क्या यह हमारा कर्त्तव्य नहीं कि हम अपनी धरोहर के प्रति चिन्तित हों? आज का लाभ कल की परेशानी हो सकती है, प्रत्यक्ष परेशानी, जिससे पूरा समाज त्रसित होगा। इसके साथ ही हमें यह भी देखना है कि भविष्य में विकास और प्रकृति संरक्षण साथ-साथ हो सकें। इसके लिए भी प्रकृति संरक्षण और प्रबन्धन में उचित सामंजस्य बिठाना होगा।

पश्चिमी हिमालय में पादप सर्वेक्षण

श्री कृष्णा मूर्ति

वनस्पतियों की उपादेयता मानव जीवन में विभिन्न रुपों में देखी जा सकती है, यथा भोजन, वस्त्र आवास, औषधि, मनोरंजन, रक्षा इत्यादि। इसी कारणवश मनुष्य अधिक से अधिक उपयोगी वनस्पतियों को खोजता रहा है तथा ज्ञात वनस्पतियों का संवर्द्धन और संरक्षण करता रहा है। इस संदर्भ में हम पाते हैं कि हिमालय अपनी प्राकृतिक संपदाओं के कारण सदैव से मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। अत्यंत प्राचीन काल से अनेकों वैज्ञानिक, अन्वेषक, वनस्पति शास्त्री आदि हिमालय के दुर्गम और सुरम्य घाटियों का सर्वेक्षण करते आ रहें है और यहाँ से वे अनेक प्रकार के पेड़ पौधे ले जाते रहे हैं।

भारत जैसे विशाल व विविध प्रकार की जलवायु वाले क्षेत्रों का वानस्पतिक अध्ययन एक ही स्थान पर रह कर सुगम नही था। भारत में वनस्पति सर्वेक्षण के संस्थापक ब्रितानवी वैज्ञानिकों और अन्वेषकों ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए पूर्व, पश्चिम, उत्तर, और दक्षिण में केन्द्र स्थापित किये थे। उस समय उत्तर में वानस्पतिक एवं पादप सर्वेक्षण के कार्य को संचालित करने के लिए सहारनपुर में केन्द्र स्थापित किया गया। सन् 1954 में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के पुर्नगठन की योजना के अंतर्गत उत्तरी केन्द्र देहरादून में स्थापित करना निश्चत हुआ। तद्नुसार 1.8.1956 को भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के उत्तरी परिमण्डल की देहरादून में स्थापना के साथ पश्चिमी हिमालय में पादप सर्वेक्षण एवं वानस्पतिक शोध का योजनाबद्ध कार्यक्रम प्रारंम्भ हुआ।

प्रस्तुत लेख में लेखक ने इस क्षेत्र में हुए प्रमुख वानस्पतिक सर्वेक्षणों का ब्यौरा प्रस्तुत किया है। यह विवरण अपने आप में न तो संपूर्ण है और न ही विस्तृत। यह मनुष्य के खोजी प्रवृत्ति का परिचय कराने का प्रयास मात्र है। प्रस्तुत लेख में इन पादप सर्वेक्षणों को दो वर्गो में रखा गया है।

1. सन् 1956 में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के पुर्नगठन से पहले किये गये वानस्पतिक सवेक्षण।
2. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के पुनर्गठन अर्थात् 1956 के बाद किये गये वानस्पतिक सर्वेक्षण।

सन् 1956 से पहले हुए वानस्पतिक सर्वेक्षण

आई0एच0 बर्किल (1965) ने अपनी पुस्तक "चैप्ट्र्स आन दि हिस्ट्री आफ बाटनी इन इन्डिया" के अन्तर्गत भारत वर्ष में हुई वानस्पतिक गतिविधियों का विस्तृत विवरण दिया है। उनके अनुसार अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में सन् 1774 में थामस बोग्ले ने भूटान से ल्हासा (तिब्बत) की यात्रा करने में सफलता प्राप्त की थी। बर्किल के ही कथनानुसार सन् 1796 में थामस हार्डविक ने श्रीनगर गढ़वाल में एक राजनीतिक अभियान के समय अलकनन्दा घाटी में पेड़ पौधों के नमूने एकत्रित किये थे। उसी दौरान गंगा एवं यमुना नदियों के उद्गम स्थानों को खोजने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई क्यों कि भारत के मैदानी भागों का विकास हिमालय से निकलने वाली इन तथा इन्हीं की तरह

अनेकों निरंतर बहने वाली विशाल नदियों पर ही निर्भर था। इस कार्य के लिए 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विलियम स्पेन्सर वेब्ब (1784-1865) अपने दो साथियों, हादेर जंग हेयरसे तथा फेलिक्स बिन्सेन्ट रैपर के साथ यमुनोत्री एवं गंगोत्री क्षेत्रों की यात्रा की। इससे प्रभावित होकर विलियम मूर क्राफ्ट (1765-1825) ने हेयरसे को साथ लेकर गंगा के उद्गम से भी आगे नीती दर्रा और मानसरोवर झील के पास सतलज के उद्गम स्थान तक की रोमांचक यात्रा की और अपने साथ पौधों के नमूनों का एक बंडल ले आये जो बाद में लंदन राबर्ट ब्राउन को भेजा गया। बुकनन ने सन् 1813 के आसपास यमुना के साथ लगे क्षेत्रों से पौधों के नमूने एकत्रित किये। जार्ज गोवन ने 1813 में शिमला के निकट सबाथू क्षेत्र से पौधे एकत्रित किये। इसी समय प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ हो जाने के कारण वानस्पतिक गतिविधियों में कुछ शिथिलता आ गई।

प्रथम विश्वयुद्ध की सनाप्ति के बाद विलियम स्पेन्सर वेब्ब ने नेपाल की काली नदी के पश्चिम में स्थित स्थानों की यात्रा की। इसी यात्रा के दौरान उनके साथ नैथानियल वालिच द्वारा भेजे गये कुछ व्यक्तियों ने पौधों के नमूने एकत्रित किये जो सन् 1819 में सर जेम्स एडवर्ड स्मिथ के पास लन्दन भेजे गये। ऐसा भी विवरण मिलता है कि वालिच द्वारा नेपाल भेजे गये संग्रहकर्ताओं में एक भरत सिंह ने *रहोड्रोडेन्डोन आरबोरियम* के बीजों को प्रथम बार एकत्र करके ब्रिटेन भेजा था। वालिच ने समय समय पर कई व्यक्तियों को हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में पौधों के नमूने एकत्रित करने के लिए भेजा था। इनमें एक राबर्ट ब्लिकवर्थ ने काफी समय तक पश्चिमी हिमालय में कार्य किया । नैथेनियल वालिच ने सन् 1829 में हरिद्वार, सहारनपुर और देहरादून के आसपास पौधों के नमूने एकत्रित किये। ग्रिफिथ ने सन् 1830 में देहरादून के आसपास पौधों के नमूने एकत्रित किये। इसी समय के आस पास डलहौजी के अर्ल की पत्नी श्रीमती डलहौजी ने लगभग छः सौ पौधों के नमूने शिमला क्षेत्र से एकत्रित किये। मैक्सवैल भी इसी समय किन्नौर, हिमाचल प्रदेश क्षेत्र से पौधे एकत्रित कर रहे थे।

पश्चिमी हिमालय के वनों में पाये जाने वाले दो वृक्षों - *पाइनस वेब्बियाना* (बलूत) और *पाइनस जेरार्डियाना* (चिलगोजा) से अनेकों पाठक परिचित होंगे। पहला वृक्ष जहाँ विलियम स्पेन्सर वेब्ब का स्मरण कराता है वहीं दूसरा वृक्ष तीन भाइयों एलेंक्जेंडर जिरार्ड (1792-1939), जिन्होने सतलज नदी के साथ लगे बीहड़ प्रदेशों की सन् 1819 में यात्रा की थी, पैट्रिक जिरार्ड (1795-1836) और जेम्स गिलबर्ट जिरार्ड (1794-1828) के वानस्पतिक गतिविधियों का द्योतक है। हेनरी स्ट्रेची और रिचर्ड स्ट्रैची (1817-1908) भी काफी प्रसिद्ध अन्वेषक और संग्रहकर्ता हैं। इन्होने उपरी सिन्धु घाटी में कार्य किया था। इन्हीं बन्धुओं ने सन् 1818 के आसपास शिपके स्पिती क्षेत्र की यात्रायें करके पौधों के नमूनें संग्रहित किये थे।

इस क्षेत्र के एक अन्य विशिष्ट व्यक्तित्व रहे जान फार्ब्स रायल (1799-1858), जिन्होने सहारनपुर वानस्पतिक उद्यान में जार्ज गोवन का स्थान ग्रहण किया था। रॉयल ने सन 1825-39 के मध्य कश्मीर से काफी नमूने एकत्रित किये। इन्होने कई संग्रहकर्ताओं को पौधों के नमूने तथा उद्यान में लगाने के लिए जीवित पौधे लाने के लिए पश्चिमी हिमलाय के कई स्थानों में भेजा। मैक्सवैल ने लगभग 100 नमूने किन्नौर क्षेत्र से लाकर रॉयल को दिये। रॉयल ने कश्मीर में अपने कई संग्रहकर्ताओं को भेजा था। सन् 1840 तक ये गतिविधियाँ काफी तेज रहीं। बाद में रॉयल ने इन नमूनों के आधार पर लन्दन जाकर अपनी पुस्तक "इलस्ट्रेशन्स आफ दी बाटनी आफ दी हिमालयन

माउन्टेन्स" (1839-40) की रचना की। यों कश्मीर क्षेत्र से पौधों के नमूने एकत्रित करने वाले संग्रहकर्ताओं में विक्टर जैक्वेमोन्ट (1801-1832) नाम के फ्रांसीसी वैज्ञानिक ने सर्वप्रथम (1831) कश्मीर क्षेत्र का दौरा कर काफी नमूने एकत्रित किये। इन्हीं नमूनों पर आधारित अपनी खोजों को कैम्बासेडेस और डिकैस्ने ने बाद में प्रकाशित किया। इसके पहले इन्होने देहरादून, मसूरी होते हुए यमुना तथा टौंस के स्रोत और अन्त में शिमला तक की यात्रा की थी जहाँ गाडफ्रे थामस विग्ने (1801-1863) ने सन् 1835 मे और विग्ने ने पुनः सन् 1836-38 के मध्य में कश्मीर स्थित देवसायी मैदान और अस्तोर घाटी से पौधे एकत्रित किये थे। एच0 फाल्कोनर ने सन् 1837 में कश्मीर के बारामूला क्षेत्र से किशन गंगा घाटी और स्कार्डो के निकट ऊपरी सिन्धु घाटी में पौधे एकत्रित करने के लिए यात्रायें की। माइकल पैकेनहैम एजवर्थ (1812-1851) और उनके दो मित्र-कैप्टेन बिलियम हेग और लेन्स ने मिलकर कश्मीर में उपरी सिन्धु क्षेत्र, शिमला तथा स्पिती, लाहुल और द्रास क्षेत्र से पौधों के नमूने एकत्रित किये। सन् 1821 में एलेक्जेंडर जिरार्ड ने अपने भाई गिलबर्ट जिरार्ड के साथ शाटुल और वोरेंडों दर्रों का दौरा किया। सन 1821 में ही मूरक्राफ्ट ने कांगडा कुल्लू होते हुए लाहुल और फिर लेह तक यात्रायें की और फिर जोजी दर्रा से होते हुए कश्मीर घाटी में आये। इन यात्राओं के दौरान लिये गये पौधों के नमूने भी वालिच को भेजे गये थे।

शिमला और उसके आसपास के क्षेत्रों में कई वनस्पतिज्ञों ने पौधे एकत्रित करने का कार्य किया। सन् 1844 में जनरल और श्रीमती वाकर ने पौधे एकत्रित करके सर विलियम हूकर को भेजे थे। सन् 1845 में एडवर्ड मैडेन ने शिमला में कुछ समय व्यतीत किया। इसी समय हाफमाइस्टर ने शिपके तक की यात्रा की। सन् 1845 में आर0एस0 सिम्पसन ने शिमला के आसपास पौधों के नमूने एकत्रित किये। इसी समय थामस थामसन और जेम्स विलियम ग्रान्ट ने भी नमूने एकत्रित किये। शिमला से सुगम यात्रा होने के कारण किन्नौर में भी कई वैज्ञानिकों ने यात्रायें कीं। इनमें प्रमुख हैं जैक्वेमोन्ट, इंगलिस, हे, मैडेन, हाफमाइस्टर और थामस थामसन। एजवर्थ ने मण्डी और काँगड़ा से पौधे एकत्रित किये तो विलियम हाथयाने पारिश सन् 1840 मे मण्डी और कुल्लू की यात्रायें कीं।

जेम्स एडवर्ड विन्टरबॉटम (1803-54) ने हजारा की तरफ से कश्मीर में प्रवेश किया और अस्तोर, स्कार्डो होते हुए गिलगिट तथा उससे भी आगे गये। इन्होने रिचर्ड स्ट्रेची के साथ सतलज नदी के उद्गम स्थान तक की यात्रायें कीं और पौधे एकत्रित किये। थामस थामसन (1817-1878) ने सन् 1847 में किन्नौर और स्पिती होते हुए स्कार्डो कीं यात्रायें की तथा दुबारा फिर जांसकर होते हुए काराकोरम तक की यात्रा की। एडवर्ड मैडेन (1805-1856) ने शाटुल और बरम दर्रों की यात्रा सन् 1845 में की और बाद में (1846) पेन्ड्रास दर्रा तथा पिण्डारी ग्लेशियर की यात्रायें की थीं। एटकिन्सन ने सन् 1878-79 के आसपास कश्मीर घाटी में पौधों के नमूने एकत्रित किये। सी0बी0 क्लार्क ने सन् 1876 में काफी दूर तक यात्रायें कीं और डलहौजी होते हुए ट्रागबल, अस्तोर, ऊपरी सिन्धु तथा काराकोरम तक की यात्रा कीं।

लाहुल घाटी की वनस्पतियों का सर्वप्रथम विवरण हमें एटकिन्सन (1868) के लेख द्वारा मिलता है। विन्टरबॉटम ने सन् 1864 में अस्तोर और स्कार्डो से गिलगिट क्षेत्रों का सर्वेक्षण और पौधों के नमूनें एकत्र करने का कार्य किया। स्क्लैगिनबेट ने सन् 1855-57 के मध्य, जे0एल0 स्टीवर्ट ने सन् 1868 में तथा हेन्डरसन और ह्यूम ने 1873 में कश्मीर से काफी नमूने एकत्र किये।

नेपाल सीमा से लगा हुआ सतलज और काली नदियों के बीच का क्षेत्र, जिसमें टोंस, यमुना, भागीरथी, अलकनन्दा और काली नदियाँ बहती हैं और जिसमें कामेट, नन्दा देवी, नीलंकंठ, त्रिशूल, पंचशूली आदि हिमालय की प्रसिद्ध चोटियाँ स्थित हैं, सदैव से अन्वेषकों को आकर्षित किया है। इसी क्षेत्र में गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ, हेमकुण्ड आदि जैसे महत्वपूर्ण स्थल हैं। स्ट्रैची और विन्टरबाटम ने सन् 1846-49 के मध्य इस क्षेत्र से प्रचुर मात्रा में पौधों के नमूने एकत्र किये जिसे उन्होने सन् 1832 में प्रकाशित किया।

एच0 कोलेट ने शिमला के आसपास के क्षेत्रों का गहन वानस्पतिक अध्ययन किया था तथा काफी पौधों के नमूनें एकत्र किये थे। इसी पर उनका "फलोरा सिमलेन्सिस" (1902) आधारित है। सर जार्ज किंग ने गढ़वाल, जौनसार बावर और देहरादून से एकत्र किये गये नमूनों पर आधारित एक बृहतसूची सन् 1883 में प्रकाशित की थी। वाटसन ने भी इसी प्रकार की कुमाऊं से प्राप्त नमूनों पर आधारित एक सूची सन् 1874 में प्रकाशित की।

जान फरमिंगर डथी (1845-1922) एक विख्यात अन्वेषक रहें हैं जिन्होने पश्चिमी हिमालय के बहुत विस्तृत क्षेत्र का भ्रमण किया और पौधों के नमूने एकत्र किये। सन् 1882-83 के मध्य कुंमाऊं और गढ़वाल क्षेत्रों के भ्रमण और सन् 1892-93 के मध्य कश्मीर क्षेत्रों के भ्रमण काफी विख्यात हैं। इनके द्वारा सर्वेक्षण किये गये क्षेत्रों में कुछ प्रमुख स्थान हैं अल्मोड़ा, अस्कोट, बागेश्वर, भागीरथी घाटी, भीमताल, नैनीताल, भावानी रेंज, दारमा घाटी, देहरादून, धौलीघाटी, गंगोत्री, गर्वयांग क्षेत्र, कालीघाटी, गौरीघाटी, कपकोट, यमुनोत्री क्षेत्र, लेबंग ग्लेशियर, मिलम, मसूरी, पिथौरागढ़, रानीखेत, रालम घाटी (सभी कुमाऊं और गढ़वाल स्थित) तथा बारामुला, गुलमर्ग, सोनामर्ग, बालताल, जोजीला, द्रास, देवसाई मैदान, शातुंगला, स्कार्डो, सिन्धु घाटी अस्तोर, गिलगिट, हुन्जाघाटी, गुरेस, किशनगंगा घाटी, ट्रागबल, बान्डीपोर, वूलर झील, श्रीनगर (सभी कश्मीर स्थित)। इन यात्राओं का विवरण सहारनपुर वनस्पतिक उद्यान से प्रकाशित रिपोर्ट (1884-85) तथा भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण से प्रकाशित "रिकार्ड" के प्रथम खण्ड में देखा जा सकता है।

सन् 1908 में सहारनपुर वनस्पतिक उद्यान के बन्द होने से उत्पन्न हुई वानस्पतिक गतिविधियों में शिथिलता के कुछ समय पश्चात् पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में इन गतिविधियों में पुनः तीव्रता तब आई जब पार्कर, बैम्बर, फिशर, गैम्बल, ओस्मास्टन, ब्रान्डिस, वॉट, उपेन्द्र नाथ कौंजीलाल, पी0सी0 कौंजीलाल, एन0 एल0 बोर, आर0 आर0 स्टीवर्ट और मुकुट बिहारी रायजादा जैसे वैज्ञानिकों का प्रादुर्भाव हुआ। ब्रांडिस, गैम्बल और वॉट ने 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शिमला से पौधों के काफी नमूने एकत्रित किये। ओसमास्टन ने सन् 1927 में कुमाऊं क्षेत्र से पौधों के नमूने एकत्र किये तथा उस क्षेत्र से संबन्धित पौधों पर पुस्तक प्रकाशित की। स्टीवर्ट ने कश्मीर और लद्दाख क्षेत्रों का कई बार दौरा किया और पौधों के नमूने एकत्रित किये। इन्होने अपनी खोजों से सम्बन्धित लेख सन् 1917,1945,1961,1967 और 1972 में प्रकाशित किये। रायजादा 50 वर्षो से अधिक इस क्षेत्र में कार्यरत रहे और अनेक लेख तथा पुस्तकें प्रकाशित कीं।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के पुनर्गठन के बाद वानस्पतिक सर्वेक्षण

1954 के उत्तरार्ध में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के पुनर्गठन के साथ पादप सर्वेक्षण और अन्वेषण के एक व्यवस्थित प्रयास की शुरुआत करते हुए एक नियोजित एवं समयबद्ध कार्यक्रम की शुरुआत हुई। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के उत्तरी परिमण्डल की स्थापना 1 अगस्त 1956 को देहरादून में हुई। इसके कार्यक्षेत्र में जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पंजाब और हरियाणा प्रदेश के क्षेत्र आते हैं। इस कार्यालय से एम0ए0राडु, टी0ए0 राव, एन0 सी0 नायर, यू 0 सी0 भट्टाचार्य, ए0 एस0 राव जैसे वैज्ञानिकों ने पश्चिमी हिमालय में विस्तृत क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया और पौधों के नमूने एकत्रित किये। अन्य प्रमुख वैज्ञानिक और कार्यकर्ताओं में उल्लेखनीय हैं बी0 एम0 वाधवा, जे0 एन0 वोहरा, सी0 एल0 मल्होत्रा, आर0 आर0 राव, एच0 जे0 चौधरी, एस0 के0 मूर्ति, पी0 के हाजरा, पी0 सी0 पन्त, बी0 वी0 शेंट्टी, के0 पी0 जनार्धनन, बी0डी0 नैथानी, बी0 पी0 उनियाल, एम0 वी0 विश्वनाथन, सी0 एम0 अरोड़ा इत्यादि।

एम0ए0 राऊ ने सन् 1957-73 के मध्य गढ़वाल क्षेत्र का सर्वेक्षण किया और अपनी खोजों का परिणाम 1961-64 के मध्य प्रकाशित किया। इसी अवधि में उन्होने हिमाचल प्रदेश के लाहुल, कुल्लू, काँगड़ा तथा सिरमौर क्षेत्रों का दौरा किया तथा सन् 1960 में लाहुल के पौधों का विवरण प्रकाशित किया। टी0 ए0 राव ने सन् 1956-57 के मध्य कश्मीर घाटी का सर्वेक्षण किया और अपने परिणामों को 1959-61 के मध्य प्रकाशित किया। इन्होने मिलम और पिण्डारी ग्लेशियर क्षेत्रों का सर्वेक्षण करके इन क्षेत्रों के पौधों का भी विवरण प्रकाशित किया। एन0 सी0 नायर ने मुख्य रुप से हिमाचल प्रदेश के बशहर हिमालय, स्पिती और चम्बा क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया और इन पर आधारित अपना "फ्लोरा आफ बशहर हिमालय" (1977) प्रकाशित किया। यू0सी0 भट्टाचार्य ने पश्चिमी हिमालय के बहुत विस्तृत क्षेत्र का सर्वेक्षण किया जैसे गढ़वाल (1962-69) पिथौरागढ़ और अल्मोड़ा (1961-63) लहूल स्पीती (1971-73), लद्दाख (1970-83) इत्यादि। के0 पी0 जनार्धनन ने किन्नौर क्षेत्र का सर्वेक्षण किया। सी0 एल0 मल्होत्रा ने पिथौरागढ़ क्षेत्र, बी0 डी0 नैथानी ने चमोली, केदारनाथ, उत्तरकाशी, गंगोत्री तथा कश्मीर के कुछ क्षेत्र, एम0 वी0 विश्वनाथन ने टिहरी और लद्दाख, सी0 एम0 अरोड़ा ने पिथौरागढ़ क्षेत्र, बी0 पी0 उनियाल ने किश्तवार, लहुल स्पिती, कुमाऊं तथा गढ़वाल के विस्तृत क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया और अनेक शोध लेखों का प्रकाशन किया। बी0एम0 वाधवा (1974-76; 1983-87 ने भी पश्चिमी हिमालय का गहन अध्ययन किया और गढ़वाल, कुमाऊं, हिमाचल प्रदेश तथा काश्मीर के विभिन्न क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया और शोध लेख प्रकाशित किये। जे0एन0 वोहरा ने कश्मीर तथा अल्मोड़ा क्षेत्रों से अन्य पेड़ पौधों के साथ ब्रायोफाइट समूह के पौधों का भी संग्रह किया। ए0एस0 राव ने कश्मीर के दाचीगाम राष्ट्रीय उद्यान तथा अल्मोड़ा और आर0 आर0 राव ने कश्मीर के कई क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया। पी0 के0 हाजरा ने सन् 1982-86 के मध्य पश्चिमी हिमालय के कुमाऊं से ले कर कश्मीर क्षेत्रों का विस्तृत सर्वेक्षण किया और अनेक शोध लेख प्रकाशित किये। इन्होने नन्दा देवी राष्ट्रीय उद्यान क्षेत्र का गहन अध्ययन करके वहाँ के पौधों का वर्णन किया है। एच0 जे0 चौधरी ने हिमाचल प्रदेश के पौधों का अध्यन करके सन् 1984 में तीन खण्डों में इस क्षेत्र के पौधों का विवरण प्रकाशित किया है। इन्होने पिथोरागढ़ और लद्दाख क्षेत्रों का भी सर्वेक्षण एवं अन्वेषण किया। लेखक ने भी सन् 1982-93 के मध्य कश्मीर के बारामूला क्षेत्र, दाचीगाम राष्ट्रीय उद्यान, पहलगाम, श्रीनगर घाटी, उत्तर प्रदेश में पिथौरागढ़, नैनीताल, अल्मोड़ा, रानीखेत, आदि, हिमाचल प्रदेश के कूल्लू और मण्डी क्षेत्रों आदि का सर्वेक्षण करके पौधों के नमूने एकत्र किये। सी0 आर0 बाबू ने देहरादून के आसपास के क्षेत्रों का गहन अध्ययन किया। इनका

यह अध्ययन "हरबेशियस फलोरा आफ देहरादून" के नाम से प्रकाशित हो चुका है। के0 एम0 एम0 दक्षिणी ने देहरादून के पास स्थित मोथरानवाला दलदली क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के उत्तरी परिमण्डल से किये गये कुछ अन्य सर्वेक्षणों में बिपिन बलौदी का गढ़वाल और कुमाऊं क्षेत्रों का सर्वेक्षण, अनिल गोयल का टेहरी का सर्वेक्षण सुनीता अग्रवाल तथा नीलम घिल्डयाल द्वारा कश्मीर क्षेत्रों का सर्वेक्षण, एस0सी0 मजूमदार, जे0 आर0 शर्मा तथा अन्य वैज्ञानिकों द्वारा किये गये सर्वेक्षण मुख्य हैं। इन सर्वेक्षणों और अनुसन्धानों के आधार पर उत्तरी परिमण्डल से पौधों की पचास से अधिक नयी जातियाँ, लगभग पन्द्रह पुस्तकें तथा तीन सौ से अधिक शोध लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

अन्य शोध संस्थानों की गतिविधियाँ

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी परिमण्डल के अतिरिक्त कुछ अन्य संस्थायें तथा उनसे संम्बन्धित वैज्ञानिकों ने भी पश्चिमी हिमालय के अनेक क्षेत्रों का पादप सर्वेक्षण कार्य किया तथा अपनी खोजों के परिणामों को प्रकाशित किया है।

वन अनुसंधान संस्थान देहरादून से अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिकों का नाम जुड़ा रहा है यथा ब्रान्डिस, गैम्बल, फिशर, जे0 एफ0 डथी, एन0 एल0 बोर, उपेन्द्र नाथ कांजीलाल, पी0 सी0 काँजीलाल, मुकुट बिहारी रायजादा, के0 सी0 साहनी इत्यदि। इन वैज्ञानिकों ने समय समय पर पश्चिमी हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर विस्तृत अन्वेषण किये तथा पौधों के नमूने एकत्र करने का कार्य किया और अपने परिणामों को अनेक प्रसिद्ध प्रकाशनों के रुप में वैज्ञानिकों और शोध कर्ताओं के समक्ष रखा। इस संस्थान का पादपालय विश्व प्रसिद्ध है जहाँ पर बहुत पुराने पुराने अनेक दुर्लभ पौधों के नमूने सुरक्षित हैं। वर्तमान में वन सर्वेक्षण विभाग के भी वैज्ञानिक इस कार्य में लगे हुए हैं।

जम्मू में स्थित क्षेत्रीय अनुसधान प्रयोगशाला के तत्वावधान में वाई0 के0 सरीन और उनके सहयोगियों ने काश्मीर के विस्तृत क्षेत्रों में सराहनीय कार्य किया है। इसी प्रकार कश्मीर विश्वविद्यालय से पी0 के0 कचरु, उपेन्द्रधर तथा अन्य सहयोगियों ने कश्मीर क्षेत्र में दूर-दूर तक सर्वेक्षण कार्य किया और पौधों के नमूने एकत्र किये। लखनऊ स्थित केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान से बी0एन0 मेहरोत्रा, बी0 एस0 असवाल और उनके सहयोगियों ने लहूल स्पिती तथा कश्मीर के विभिन्न क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया। लखनऊ में ही स्थित राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान से सम्बन्धित वैज्ञानिकों ने भी पश्चिमी हिमालय में सराहनीय सर्वेक्षण कार्य किया है।

हिमालय सदैव से लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। सैकड़ों शोधकर्ता, वैज्ञानिक तथा प्रकृति प्रेमियों ने इसके दुर्गम तथा सुरम्य घाटियों का सर्वेक्षण अतीत में किया और आज भी कर रहें हैं। ये शोध कार्य और अन्वेषण आगे भी चलते रहेंगे परन्तु जो लोग कार्य करके इतिहास के पन्नों में चले गये वे हमेशा-हमेशा और अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित करते रहेंगे।

पश्चिमी हिमालय में वनस्पतीय विविधता

भगवती प्रसाद उनियाल

पादपभौगोलिक दृष्टि से भारत को 9 क्षेत्रों में बाँटा गया है जिनमें एक है पश्चिमी हिमालय। गोमुख, मिलम, पिंडारी आदि हिमनदों का क्षेत्र, गंगा, यमुना, चंद्रा, भागा, व्यास आदि नदियों का उद्गम स्थल एवं नन्दा देवी, कामेत, नुन कुन आदि पर्वत श्रृंगों से शोभित पश्चिमी हिमालय खनिज संपदा, प्राणि संपदा एवं वनस्पति संपदा का अतुल भण्डार है। भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु की भिन्नता के कारण यहाँ की वनस्पति विविधता लिये हुए है। उष्ण, समशीतोष्ण व उच्च पर्वतीय स्थलों पर पाये जाने वाले पौधों के अतिरिक्त शीत मरुस्थलीय पौधे अपनी विचित्रता के कारण विशेष आकर्षण का केन्द्र हैं।

इसके पहले कि हम पश्चिमी हिमालय की वानस्पतिक विविधता की विवेचना करें, पौधों की निम्न जातियों के नामों पर ध्यान देना उचित होगा।

सैक्सीफ्रागा अफगानिका, स्क्लेरोकार्पस अफ्रीकानस, एश्चिनोमेने अमेरिकाना, शिस्मस अरेबिकस, ट्रेकिलोस्पर्मम आसामेन्स, अरुन्डिनेला बंगालेन्सिस, एरीगेरान कन्नाडेन्सिस, कस्कुटा घाइनेन्सिस, क. यूरोपिया, अर्टेमिसिआ जैपोनिका, सेविआ खासिआना, टैरेक्साकम जावानिकम, रोटाला मेक्सिकाना, डलफीनियम कोहाटेन्स, स्टाइपा मंगोलिका, स्टा. साइबीरिका, ड्रेकोसेफालम मोल्दाविका, लेप्टोक्लोआ मलाबारिका, एरिनेरिआ नीलगिरेन्सिस, कोरीडेलिस मुर्रियाना, पाँलीगोनम पैसिफिकम, गेजिआ पामीरिका, सेटीरियम नेपालेन्स, लैन्सेया तिबेतिका, इपीलोबियम सिक्किमेन्स, ट्राइकोलेपिस करेन्सियम, अढाटोडा जेलानिका, आदि।

वनस्पतिज्ञों, संग्रह कर्ताओं या स्थान के नाम पर पौधों का नामकरण आम बात है। अपने मूल स्थान की सूचक उपरोक्त सभी जातियाँ पश्चिमी हिमालय मे पाई जाती हैं जो कि यहाँ की वानस्पतिक विविधता का एक रोचक उदाहरण है।

सर जे. डी हूकर (स्केच फ्लोरा ब्रिटिश इंडिया) के अनुसार पश्चिमी हिमालय में पुष्पी पौधों की 4000 जातियाँ थीं। तब से अब तक लगभग 1000 अन्य वंश, जातियों, उपजातियों आदि की पश्चिमी हिमालय से खोज की जा चुकी है। अभी भी इस क्षेत्र में फूलों की घाटी के समान वानस्पतिक दृष्टि से समृद्ध कई दुर्गम घाटियां हैं अतः पश्चिमी हिमालय में पाई जाने वाली वनस्पति जातियों की संख्या में वृद्धि निश्चित है। पिछले कुछ वर्षों में इस क्षेत्र से खोजी गई जातियां यथा, *डिप्लोमेरिस हिर्सुटा, हाइड्रोब्रायम ग्रिफिथिई, रहोडोडेन्ड्रोन निवेल, ट्रोपीडिया कर्कुलिगोइडेस, फिम्ब्रिस्टाइलिस नारायणी, ओस्बेकिया ट्रंकाटा, पेलियुरस स्पाइना-क्रिस्टी, जैन्थियम स्पाइनोसम, पोटामोजिटान फिलिफॉर्मिस, कस्कुटा संतापाउइ, म्याग्रम परफोलियाटम्* आदि जहाँ इस ओर इंगित करती है वहीं वानस्पतिक विविधता की भी पुष्टि करती हैं। पश्चिमी हिमालय के दस बड़े कुलों का तुलनात्मक विवरण भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचता है।

कुल (स्केच फ्लोरा ब्रिटिश इंडिया के अनुसार)	जातियाँ (फ्लोरा ब्रिटिश इंडिया के अनुसार)	खोजी गई जातियाँ (अनुमानित)
1. पोएसी (बम्बुसी सहित)	312	127
2. एस्टरेसी	309	231
3. लेग्यूमिनोसी	280	82
4. साइपरेसी	165	40
5. लैमिएसी	147	21
6. रैननकुलेसी	86	40
7. आर्किडेसी	117	43
8. ब्रेस्सिकेसी	95	50
9. रोजेसी	91	81
10 स्क्रोफुलारिएसी	96	54

तालिकानुसार पश्चिमी हिमालय में पुष्पी पौधों के दस बड़े कुलों की वर्तमान स्थिति (जातियों की संख्या के आधार पर) निम्न प्रकार होगी।

कुल	जातियां (अनुमानित)
1. एस्टरेसी	540
2. पोएसी	439
3. लेग्यूमिनोसी	362
4. साइपरेसी	205
5. रोजेसी	172
6. लैमिएसी	168
7. आर्किडेसी	160
8. स्क्रोफुलारिएसी	150
9. ब्रेस्सिकेसी	145
10. रैननकुलेसी	126

पश्चिमी हिमालय में पाये जाने वाले कुछ बड़े वंश व उनकी जातियाँ निम्न प्रकार हैं:-

वंश	जातियाँ
करेक्स (साइपरेसी)	85
टैरेक्साकम (एस्टरेसी)	77
एस्ट्रागेलस (लेग्यूमिनोसी)	64
पोटेन्टिल्ला (रोजेसी)	48
साउस्सुरेआ (एस्टरेसी)	41

अर्टेमिसिया (एस्टरेसी)	40
जेन्शियाना (जेन्शियानेसी)	39
सैक्सीफ्रागा (सैक्सीफ्रागेसी)	39
पेडिकुलारिस (स्क्रोफुलारिएसी)	35

स्थानिक जातियाँ

ऐसा अनुमान है कि भारत में पाई जाने वाली पुष्पी जातियों की एक तिहाई जातियाँ भारत की स्थानीय हैं। पश्चिमी हिमालय में भी ऐसी कई जातियाँ हैं। केवल *टैरेक्साकम* वंश की ही लगभग 70 जातियाँ इस क्षेत्र की स्थानीय हैं। पोएसी कुल की भी लगभग 54 जातियां, प्रजातियाँ आदि इस क्षेत्र की स्थानीय हैं। कुछ स्थानिक जातियां निम्न प्रकार हैं:-

कुल	जाति का नाम	प्रदेश जहाँ स्थानिक हैं।
बर्बेरिडेसी	*बर्बेरिस ह्यूगेलियाना* श्नेडर	कश्मीर
	ब. लैम्बर्टी पार्कर	उत्तर प्रदेश
	मैहोनिया जौनसारेन्सिस अहरेण्ड्ट	उत्तर प्रदेश
पिट्टोस्पोरेसी	*पिट्टोस्पोरम इरियोकार्पम* रॉयल	उत्तर प्रदेश
एसरेसी	*एसर ओब्लोंगम* प्रभेद *मेम्ब्रेनेसियम* बनर्जी	उत्तर प्रदेश
लेग्यूमिनोसी	*एस्ट्रागेलस वेकरी* अली	कश्मीर
"	*इंडिगोफेरा सेंड्रोरम* डन	हिमाचल प्रदेश
"	*इं० दोसुआ* प्रभेद *सिमलेन्सिस* (अली) संजप्पा	हिमाचल प्रदेश
रोजेसी	*कोटेनेआस्टर कश्मीरेन्सिस* क्लोट्ज	कश्मीर, हिमाचल प्रदेश
"	*को० लेसिई* क्लोट्ज	हिमाचल प्रदेश
"	*को० गढवालेन्सिस* क्लोट्ज	हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश
"	*रोजा हूकेरियाना* बर्टोल	हिमाचल प्रदेश
"	*पोटेन्टिल्ला सोजाकी* दीक्षित व पाणिग्रही	कश्मीर, हिमाचल प्रदेश
एपिऐसी	*मीवोल्डिया सेलिनोइडेस* वोल्फ	उत्तर प्रदेश (कुमायूं)
रुविएसी	*क्लार्केल्ला नाना* (एजवर्थ) हूकर एफ.	उत्तर प्रदेश
एस्टरेसी	*साउस्सुरेआ सुधांशुई* पी० के० हाजरा	उत्तर प्रदेश (गढ़वाल)
बोराजिनेसी	*इवानजौन्स्टोनिया जौनसारिएन्सिस* काजमी	उत्तर प्रदेश
स्क्रोफुलारिएसी	*कश्मीरिया हिमालइका* (हूकर एफ०) डी० वाई० हॉग	उत्तर प्रदेश
"	*यूफ्रेसिया अल्वा* पेनल	कश्मीर, लददाख
"	*यू० माइक्रोकार्पा* पेनल	हिमाचल प्रदेश
"	*पेडिकुलारिस पुरपुरिया* पेनल	कश्मीर, हिमाचल प्रदेश
"	पे० *स्वेनहेडिनी* पॉल्सन	कश्मीर, हिमाचल प्रदेश
"	*स्क्रोफुलारिया नुडाटा* पेनल	कश्मीर (लद्दाख)
"	*स्क्रो० सफ्फूटीकोसा* पेनल	हिमाचल प्रदेश
"	*वेरोनिका अंसिनाटा* पेनल	कश्मीर (लद्दाख)

कुल	जाति का नाम	प्रदेश जहाँ स्थानिक हैं।
यूफोर्बिएसी	*यूफोर्बिया शर्माइ* यू0 सी0 भट्टाचार्य	उत्तर प्रदेश (गढ़वाल)
आर्किडेसी	*ईरिया आक्सीडेन्टालिस* सीडनफेडन	उत्तर प्रदेश
"	*नियोट्टिया कश्मीरियाना* (डुथी) ब्यूवार्ड	कश्मीर
एरिकेसी	*ट्रेकीकार्पस तकिल* बेक्कारी	उत्तर प्रदेश (कुमायूं)
साइपरेसी	*करेक्स मुनरोई* क्लार्क	हिमाचल प्रदेश
"	*क0 नायरी* घिलड़ियाल व भट्टाचार्य	कश्मीर
"	*माइक्रोशूनस डुथिई* क्लार्क	उत्तर प्रदेश
पोएसी	*पोआ लाहूलेन्सिस* बोर	कश्मीर, हिमाचल प्रदेश
"	*पो0 लदारवेन्सिस* हार्टा	कश्मीर (लद्दाख)
"	*प्स्यूडोडैन्थोनिया हिमालइका* (हूकर एफ0) बोर व हब्बर्ड	उत्तर प्रदेश
"	*माइक्रोस्टेजियम फाल्कोनेरी* (हूकर एफ0) क्लेटन	उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश

पुष्पी पादपों के कई कुल ऐसे भी हैं जो केवल एकवंशीय हैं। इनमें से कुछ, यथा मोरिंगेसी, सेराटोफिल्लेसी, मीरिकेसी आदि पश्चिमी हिमालय मे भी पाये जाते हैं। इसी प्रकार अनेक वंश, यथा *क्लार्केल्ला, रायलिया, कोलेब्रूकेआ, तुस्सिलागो, हिप्प्यूरिस, कैटामिक्सिस, कश्मीरिया* आदि, जिनकी विश्व भर में एक ही जाति है, भी इस क्षेत्र में पाये जाते हैं।

विविधता वाले क्षेत्र

वर्तमान अवस्था में यह निर्णय करना कि किन किन स्थानों में वानस्पतिक विविधता अधिक है, दुष्कर है क्योंकि अभी भी अनेक ऐसी घाटियाँ हैं जहाँ वानस्पतिक सर्वेक्षण सम्भव नहीं हो पाया है। कुछ स्थान जो विविधता पूर्ण कहे जा सकते हैं उनमें एक है शीत मरुस्थल। ये स्थान वर्षा प्रतिमुख होते हैं अतः यहाँ वर्षा नहीं के बराबर होती है । तापमान में उतार चढ़ाव भी काफी होता है। द्रास नामक स्थान (जो कि संसार के ठंडे स्थानों में से एक है) में जाड़ों में तापमान -70^{o}C तक गिर जाता है। भारत में शीत मरुस्थल लद्दाख, हिमाचल प्रदेश व उत्तर प्रदेश में है। ऐसी विपरीत परिस्थितियों में स्वयं को जीवित रखने के लिये पौधे विशेष गुण युक्त होते हैं जैसे कि गुच्छों में रहना, लम्बी जड़े, बौनापन, ऊन के समान रोम होना आदि। भारत के अन्य क्षेत्रों व पड़ोसी देशों में उगने वाली कई जातियों के अतिरिक्त गर्म रेगिस्तान में पाई जाने वाली जातियाँ भी यहाँ उगती हैं। इनमें मुख्य हैं: *स्टेल्लेरिया मीडिया, कैप्सेल्ला वर्सापैस्टोरिस, पेगानम हरमाला, ट्रिबुलस टेरेस्ट्रिस व कैप्पेरिस* की जाति। कुल मिलाकर लगभग ७00 जातियाँ शीत मरुस्थलों में पाई जाती हैं।

नन्दा देवी सुरक्षित जैवमण्डल क्षेत्र भी वानस्पतिक विविधता युक्त क्षेत्र कहा जा सकता है। यहाँ भी पुष्पी पौधों की लगभग 600 जातियाँ पाई जाती हैं।

फूलों की घाटी भी इस दृष्टि से एक अन्य सुविदित क्षेत्र हैं।

जहाँ तक पीनशिफों (आर्किड्स) का प्रश्न है, पश्चिमी हिमालय में इनकी लगभग 250 जातियाँ हैं जिनमें से लगभग 130 जातियाँ (14 स्थानिक) पिथौरागढ़ जिले के गर्जिया - बरम व शानदेव - डफिया धूरा क्षेत्र में पाई जाती हैं। यह क्षेत्र पीनशिफों के लिये सुरक्षित क्षेत्र घोषित किये जाने के लिये उपयुक्त है।

फसली पौधों के वन्य सम्बन्धी, यथा *एलियम* की जातियाँ, *ट्रिटिकम* की जातियाँ, *हॉर्डियम* की जातियाँ, *साइसर माइक्रोफिल्लम, सेकेल सेरिएल* तथा कई अन्य वंशों की जातियाँ यहाँ प्रचुरता में पाई जाती हैं जो भविष्य में उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पश्चिमी हिमालय वानस्पतिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध व महत्वपूर्ण है। इस संपदा का सदुपयोग ही मानव हित में होगा।

पश्चिमी हिमालय का शीत मरुस्थल - वनस्पति एवं वानस्पतिक विविधता

श्री कृष्ण मूर्ति

मरुस्थल किसी स्थान पर जलवायु की विकट परिस्थितियों के लगातार बने रहने से बनते हैं। यदि ये स्थान समुद्र तल की ऊंचाई पर स्थित हैं और अत्यंत गर्म हैं तो उष्ण मरुस्थल कहलाते हैं और यदि ये स्थान समुद्र तल से ऊंचे तथा अत्यंत ठंडें हैं तो शीत मरुस्थल कहलाते हैं। इन स्थानों की विशेषता है तापमान का अत्यधिक उतार चढ़ाव और वर्षा की अनुपस्थिति या अत्यत कमी।

भारत में शीत मरुस्थल मुख्यतया जम्मू कश्मीर के लद्दाख और हिमाचल प्रदेश के लाहूल स्पिती क्षेत्रों में स्थित हैं। जम्मू कश्मीर में यह क्षेत्र 32° 15' -36° उत्तर अक्षांश और 75° 15' - 80° 15' पूर्व देशान्तर के मध्य स्थित है और क्षेत्रफल में लगभग 87,780 वर्ग कि0मी0 है। हिमाचल प्रदेश में यह क्षेत्र 31° 44' 57" -32° 59' 57" उत्तर अक्षांस और 76° 46' 29" - 78° 41' 34" पूर्व देशान्तर के मध्य स्थित है और क्षेत्रफल में लगभग 22,210 वर्ग कि0मी0 है। इस प्रकार शीत मरुस्थल का कुल क्षेत्रफल लगभग 1,09,999 वर्ग कि0मी0 है और 31° 44' 57" -36° उत्तर अक्षांस और 75° 15' - 80° 15'पूर्व देशान्तर के मध्य स्थित है। पूरा क्षेत्र उत्तर से दक्षिण क्रमशः काराकोरम, कैलाश, लद्दाख एवं जान्सकर पर्वत श्रखलाओं से आच्छादित है। इस क्षेत्र में दर्रों द्वारा जिन्हें "ला" कहा जाता है प्रवेश किया जाता है। कुछ प्रमुख दर्रों के नाम हैं- जोजी ला, नमीका ला, फोतू ला, खारदुंग ला, बारालाछा ला, रोहतांग ला। लद्दाख में सिन्धु, श्योक, नूब्रा, जान्सकर, द्रास और सुरु नदियाँ तथा लाहूल-स्पिती में चन्द्रा, भागा और स्पिती नदियाँ इन शीत मरुस्थलीय क्षेत्रों को सींचती हैं। लद्दाख क्षेत्र में कुछ विश्वप्रसिद्ध विशालकाय खारे पानी की झीलें स्थित हैं जैसे पैंगांग झील, सो मुरारी झील आदि। तापमान के अत्यधिक उतार चढ़ाव के कारण शिलाखण्ड खण्डित होते रहते हैं।

वनस्पति

पूरा क्षेत्र तीव्र गति से चलती हवाओं, वर्षा की अत्यधिक कमी तथा तापमान के अत्यधिक उतार चढ़ाव से प्रभावित रहता है। जलवायु की इस विचित्रता के कारण स्वाभाविक पौधे जो हिमालय के अन्य क्षेत्रों में पाये जाते हैं, अधिकांशतः यहाँ नहीं होते। अधिकांश पौधे इस क्षेत्र के विशेष जलवायु के अनुसार अपने आप को विशेष रुप में ढालकर जीवित हैं। इसी कारण शीत मरुस्थल की वनस्पतियों की अपनी एक विशेषता और अलग पहचान है। संपूर्ण क्षेत्र प्राकृतिक वृक्ष संपदा से वंचित है। इन क्षेत्रों की वनस्पतियों को मुख्यतः तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है:

1. मध्यम वर्षा की नमी से प्रभावित क्षेत्रों की वनस्पतियाँ (मीजोफिटिक)

2. नदियों एवं अन्य जल स्रोतों के पास प्राकृतिक रुप से पायी जाने वाली अथवा मनुष्यों द्वारा लगाई गई वनस्पतियाँ (ओएसिटिक)
3. विशिष्ट मरुस्थलीय वनस्पतियाँ

1. **मध्यम वर्षा की नमी से प्रभावित क्षेत्रों की वनस्पतियाँ (मीजोफिटिक)**

कश्मीर घाटी और लद्दाख क्षेत्र के मध्य के क्षेत्रों में कुछ वर्षा हो जाती है तथा नमी बनी रहती है जिससे ये क्षेत्र कुछ हरे-भरे दिखते हैं। इन क्षेत्रों की जलवायु कठोर नही है। इन क्षेत्रों में अधिकाशं पौधे वही होते हैं जो नम कश्मीर घाटी के ऊंचे स्थानों में पाये जाते हैं तथा केवल लगभग दस प्रतिशत पौधे ही पूर्णतया मरुस्थलीय प्रकृति के होते हैं। कुछ प्रमुख पौधों के रुप में *पोडोफिल्लम हेक्सैन्ड्रम, लैवेटेरा कश्मीरियाना, रोजा मासकेटा, वरबैस्कम थैप्सस, सान्कस ओलेरेसियस, पालीगोनम ऐफेन, पोटेंटिला बाइफरका, जिरेनियम प्रैटेन्स, जेन्शियाना डिकम्बेन्स, प्राइमुला रोजिया, टेरैक्सेकम आफिसेनेल, एनाफेलिस नेपालेन्सिस, एनीमोन ट्रेट्रासेपेला, एरीनेरिया फोलियोसा, एकोनिटम हेटेरोफिल्लम, बर्जीनिया स्ट्रैचियाई, इपीलोबियम, हाईपेरिकम, परफोरेटम, मेंकोनाप्सिस एक्यूलियेटा, पेडीकुल्लेरिस बाइकारन्यूटा, रैननकुलस हिर्टेलस, साइलीन वलगैरिस, सीडम रोडियोला, सैक्सीफ्रैगा सरनुआ, स्वेरशिया पेटियोलेटा, थरमाप्सिस इनफ्लाटा* इत्यादि नाम गिनाये जा सकते है। इस क्षेत्र के कुछ मरुस्थलीय पौधों में *ऐस्ट्रागैलस राइजैन्थस, एकैन्थोलिमान लाइकोपोडिवाइडिस, एस्टर हेटेरोकीटा, आर्कटियम लापा, कोरीस्पोरा सैबूलोसा, ड्राबा एलपिना, थैलेस्पी आरवेन्स, थइलैकोस्परमम रुपीफ्रैग्रम, कैपसेला वारसापैस्टोरिस, यूफोरविया टिबेटिका, लैन्सिया टिबेटिका, पेगानम हरमाला, स्टैकिस टिवेटिका, ब्राया एलपिना, इकाइनाप्स कारनीजेरस* इत्यादि का नाम लिया जा सकता है।

2. **नदियों एवं अन्य जल स्रोतों के पास प्राकृतिक रुप से पायी जाने वाली अथवा मनुष्यों द्वारा लगाई गई वनस्पतियाँ (ओएसिटिक)**

नदियों के किनारे, नहरों तथा अन्य जल स्रोतों के आसपास तथा मनुष्यों के रहने के स्थानों के आस पास नमी बने रहने के कारण कुछ ऐसे हरे भरे स्थानीय अथवा बाहर के स्थानों से आकर प्राकृतिक रुप से पनपने वाले पौधे पाये जाते हैं जिनसे हरियाली बनी रहती है। स्थानीय लोगों ने भी ऐसे स्थानों पर कुछ खाद्य उपयोगी अथवा जानवरों के लिए चारा उपलब्ध कराने हेतु कुछ झाड़ीनुमा पौधे अथवा वृक्ष तथा फलों के वृक्ष आदि लगा दिये हैं। कुछ ऐसे पेड़ पौधों में *हिप्पोफी रैम्न्वाइडिस, पापुलस, जुगलन्स, मोरस, पाइरस तथा प्रूनस* जाति के पौधे *जूनीपेरस मैक्रोपोडा, लैन्सिया टिबेटिका, पेडिकुलेरिस लांगीफ्लोरा, रैननकुलस पलचेलस, जिरेनियम कोलिनम, मेडिकागो लूपूलीना, एस्ट्रागैलस, रुबस सैक्सेटिलिस, ड्रैकोसिफैलम मोल्डाविकम, चीनोपोडियम फोलियोसम, प्राइमुला साइबीरिका, कसक्यूटा यूरोपिया, मेलीलोटस एलबा, स्टैकिस टीबेटिका, हिप्यूरिस वलगैरिस, निपेटा टीबेटिका, चीनोपोडियम एलबम, हायोसायमस प्यूसिलस, पोटेन्टिला बाइफरका, जिरैनियम साइबीरिकम, ब्रैसिका नाइग्रा, फैरुला जेस्कियान, प्रैगास पैबूलेरिया, बरबेरिस वलगैरिस* इत्यादि उल्लेखनीय है।

3. विशिष्ट मरुस्थलीय वनस्पतियाँ

ये वनस्पतियाँ समुद्र तल से अत्यधिक ऊंचे स्थानों पर जहाँ वर्षा नहीं के बराबर होती है तथा तापमान में अत्यधिक उतार चढ़ाव रहता है और इस प्रकार जलवायु की विकट परिस्थितयों में पाई जाती हैं। ये पौधे अपने अन्दर कई प्रकार की विशेषतायें पैदा कर लेते हैं जिससे कि वे इन कठोर परिस्थितियों में जिवित रह सकें। ज्यादातर पौधे आकार में बहुत छोटे, झाड़ी नुमा, घने रोयेंदार, गद्देदार, लम्बी जड़ों वाले, काँटेदार तथा जमीन पर बिछे हुए होते हैं। कुछ विशिष्ट मरुस्थलीय पौधों के रुप में *थाइलैकोस्पर्मम रुपीफ्रैग्रम, एकैन्थोलिमान लाइकोपोडियोआइडिस, मिरिकेरिया ऐलीगेन्स, इकाइनोस्पर्मम, यूफोर्बिया टिबेटिका, लौंसिया टिबेटिका, पेगानम हरमाला, ड्राबा लैसियोफिल्ला, एलार्डिया टोमैनटोसा, सीडम टिबेटिकम, ऐरेबिस टिबेटिका, ब्राया एल्पिना, कैरागैना पिग्मिया ट्राइग्लोचिन मैरीटिमा, हाइपेकुअम लैप्टोकार्पम, क्रिस्टोलिया क्रैसीफोलिया, इन्यूला राइजोसिफेला, नीपेटा टिबेटिका, ट्रैकोसिफैलम हैट्रोफिललम, आर्टिमिसिया माइनर, ससूरिया ब्रैक्टियाटा, आरजीरिया डाइगाईना, एलार्डिया टोमैन्टोसा, इकाइनाप्स कार्निजेरस, पेगानम हरमाला, ट्राइबुलस टेरिसट्रिस, कैपेरिस स्पाइनोसा, इफेड्रा जेरार्डियाना, थर्माप्सिस इनफ्लाटा* इत्यादि के नाम गिनाये जा सकते हैं।

वानस्पतिक विविधता

विशिष्ट प्रकार की भौगोलिक स्थिति व जलवायु के कारण इस क्षेत्र के पौधों में अनेक प्रकार की विविधता पाई जाती है। कुछ ऐसे पौधे जैसे *एक्टिनोकैरिया टिबेटिका, एस्ट्रागैलस वेब्बियेनस, ए0 जान्सकारेन्सिस, ए0 गिलगिटेन्सिस, ड्राबा कश्मीरिका, यूफ्रेशिया कश्मीरियाना, लैगोटिकस कुनावुरेन्सिस, पोआ सुरुआना, पो0 लडाखेन्सिस, सैनेसिओ टिबेटिकस, थर्माप्सिस इनफ्लाटा* इत्यादि केवल इसी क्षेत्र में पाये जाते हैं।

कुछ अन्य बहुत ही कम पाये जाने वाले पौधों में *एस्ट्रागैलस फाल्कोनेरी, ब्राया एनिया, ब्रा0 टिबेटिका, हैलोजिटान कश्मीरयानम, जन्कस रोहतान्गेन्सिस, ओल्गिया थामसोनी, ससूरिया ब्रैक्टीयाटा, उल्फेनिया एम्हर्स्टियाना* इत्यादि उल्लेखनीय हैं। *क्रिस्टोलिया हिमालयेन्सिस, एरीनेरिया ब्रायोफिल्ला, स्टीलेरिया डिकबेन्स, ब्राया एलपिना, ससूरिया ब्रैक्टिआटा* आदि पौधें अत्यधिक ऊंचाइयों पर पाये जाते हैं। लाहूल घाटी में *आरस्यूथोबियम आक्सीसेड्री* नामक परजीवी पौधा, जो अत्यन्त सूक्ष्म आकार का पुष्पीय पौधा है, *जुनीपेरस* के वृक्षों पर पाया जाता है।

इस क्षेत्र में कुछ ऐसे पौधे भी हैं जो आस पास के अन्य देशों में भी पाये जाते हैं उदाहरण के लिए *आरनेबिया टिबेटाना* (तिब्बत) *हायोसायमस प्यूसिलस* (तुर्किस्तान), *एनीमोन रुपीकोला* (चीन), *पोटेन्टिला एमबीगुआ* (चीन), *कसक्यूटा यूरोपिया* (यूरोप), *मेन्था लांगीफोलिया* (यूरोप), *जिरेनियम साइबीरिकम* (साइबेरिया), *ब्रेसिका नाइग्रा* (अफगानिस्तान), *फेरुला जेस्कियाना,* (अफगानिस्तान), *एक्चीलेजिया वलगैरिस* (पूर्वी यु0एस0 ए0), *कनवालवुलस आरवेन्सिस* (पूर्वी यू0एस0ए0), *पालीगोनम हाइड्रोपाइपर* (पूर्वी यू0एस0ए0), *प्लान्तागो मेजर* (पूर्वी यू0एस0ए0), इत्यादि।

शीत मरुस्थल के कुछ विशिष्ट पौधे अपने आकार प्रकार के लिए उल्लेखनीय हैं। ऐसे कुछ पौधों में उदाहरण के लिए *हिप्पोफी रम्नवाइडिस* जो काँटेदार झाड़ियों का रुप ले लेता है, काफी उल्लेखनीय है। कुछ पौधे घने गुच्छेदार गेंद का आकार ले लेते हैं जैसे *एकैन्थोलिमान लाइकोपोडिवाइडिस, थाईलेकोस्पर्मम सिसपिटोसम, एरीनेरिया ब्रायोफिल्ला* इत्यादि। कुछ पौधे जैसे *प्लूरोगार्डन ब्रैकिऐन्थेरा, जेन्शियाना थामसोनी, जे0 ऐक्वेटिका, टेरेक्सेकम बाइकलर, लैन्सिया टिबेटिका, सैक्सीफ्रेगा पारवा* इत्यादि अत्यंत छोटे आकार के हो जाते हैं। कुछ पौधों में छोटे आकार के साथ-साथ लंम्बी जड़ें होती हैं जो जमीन के अन्दर काफी दूर तक चली जाती हैं जैसे *ऐस्ट्रागैलस हेडियाई, हेडीनिया टिबेटिका, थरमाप्सिस इनफ्लाटा* इत्यादि। इन पौधों में जड़ो से हर वर्ष नये पौधें निकलते रहते हैं तथा पत्तियाँ और फूल गुच्छों में होते हैं। *कैरागैना पिगमिया, इफेड्रा जेरारडियाना, मीरिकेरिया प्रोस्ट्राटा, लोनीसेरा हिसपिडा* आदि घनी झाड़ियों का रुप ले लेते हैं। *साउस्सुरेआ* जाति के कुछ पौधे घने रोयेंदार हो जाते हैं। *इकाइनाप्स कार्नीजेरस* तथा *सरसियम* जाति के पौधे काँटेदार होते हैं।

कुछ अन्य विचित्र पौधों में *कैरागेना वर्सीकलर* का नाम लिया जा सकता है जो पूरे लद्दाख क्षेत्र में फैला हुआ है। यह चोटियों के ऊपर स्तूप के आकार का दिखाई देता है। कुछ पौधे ऊंचाई पर स्थित दर्रों में ही पाये जाते हैं जैसे *लैगोटिस ग्लोबोसा, ड्राबा सिटोसा, ड्रा0 स्टेनोकार्पा* इत्यादि रुके हुए पानी के स्थानों में *लिमोसेला एक्वेटिका, बाइडेन्स सर्नुआ, हिप्युरिस वलगैरिस, फ्रैगमाइटिस कम्यूनिस, यूट्रीक्यूलेरिया* तथा *पोटेमोजिटान* जाति के पौधे पाये जाते हैं। जंगली चना - *साइसर सांगारिकम*, प्याज वंश की कई जातियाँ जैसे *एलियम जैक्वेमोन्टिआई* तथा गोधूमी वंश की जातियाँ जैसे *सिकेल सिरियेल, हार्डियम एजीसीरास, हा0 म्यूरीनम* आदि भी पाई जाती हैं।

शीत मरुस्थलीय वनस्पतियों की विविधता में स्थानीय मनुष्यों का भी योगदान रहा है। भोजन, पशुओं के लिए चारा, जलावनी लकड़ी, भवन निर्माण के लिए उपयोगी लकड़ी, फल, सब्जी, औषधि आदि अपनी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के पेड़ पौधे इन क्षेत्रों में लगाये गये हैं उदाहरण के लिए *सैलिक्स एल्बा, सै0 डैफन्वाइडिस, सै0 एलीगेन्स, सै0 स्क्लीरोफिल्ला, सै0 फ्रैजीलिस, पापुलस एल्बा, पा0 अंगुष्टीफोलिया, पा0 कैंडीकैन्स, पा0 सिलिआटा, पा0 यूफ्रैटिका, पा0 नाइग्रा, टैमेरिक्स गैलिका, एलिएग्नस हॉरटेन्सिस, मोरस एल्बा, जुग्लन्स रेजिया, प्रू0 ड्रेसिकार्पा, प्रूनस पर्सिका, प्रू0 आर्मेनिआका और पायरस* जाति के कुछ पौधे उल्लेखनीय हैं। जानवरों के लिए चारा तथा जमीन को सुधारने के लिए *डिजीटेरिया इस्चिमम, पैनिकम मिलिएसिअम, फैस्ट्यूका साइबेरिका, पोआ एल्पीना, डैक्टाइलिस ग्लोमेराटा, प्रैगास पैबुलेरिया* तथा 'यारकण्डी' नाम का पौधा स्थानीय लोगों द्वारा लगाया जाता है।

कुछ आर्थिक रुप से उपयोगी पौधे

1. **फसली पौधों के वन्य सम्बन्धी:-** *ऐवेना बारबाटा, ऐ0 फेंटुआ, इलाइमस डैहुरिकस, इ0 डेसीस्टेकिस, इ0 न्यूटैन्स, हार्डियम तुरकिस्तानिकम, पैनिसिटम ओरियन्टेल, साइसर सांगारिकम* इत्यादि।
2. **फल:-** *कैपेरिस स्पाइनोसा, बरबेरिस पिटियोलेरिस, इलियेग्नस हारटेन्सिस, इफेड्रा जेरारडियाना, राइबिस नाइग्रम, रोजा वेब्बियाना, हिप्पोफी रैम्नवाइडिस* इत्यादि।

3. **शाक के रूप में उपयोगी:-** *एलियम ह्यूमाइल, ए0 प्लैटीस्पैथम, ए0 स्बेलेम, ए0 ट्यूबरोसम, साइसर सांगरिकम, ऐरेम्यूरस हिमालइकस, पालीगोनम वीवीपेरम, कैरम करवी इत्यादि।*

4. **औषधीय तथा विषैले पौधे:-** *एकोनिटम हैटेरोफिल्लम, ए0 वायोलेसियम, आर्टिमिसिया मैरीटिमा, बरबेरिस अरसीना, बरजीनिया स्ट्रैचिआई, कैपेरिस स्पाइनोसा, डैक्टाइलोराइजा हटाजीरिआ, ड्रैकोसिफैलम हेटेरोफिल्लम, इफेड्रा जिरारडियाना, फैरुला जैस्किआना, जैन्शिआना कुरुआ, मैन्था आरवेन्सिस, पेगानम हरमाला, पिक्रोराइजा कुरुवा, प्लान्टागो मेजर, रियम इमोडी, ससूरिया कास्टस, हायोसाइमस नाइजर, फाइसोक्लेना प्रीऐल्टा, मोरीना कूल्टेरिआना इत्यादि*

5. **चारा, जलावनी तथा इमारती लकड़ी:-** *प्रैंगास पैबुलेरिआ, हैराक्लीअम कैंडीकैन्स, मेडीकागो फल्कटा, मै0 सैटाइवा, ट्राइगोनेला इमोडी, सैलिक्स एलिगेन्स, सै0 एल्बा, सै0 स्कीलरोफिल्ला, पापुलस एल्बा, पा0 यूफ्रैटिका, पा0 कैंडीकैंस, पा0 नाइग्रा, पापुलस सीलिआटा, पापुलस अंगुष्टीफोलिआ, जुनीपेरस मैक्रोपोडा, जू0 कम्यूनिस, मीरिकेरिया प्रोस्ट्राटा, हिप्पोफी रैम्नाइडिस, टैमेरिक्स गैलीका, कैरागैना पिग्मिया इत्यादि।*

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पश्चिमी हिमालय के शीत मरूस्थलों में उगने वाली वनस्पतियां स्वयं में विचित्र हैं और इनकी अपनी अलग पहचान है। इस अनुपम राष्ट्रीय धरोहर की सुरक्षा हमारा पुनीत कर्तव्य है।

जनपद पिथौरागढ़ (उ0 प्र0) का वानस्पतिक विवेचन एवं पर्यावरण संरक्षण

बिपिन बलोदी

हिमालय की सुरम्य गोद में स्थित पवित्र नदियों काली, गौरी, रामगंगा, सरयू इत्यादि नदियों से सिंचित जनपद पिथौरागढ़ उत्तर प्रदेश के तीन सीमान्त जनपदों में से एक हैं। $29^{o}27$ से $30^{o}49$ अक्षांश तथा $79^{o}50$ से $81^{o}49$ देशान्तर के बीच स्थित इस जनपद के पूर्व में नेपाल, दक्षिण में नैनीताल, उत्तर में तिब्बत तथा पश्चिम में अल्मोड़ा व जनपद चमोली स्थित हैं। इसकी उत्तर से दक्षिण तक अधिकतम लम्बाई लगभग 151 कि0मी0 तथा पूर्व से पश्चिम तक अधिकतम चौड़ाई लगभग 119 कि0मी0 हैं। जिले का कुल क्षेत्रफल लगभग 7242 वर्ग कि0मी0 हैं जिसकी अनुमानतः 38 प्रतिशत (लगभग 2,80,403 हैक्टेयर) भूमि वनों से आच्छादित है।

जनपद का अलौकिक, मनोहारी प्राकृतिक सौन्दर्य एवं स्वच्छ सुन्दर प्रफुल्लित कर देने वाली जलवायु सदियों से देश विदेश के सैलानियों को आकृष्ट करती रही हैं। जहां एक ओर पर्वतारोहियों को चुनौती देती पंचाचूली एवं सुन्दरदूगः भ्रमणकारियों को रोमांचित कर देने वाले मिलम ग्लेशियर, रालम ग्लेशियर तथा पर्यटकों को विस्मित कर देने वाले सुन्दर सुहावने पर्यटक स्थल लोहाघाट, चम्पावत, चाकोरी, पिथौरागढ, असकोट, डिडिहाट व धारचूला स्थित हैं वहीं दूसरी ओर हिन्दुओं के महातीर्थ विश्वप्रसिद्ध कैलाश पर्वत एवं मानसरोवर झील का मार्ग इसी जनपद से है। भगवान शंकर की इस निवास स्थली के दर्शनार्थ यात्री हर वर्ष यहां आते हैं। यह रास्ता चीन के भारत पर आक्रमण के बाद बन्द कर दिया गया था जिसे कि अब पिछले कुछ वर्षों से पुनः खोल दिया गया है। इस यात्रा के मार्ग में स्थित नारायण आश्रम, छायालेक, इत्यादि बरबस ही मानव में अपनी स्वच्छ मनमोहक छवि से आध्यात्म के बीज प्रस्फुटित कर देते हैं।

जलवायु के आधार पर सम्पूर्ण जिले की वनस्पतियों को मुख्यतः निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

1. उपोष्ण कटिबन्धीय वनस्पतियाँ
2. शीतोष्ण कटिबन्धीय वनस्पतियाँ
3. उपहिमाद्रि वनस्पतियाँ
4. हिमाद्रि वनस्पतियाँ

उपोष्ण कटिबन्धीय वनस्पतियाँ:

इस प्रकार की वनस्पतियाँ समुद्रतल से 600-1700 मी0 की ऊंचाई तक पायी जाती हैं। यहां

घाटी के निचले हिस्सों में साल (*शोरिया रोबस्टा*) के जंगल दिखाई देते हैं, इसके साथ-साथ रुणी (*मेलोटस फिलिफेन्सिस*) तुन (*तूना सिलियेटा*), खिन्ना (*सेपियम इनसिग्ने*) कणमण (*लानिया कोरोमन्डेलिका*) *एगलहर्डसिया स्पाइकेटा* तथा यहां-वहां छितरे सेमल (*सीबा बाम्बेक्स*) चूड़ा (*डिप्लोकनीमा व्यूटीरेसिया*) के वृक्ष मिलते हैं। पूर्वी हिमालय में पाये जाने वाला वृक्ष मेकरेन्गा इन्डिका भी इस क्षेत्र में मिलता है।

कोलेबूकिया अपोजिटिफोलिया, कैलिकार्पा मैक्रोफिल्ला, सोलेनम इरिएन्थम, जेट्रोफा करकास तथा *रिसिनस कम्यूनिस* बहुतायत में पाया जाता है। थोड़ी सा ऊंचाई पर (900-1700 मी०) *एंगलहार्डसिया स्पाइकेटा, लायोनिया ओवालिफोलिया, कॉर्डिया डाइकोटोमा, कुएरकस ल्यूकोट्राइकोफोरा, रहोडोन्ड्रोन आरबोरियम* के मिश्रित वन मिलते हैं। यहां झाड़ियों में *बरबेरिस* की कई जातियां, *रुबस* की जातियां, *वुडलेजा एसिएटिका, कोटोनेआस्टर* की जातियाँ, *सायथुला टोमन्टोसा, पायराकान्था क्रेन्युलाटा, प्रिंसिपिया युटिलिस, एकमेन्थेरा टोमन्टोसा, इन्डिगोफेरा हेटरेन्था, बारलेरिया क्रिसटाटा, इन्यूला काप्पा, रेनवार्डिया इन्डिका, लैप्टोडर्मिस लैन्सिओलेटा, हैडेरा नैपालेन्सिस, आर्टिका* की जातियां एवं *वोहमेरिया प्लेटिफिल्ला* प्रमुख हैं।

शाकीय पादपों में यहां मुख्यतः *एजेरेटम कोनीजोइडेस, गैलिनसोगा पार्वीफ्लोरा, सिरासियम वालिची, सीजेसबेकिया ओरिएन्टेलिस, वरनोनिया सिनेरिया, एकाइरेन्थस एस्परा, युफोर्बिया हिर्टा, यू० पाईलोसा, मेजस प्यूमिलस, पौलीगेला एबीस्सीनिका, माइक्रोमेरिया बाईफ्लोरा, स्टेल्लेरिया मीडिया, सोलेनम नाइग्रम, वाइला बाइफ्लोरा व क्रोटोलेरिया* की जातियाँ प्रमुख हैं।

आरोही पादपों में यहां मुख्यतः *अब्रस प्रिकेटोरियस, म्युकुना निग्रिकेन्स, मिलेटिया एक्सटेन्सा, ब्यूटिया मोनोस्पर्मा, फैनेरा वहली* तथा अल्पमात्रा में पाये जाने वाला सुन्दर, सफेद पुष्पी, काष्ठीय आरोही *कोनीमॉर्फा फ्रेगरेन्स* प्रमुख हैं। साथ ही पूर्वी हिमालय में पाया जाने वाला आरोही *टायलोफोरा इन्डिका* भी यहां पाया जाता है।

पुष्पी पादपों के सबसे बड़े कुल "आर्किडेसी" की यहाँ काफी जातियाँ पाई जाती हैं।

मनुष्य का इनके प्रति बढ़ते आकर्षण से इनका व्यापार एव बागवानी होने लगी है जिससे ये आर्किड वनस्पतियां अपनी प्राकृतिक स्थलियों से समाप्त होती जा रही हैं। जंगलों का अन्धाधुन्ध कटान क्षेत्र में पर्यावरण का संतुलन तो बिगाड़ ही रहा है साथ ही उन पर उगने वाली बहुमूल्य आर्किड गतियों को भी हानि पहुंचा रहा है। दूर दराज के हिमालय के अनछुये क्षेत्रों में पर्यटकों का बढ़ता आकर्षण निश्चय ही खूबसरत आर्किड पादपों पर निरंतर अपना दबाव बढाता जा रहा है।

लेखकों का अपना व्यक्तिगत अनुभव है कि कुछ वर्षों पूर्व कुमाऊं के अस्कोट, दफिया धुरा शानदेव तथा समाधुरा क्षेत्र में प्राकृतिक आर्किड श्रृंखला विद्यमान थी। इस क्षेत्र में *तूना सिलिएटा, मैलोटस फिलिप्पेन्सिस, एगलहार्डसिया स्पाइकाटा, लानिया कोरमंडेलिका, रहोडोडेन्ड्रोन आरबोरियम, कुएरकस* तथा *पाइनस* की जातियों के वृक्षों की शाखाओं पर आर्किड पादपों की सुन्दर घनी ऊपज सर्वत्र दृष्टिगोचर होती थी। यद्यपि आज भी यह क्षेत्र सम्भवतः पश्चिमी हिमालय के अन्य क्षेत्रों की

अपेक्षा आर्किड वनस्पतियों में सबसे धनी हैं लेकिन पिछले कुछ वर्षों से पगडंडियों तथा सड़क के आसपास पाये जाने वाले आर्किड से लदे वृक्ष आज समाप्त हो गये हैं। इस क्षेत्र में ही पूर्व वर्णित कई आर्किड जातियां आज या तो समाप्त हो गयी हैं या समाप्ति की ओर अग्रसर हैं। पिथौरागढ़ जिले में पड़ने वाली गौरी गंगा नदी की घाटी में सीधे असकोट से लेकर जोलजीबी, गार्जिया, कफलानी, वरम मेतली तथा दफिया धूरा जंगल को शीघ्र ही आर्किड-निचय (आर्किड रिजर्व) या आर्किड आश्रय घोषित कर इस क्षेत्र की इस बहुमूल्य निधि को संरक्षण प्रदान करना चाहिये।

नीचे पश्चिमी हिमालय की कुछ ऐसी आर्किड़ जातियों की सूची दी जा रही हैं जो लुप्त प्राय हैं।

जाति का नाम	फूल/फल का समय	प्राप्ति स्थान
बल्बोफिल्लम हुकेरी (दुथी) जे0 जे0 स्मिथ	मार्च-जून	गढ़वाल, कुमाऊं (1800-2500 मी.)
व. ट्रिस्टी रिचेन्व0 एफ0	मार्च-मई	कुमाऊ सिक्किम (1000-1500 मी0)
डेन्ड्रोबियम इरिएईफ्लोरम ग्रिफ0	अगस्त-सितम्बर	
डे0 प्रिमुलिनम लिन्डले	मार्च-मई	कुमाऊं सिक्किम (700-1400 मी0)
डे0 पोरफाइरोचिलम लिन्डले	अगस्त-सितम्बर	कुमाऊ सिक्किम (900-1300 मी0)
इफिमेरेन्था मैकरिआई (लिन्डले) हन्ट एवं सुम0	जुलाई-सितम्बर	कुमाऊ सिक्किम (900-1500मी0)
वेन्डा प्युमिला हूक0 एफ0	मार्च-मई	गढ़वाल सिक्किम (800-1400 मी0)
हैवेनेरिया डेन्टेटा श्लेष्ट	जुलाई-सितम्बर	कुमाऊ-सिक्किम (1000-2400 मी0)
है0 कोमेलिनिफोलिया (रॉक्सब0) वाल0 एक्स लिन्डले	जुलाई-अक्टूबर	पंजाब कुमाऊ (700-2200 मी0)
हरमीनियम मैकिनोनी डुथी	जुलाई-सितम्बर	मसूरी सिक्किम (1400-2000 मी0)
लिपेरिस प्लेटीरेकिस हूक0 एफ0	मई-अगस्त	कुमाऊ-सिक्किम (2400-2700 मी0)
आर्निथोचिलस डिफारमिस (वाल0 एक्स लिन्डले) श्लेष्ट	मार्च-मई	कुमाऊ-सिक्किम (900-1600 मी0)
प्लिओन प्रेकाक्स डी0 डान	जून-सितम्बर	कुमाऊ-सिक्किम (1700-2400 मी0)

अत्यधिक दोहन तथा पर्यावरण में निरन्तर हो रहे परिवर्तन के फलस्वरूप नीचे लिखे पादप संकटग्रस्त हो गये हैं।

जाति का नाम	फूल/फल का समय	प्राप्ति स्थान
एकम्पी रिजिडा (वच0हैम0एक्स स्मिथ) हन्ट	अप्रैल-जून	कुमाऊं - सिक्किम (800-1600 मी0)
ब्रेकीकोरीथिस आबकॉर्डेटा (वच0 हैम0 एक्स डी0 डान) स्मिथ	जुलाई-सितम्बर	गढ़वाल-नागालैन्ड (1000-2300 मी0)
बल्बोफिल्लम एफिने लिन्डले	जुलाई-सितम्बर	कुमाऊं-सिक्किम (1000-2000 मी0)
ब0 कैरिनीफ्लोरम रीचेन्ब0 एफ0	मार्च-मई	गढ़वाल - कुमाऊं (1200 -2000 मी0)
ब0 हैलिनी सम0	अगस्त-अक्टूबर	कुमाऊं-सिक्किम (1500 2300 मी0)
ब. सिकन्डम हूक0एफ0	मार्च-मई	कुमाऊं-सिक्किम (1000-1600 मी0)
ब0 वालिचिई रीचेन्ब0 एफ0	जुलाई-अक्टूबर	कुमाऊं-सिक्किम (1200-2800 मी0)
डेन्ड्रोबियम कैन्डीडम वाल0 एक्स लिन्डले	मार्च-मई	कुमाऊं - सिक्किम (1200-2500 मी0)
डे0 क्रायसेन्थम वाल0 एक्स लिन्डले	जुलाई-सितम्बर	कुमाऊं-सिक्किम (900-2000 मी0)
ईरिया अल्बा लिन्डले	जून-सितम्बर	कुमाऊं - सिक्किम (1000-2300 मी0)
ई0 एमाईका रिचेन्ब0 एफ0	मार्च-जून	कुमाऊं-सिक्किम (800-2000 मी0)
ई0 कोरोनेरिया (लिन्डले) रिचेन्ब0 एफ0	मार्च-मई	कुमाऊं-सिक्किम (1500-2500 मी0)
ई0 मस्कीकोला (लिन्डले) लिन्डले	जुलाई-सितम्बर	कुमाऊं-सिक्किम (1000-2000 मी0)
ई0 रेटीकोसा वाइट	जुलाई-अगस्त	कुमाऊं-पश्चिमी घाट (1500-2100 मी0)
फ्लिकन्जेरिया हेसपेरिस सीडन0	मार्च-मई	कुमाऊं (1200 मी0)
गेस्ट्रोचिलस एक्यूटिफोलियस (लिन्डले) (लिन्डले)	जुलाई-सितम्बर	कुमाऊं-सिक्किम (1000 2400 मी0)
हेबेनेरिया लेटिलेब्रिस (लिन्डले) हूक0 एफ0	जुलाई-अक्टूबर	कश्मीर-सिक्किम (1700-2800 मी0)
हे0 पेक्टिनेटा (स्मि0) डी0 डान	जुलाई-सितम्बर	पंजाब-सिक्किम (1300-2200 मी0)
हे0 स्टेनोफिल्ला लिन्डले	जुलाई-अक्टूबर	गढ़वाल-कुमाऊं (1500 2500 मी0)

जाति का नाम	फूल/फल का समय	प्राप्ति स्थान
लिपेरिस सैसपिटोसा (थो3०) लिन्डले	अप्रैल-अगस्त	कुमाऊं-सिक्किम (800-1200 मी०)
लि० नर्वोसा लिन्डले	जुलाई-अगस्त	कुमाऊं-सिक्किम (700-2000 मी०)
मेलेक्सिस एक्यूमिनाटा डी० डान	जुलाई-अगस्त	पंजाब-आसाम
नर्वीलिया क्रोसीफार्मिस सीडन०	जून-सितम्बर	गढ़वाल-कुमाऊं
न० मैकिनोनी (डुथी) श्लेष्ट०	जून-सितम्बर	गढ़वाल-कुमाऊं (1400-1700 मी०)
ओबेरोनिया एन्सीफार्मिस (स्मि०) लिन्डले	मार्च-जून	कुमाऊं-सिक्किम (1000-2000 मी०)
ओ. प्रोनियाना लिन्डले	मार्च-जून	कुमाऊं-सिक्किम (700-1500 मी०)
पेरिस्टाइलस एलिजाबेथी (डुथी) गुप्ता	जुलाई-सितम्बर	कश्मीर-कुमाऊं (1800-3000 मी०)
टेरोसिरास सुआवेओलेन्स (रोक्सब०) होल्ट०	मार्च-जुलाई	कुमाऊं-सिक्किम (1400-2000 मी०)
थेलासिस लॉंगीफोलिया हूक० एफ०	मार्च-सितम्बर	कुमाऊं-सिक्किम (1000-1800 मी०)
वेन्डोप्सिस अंडुलाटा (लिन्डले) स्मिथ	अप्रैल-जून	कुमाऊं-भूटान (800-2000 मी०)

शीतोष्ण कटिबन्धीय वनस्पतियां:

इस प्रकार की वनस्पतियां समुद्रतल से 1500 मी० से 3000 मी० की ऊंचाई तक पाई जाती हैं। जनपद का ज्यादातर भाग इसी जलवायु के अन्तर्गत आता है अतः इस प्रकार की वनस्पतियों की यहां प्रचुरता है। इस प्रकार की वनस्पतियों में शंकुधारी वन मुख्य है जिनमें चीड़ (*पाइनस वालिचियाना*), देवदार (*सेड्रस देवदारा*), *एबीज पिन्ड्रो, टेक्सस बक्काटा* व *क्यूप्रेसस* प्रमुख हैं।

सुन्दर, सुहाने शंकुधारी वनों की अनुपम छटा यहां देखते ही बनती है। शंकुधारी वनों में यद्यपि भूमि पर उगने वाले शाकीय पादप कम होते हैं तथापि यहां झाड़ियों की प्रचुरता होती है।

शंकुधारी वनों के अलावा यहां के घने मिश्रित वन प्रकृति की अनुपम धरोहर हैं। यहां *रहोडोडेन्ड्रोन आरबोरियम, कुएरकस ल्यूकोट्राइकोफोरा, कु० डायलाटाटा, कु० फ्लोरीबन्डा, कु० सेमीकार्पीफोलिया, अलनस नेपालेन्सिस, एस्कुलस इन्डिका, सिम्प्लोकोस पैनिकुलेटा, सि० रेसिमोसा, निओलिट्सिया अम्ब्रोसा, परसिया गैम्बली, प० औडोरेटिसिमा, डेफ्नीफिल्लम हिमालेन्स* आदि मुख्य हैं। *परसिया गैम्बली* वृक्ष का वितरण पश्चिमी हिमालय में केवल गढ़वाल और कुमाऊं क्षेत्र में ही निहित है जबकि *परसिया बौम्वेसिना* पूर्व हिमालय से अपना वितरण क्षेत्र बढ़ाते हुये पिथौरागढ़ जनपद तक पहुंच गया है।

यहां मिश्रित एवं शंकुधारी वनों की बहुतायत से झाड़ियों और शाकीय वनस्पतियों को इनकी छाया में फलने-फूलने के अच्छे अवसर प्राप्त होते हैं। इस क्षेत्र की मुख्य झाड़ियां निम्न हैं:-

बरबेरिस की जातियां, *रुबस इलिप्टिकस*, रु. *लेसिआकार्पस, रुबस नीवियस, कांटोंनेआस्टर* की विभिन्न जातियां, *वाइबरनम कोटीनीफोलियम*, गुलाब (रोज़ा) की कई जातियाँ, *डेरमांडियम टिलिएईफोलियम, लिन्डेरा पुलचेरिमा, डैफने पैपीरेसिया, कोलोक्यूहनिया कोक्सीनिया, ल्यकोंमैपट्रम कैनम, डेब्रेगीसिया सैलिसिफोलिया, जिरार्डीनिया डाइवर्सीफोलिया, इलिएगनस* पार्वीफ्लोरा, *सारकोकोका सैलिग्ना* इसके अलावा मुनस्यारी क्षेत्र में औषधी गुणों का भण्डार *जेन्थोजाइलम आरमेटम* (टिमूर) भी पाया जाता है, हालांकि स्थानीय लोगों द्वारा इस झाड़ी को विभिन्न उपयोगों हेतु दोहन के फलस्वरुप यह काफी कम हो रहा है तब भी इसकी संख्या काफी है। *एरिस्टोलोकिया डिलिटाटा* जो कि एक आरोही झाड़ी है भी यहां पाई जाती है।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है इस क्षेत्र में वनों की बहुतायत है जिनकी नम उपजाऊ भूमि शाकीय पादपों के लिये उपयुक्त होती है फलस्वरुप शाकीय पादप बहुतायत में पाये जाते हैं। यहां पाये जाने वाले मुख्य शाकीय पादप निम्न हैं :-

रैननकुलस लीटस, एनीमोन आवट्यूसिलोबा, जिरेनियम वालिचियानम ट्राइगोनेला इमोडी, ट्रा० कारनीकुलाटा, लोटस कार्नीकुलेटस, आक्सीईट्रापिस मौलिस, इक्सेकम टेट्रागोनम, जैन्सियाना सिफेलोडस, जे० पेडिसिलेटा, एन्ड्रोसेसी सारमेन्टोसा, हेलेनिया इलिप्टिका, सायनोग्लोसम लैन्सिओलेटम, सा० ग्लोचिडियाटम, निकेन्ड्रा फाइसेलोडस, पेडिक्युलेरिस हाफमिस्टराई, चिरिटा बाइफोलिया, परसिकेरिया वारवेटा, इलैटोस्टेमा सेसाइलिस, अजूगा ब्रेक्टिओसा, अ० पार्वीफलोरा, लैमियम एल्बम, प्लेन्टागो मेजर, इत्यादि।

नम छायादार स्थानों पर जड़ों पर उगने वाले परजीवी *जीनेशिया इन्डिका* तथा *ओरोवेन्की अल्बा* पाये जाते हैं सामान्यतः *ओरोवेन्की अल्बा, अर्टीमीसिया* एवं *पौलीगोनम* की जड़ों पर तथा *एइजीनेशिया इन्डिका* बाँज (*कुएरकस*) तथा बुरांश (*रहोडोडेन्ड्रोन*) की जड़ों पर उगते पाये जाते हैं। इसके अलावा *थीसियम हिमालेंस* जो कि उपरोक्त के समान ही जड़ों पर उगने वाला परजीवी है 2000 से 4000 मी. की ऊंचाई तक पाया जाता है।

सामान्यतः पूर्वी हिमालय में पाये जाने वाला सेन्टेलेसी कुल का परजीवी *ड्यूफ्रेनोया ग्रेन्युलाटा* भी कफलानी के सुरक्षित वन से एकत्रित किया गया। यह परजीवी सामान्यतः *लिट्सिया* वृक्ष की शाखाओं पर उगता पाया जाता है।

उपहिमाद्रि वनस्पतियां:

सामान्यतः इस प्रकार की वनस्पतियाँ समुद्र तल से 3000 - 3500 मी० की ऊंचाई तक पायी जाती हैं लेकिन इस जनपद के कुछ स्थानों जैसे कि मल्ला जौहार पट्टी में इस प्रकार की वनस्पति 2800 मी० से ही प्रारम्भ हो जाती है। वास्तव में यहां शीतोष्ण तथा हिमाद्रि दोनों ही प्रकार की

वनस्पतियों का मिश्रण मिलता है। यहां *एसर सीजियम, ए0 ऑबलांगम, रहोडोडेन्ड्रोन कम्पान्नुलाटम, बेटुला यूटिलिस* तथा *एबीज पिन्ड्रो* के मिश्रित वन पाये जाते हैं। धारचूला तहसील के अन्तर्गत आने वाले गर्ब्यांग क्षेत्र में जाते हुये *हिप्पोफे रहोडोडेन्ड्रोन* के छोटे-छोटे वृक्ष बहुतायत में पाये जाते हैं स्थानीय भाषा में ये वृक्ष संकतरु कहलाते हैं।

बेटुला यूटिलिस के वृक्ष यहां वृक्षों की अन्तिम सीमा (ट्री लाईन) बनाते हैं इसके बाद वनस्पतियों का वृक्ष स्वरुप प्रायः समाप्त हो जाता है। उपहिमाद्रि वनस्पतियों में मुख्य झाड़ियां *पिओनिआ इमोडी* (हडगांस) *कोटोनेआस्टर* की जातियाँ *रोजा* (गुलाब) की जातियां *वाइबरनम* की जातियां, *राइब्स* की जातियां व *बरबेरिस* इत्यादि की जातियां हैं।

शाकीय पादपों में मुख्यतया *एनीमोन, रैनकुलस, जिरेनियम, एनाफेलिस, पॉलीगोननम, सेनिसिओ,* वे *कोरीडेलिस* की जातियां, *आक्सीट्रोपिस* की जातियां, *लेमियम एम्पलेक्सीकउला, लोटस कार्नीकुलाटस, स्कुटेलेरिया डिसकॉलर, जेनाशियाना पेडिसिलेटा* इत्यादि पायी जाती हैं।

हिमाद्रि वनस्पतियां:

ये वनस्पतियां समुद्रतल से 3500 मी0 की ऊंचाई से प्रारम्भ होती हैं। जनपद पिथौरागढ़ के मुनस्यारी तहसील का मल्लाजौहार, धारचूला तहसील का ब्यास-चौदास का ऊपरी भाग तथा दारमा घाटी का ऊपरी क्षेत्र हिमाद्रि वनस्पतियों के लिये विख्यात है। मल्ला जौहार क्षेत्र में स्थित मारतोली के बर्फीले घास के मैदान तथा ब्यास-चौदास घाटी का छाया लेक क्षेत्र अपनी वनस्पति विविधताओं तथा सुन्दरता के लिये पश्चिमी हिमालय के अन्य बर्फीले घास के मैदानों में विशिष्ट स्थान रखता है।

वनस्पतियों के वृक्ष स्वरुप की सामन्यतः अनुपस्थिति ही इस प्रकार की वनस्पतियों की विशेषता है यद्यपि कहीं-कहीं *बेटुला यूटिलिस* (भोजपत्र) के वृक्ष समूह पाये जाते हैं।

क्षेत्र में अधिक सर्दी एवं बर्फ पड़ने के कारण अधिकतर वनस्पतियों का स्वरुप झाड़ीनुमा होता है या यों कहिये यहां की वनस्पतियों में झाड़ियों की बहुलता है जिनमें मुख्य *रोजा सेरिसिया, रोजा वेबियाना, राइब्स ग्लेसियेल, राइब्स ग्रिफिथियाई, कोटोनेआसस्टर* की विभिन्न जातियां, *बरबेरिस* की जातियां व *करागेना वर्सीकलर* की छोटी-छोटी झाड़ियां बहुतायत में पायी जाती हैं। *जूनिपेरस वालिचियाना* तथा *जुनिपेरस कम्यूनिस* की यहां तहां फैली हुई झाडियों की बहुलता भी यहां की वनस्पतियों की विशेषता है। स्थानीय लोग इसको धूप कहते हैं और इसकी लकड़ी स्थानीय लोगों के लिये ईधन का मुख्य स्रोत है। मिलम ग्लेशियर क्षेत्र में मिलम गांव तथा ग्लेशियर के बीच का घाटी क्षेत्र *हिप्पो तिबेताना* की छोटी-छोटी झाड़ियों से आच्छादित दिखाई पड़ता है।

यहां मई-जून माह में जब गर्मी के कारण बर्फ पिघलनी प्रारम्भ होती हैं तो विविधता लिये हुए शाकीय पादपों का अतुल भण्डार धरती से बाहर निकल आता है। इन पादपों का जीवन काल माह अक्टूबर - नवम्बर तक समाप्त होता है क्योंकि इसके बाद बर्फ से सम्पूर्ण क्षेत्र ढक जाता है। यहां उगने वाले शाकीय पादपों में मुख्यतः *एकोनाइटम हिटरोफिल्लम, एनीमोन रिवुलेरिस, एक्वीलेजिया*

प्यूवीफ्लोरा, डलफीनियम ब्रुनोनियानम, मैकोनोपसिस अक्यूलियाटा, लोटस कार्नीकुलेटस, जियम इलेटम, पोटेन्टिला एट्रोसेग्विनी, पो0 फयूलजेन्स, ट्रेकीडियम रायलियाई, नार्डोस्टेकिस जटामांसी, एनाफेलिस ट्रिप्लीनरविस, क्रिमेन्थोडियम अर्नीकोइडिस, लिओन्टोपोडियम अल्पिनम आदि होते हैं।

उत्तरांचल का सीमान्त जिला पिथौरागढ़ भी विकास एवं आधुनिकीकरण की गतिविधियों के कारण पर्यावरणीय समस्याओं से दो चार हो रहा है। दूर-दराज के क्षेत्रों तक सम्पर्क तथा सुविधा हेतु सड़क निर्माण हुआ जो वनों के विनाश का पर्याय बना। प्रभावशाली विस्फोटक चट्टानों को तोड़ने के लिये प्रयोग किये गये जिससे विश्व की नवीनतम पर्वतमाला की गोद में स्थित यह क्षेत्र बुरी तरह हिलता गया जिससे निरंतर होते भूस्खलनों द्वारा भयंकर तबाही और मौत का ताण्डव हुआ। बढ़ती जनसंख्या द्वारा प्रकृति और प्राकृतिक सम्पदा पर दबाव इस सीमा तक बढ़ रहा है कि आबादी के निकट के क्षेत्र प्रायः वन विहीन हो रहे हैं। रही-सही कसर वन माफियाओं ने पूरी कर दी।

कृषि योग्य भूमि निर्माण के लिये भी वनों का ही विनाश किया गया। पर्यटको स्थलों के विकास के साथ ही क्षेत्र में बढ़ते पर्यटन ने भी यहाँ की वन सम्पदा को काफी नुकसान पहुंचाया है।

सौभाग्य की बात है कि विद्वानों ने समस्या और जटिल हो जाने से पूर्व ही समाधान सोचना शुरु कर दिया है। ऐसा नहीं है कि इससे पूर्व किसी ने वन और उसकी महत्ता को न समझा हो। भारतीय ऋषि, मुनि, विद्वानों एवं संतों की दूर-दर्शिता एवं परिकल्पना में व्यक्ति और प्रकृति के अटूट सम्बन्धों की विवेचना पौराणिक ग्रन्थों एवं महाकाव्यों में स्थान-स्थान पर प्रत्यक्ष रुप से की गई है। इन विद्वानों के ही विचारों ने इस देश में वृक्षों को पूज्य बना दिया वट वृक्ष (*फाइकस बंगालेन्सिस*), पीपल (*फाइकुस रिलीजिओसा*) देवदार (*सेड्रस देवदारा*), तथा आम (*मैंगिफेरा इन्डिका*) इस क्षेत्र की जनता द्वारा भिन्न-भिन्न संदर्भों में पूजे जाते रहे हैं। मत्स्य पुराण के अनुसार वृक्ष पुत्रों के समान हैं। वाराह पुराण के अनुसार (**"पंचाग्रवपी नरकम न याति"**) यानि आम के पांच पेड़ लगाने वाला कभी नरक नहीं जाता। रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने भी वृक्षों की महत्ता को ध्यान में रख कर कहा है।

वेनस्मिन मामके नित्यं पुत्रवत् परिरक्षते।
पत्रांकुर विनाशाय फलमूल भवाय च।।

अर्थात् जो भी मेरे पुत्र समान वन के पत्र-अंकुर का विनाश और फल मूल का अभाव करेंगे वे निश्चित रुप से श्राप के भागी होंगे।

जनपद पिथौरागढ़ की दुर्लभ तथा उपयोगी वनस्पतियों को संरक्षित करने हेतु निम्न सुझाव दिये जा रहे हैं।

1. पिथौरागढ़ की तहसील मुनस्यारी तथा धारचूला के क्रमशः अपरजोहार, ब्यास-चौदास एवं दारमा घाटी के अधिकांश भाग उपहिमाद्रि एवं हिमाद्रि जलवायु के अंतर्गत आते हैं जहां स्थान-स्थान पर विभिन्न ढलानों के घास के मैदान स्थित हैं। इन क्षेत्रों के ये बर्फीले घास के मैदान सदियों से अपने औषधीय पादपों के भंडार के लिये प्रसिद्ध रहे हैं। यहां किसी एक या दो बर्फीले घास के मैदानों को

हिमाद्रि वनस्पति उद्यान के रुप में विकसित किया जाना चाहिये जहां प्राकृतिक अवस्था में विभिन्न संकटग्रस्त हिमाद्रि जलवायु के पादपों की वृद्धि की जा सके तथा उन्हें उनकी ही प्राकृतिक निवास स्थली में संरक्षित किया जा सके। ऐसा करते हुए इस प्रदेश में पाये जाने वाले विभिन्न औषधि पादपों के संरक्षण पर ज्यादा जोर दिया जाना चाहिये, ताकि मानव जाति प्रकृति की इस अमूल्य धरोहर से वंचित न होने पाये।

2. जौलजीबी, वरम दफियाधूरा-कफलानी तथा शानदेव क्षेत्रों को इसमें पाई जाने वाली आर्किड़ जातियों की बहुलता तथा इनकी वृद्धि के लिये उपयुक्त जलवायु को ध्यान में रखते हुए आर्किड राष्ट्रीय पार्क घोषित कर सही रुप से संरक्षण प्रदान करना चाहिए।

3. विभिन्न प्राकृतिक वनों को, जैसे कि कालामुनी वन व रुंगलिंग वन संरक्षित घोषित किया जाना चाहिये ताकि जीव जन्तुओं के संरक्षण के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण भी हो सके।

4. सामाजिक वानिकी कार्यक्रम को वृहत् रुप से चालू किया जाय। इसके लिये स्थानीय वृक्षों को प्राथमिकता दी जानी चाहिये साथ ही एक ही स्थान पर एक ही तरह के वृक्षों का रोपण भी नहीं करना चाहिये। जहां तक हो सके बहुआयामी वृक्षों का रोपण करना चाहिए। गांवों के आसपास बंजर, खाली भूमि में, खेतों के किनारे तथा सड़कों के किनारे जहां भी संभव हो सके वृक्ष लगाने चाहिये जिनसे स्थानीय लोगों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। ऐसा करने से जहां एक ओर स्थानीय लोगों को राहत प्रदान होगी वहीं प्राकृतिक वन एवं वनस्पतियों के दोहन का दबाव कम होगा तथा पर्यावरण को रुग्ण अवस्था से छुटकारा प्राप्त होगा।

5. पर्यावरण से सम्बन्धित शिक्षा को एक आवश्यक विषय बना कर स्कूलों एवं विद्यालयों में पढ़ाना चाहिये। साथ ही ऐसे कार्यक्रम शुरु करने चाहिये जिनके अन्तर्गत हमारे पर्यावरणविज्ञ एवं वैज्ञानिक सभी क्षेत्रों का भ्रमण कर स्थानीय जनता को वन-वनस्पति एवं पर्यावरण सम्बन्धी सूचनायें एवं ज्ञान दे सकें।

यह सर्वमान्य सत्य है कि किसी भी क्षेत्र का पर्यावरण संरक्षण जनता के सहयोग के बिना सम्भव नहीं है फिर पिथौरागढ़ जनपद या अन्य पर्वतीय क्षेत्रों मे पर्यावरण संरक्षण की परिकल्पना भी स्थानीय लोगों के सहयोग के बिना नहीं करनी चाहिये क्योंकि पर्वतीय क्षेत्रों, जहां आज भी जीवनयापन के लिये आवश्यक सामग्री कठिनता से पहुंच पाती है स्थानीय लोगों का जीवन अपने चारों ओर बिखरी वन और वनस्पतियों पर ही निर्भर करता है। अतः इस क्षेत्र के निवासियों को पर्यावरण की शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। उन्हें पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरुक करना होगा। ऐसा करते समय मूल तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि उन्हें दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुयें सुगमता उपलब्ध हो सकें और उनकी निर्भरता वन एवं वनस्पति पर कम हो सकें साथ ही उन्हें अति-आवश्यक वन सामग्री सामाजिक वनीकरण के तहत उनके आसपास ही उपलब्ध हो सके। उपरोक्त समस्त कार्यक्रमों के लिये पर्वतीय क्षेत्रों की भौगोलिक परिस्थितियों तथ यहां की मूलभूत आवश्यकताओं को विशेष महत्व देना होगा।

पिछले कुछ वर्षों में पद्म श्री विश्व प्रसिद्ध सुन्दर लाल बहुगुणा तथा रमनमैगसेसे पुरुस्कार विजेता श्री चण्डी प्रसाद भट्ट तथा उनके सहयोगियों ने पर्वतीय क्षेत्रों ही नहीं पूरे भारत में वन संरक्षण तथा पर्यावरण संरक्षण का अलख जगाया है। इसके अलावा पर्वतीय क्षेत्रों की विभिन्न संस्थायें भी आज गाँव-गाँव जाकर स्थानीय लोगों को पर्यावरण के सम्बन्ध में जागरुक कर रही हैं किन्तु उपरोक्त महानुभावों द्वारा प्रचारित प्रसारित वन संरक्षण कार्यकम अकेला "चिपको" पर्यावरण संरक्षण के लिये संभवतः काफी नहीं है। समय आ गया है कि सरकार इस दिशा में कुछ ठोस कार्यक्रम बनायें और उन्हें क्रियान्वित करे। सौभाग्य की बात है कि सरकार पर्वतीय क्षेत्रों में पर्यावरण संरक्षण के प्रति संजीदा है और इसके लिये एक कदम वह नन्दादेवी वायोस्फेयर बना कर उठा भी चुकी है लेकिन हमारे विचार से इतना ही काफी नहीं है। पर्यावरण की समस्या की गंभीरता को देखते हुए आवश्यक है कि और भी क्षेत्रों को संरक्षित किया जाय तथा स्थानीय लोगों में पर्यावरण के प्रति चेतना जागृत की जाय।

पश्चिमी हिमालय के अनावृतबीजी पादप

देवयानी बसु

पुष्पी पौधों को दो भागों में विभक्त किया गया है। अनावृतबीजी और आवृतबीजी। अनावृतबीजी पादपों की पत्तियाँ साधारणतः सुई के समान होती है। इनका मुख्य गुण है बीजाण्ड का नग्न होना। विश्व में अनावृतबीजी पौधों के 63 वंश और 750 जातियाँ पाई जाती हैं। भारत में लगभग 23 वंश और 60 जातियाँ मिलती हैं। (साहनी[1]) इनमें से पश्चिमी हिमालय में इनके 11 वंश व 25 जातियाँ पाई जाती हैं जो कि हिमालय में 500 मीटर से 3350 मीटर तक की ऊंचाई के बीच उगती है।

पश्चिमी हिमालय के क्षेत्रों में साधारणतया इनको निम्न गणों के पौधे पाये जाते हैं:- *कोनीफेरेल्स, टैक्सेल्स, एफीड्रेल्स साइकडेल्स* व *गिंक्गोएल्स*। साइकडेल्स गण के पौधे पश्चिमी हिमालय के अनेके उद्यानों में सौन्दर्य के लिए लगाये जाते हैं। गिंक्गोएल्स गण की एक जाति *गिंक्गो बाइलोबा* जिसे "जीवित जीवाष्म" व "मेडन-हेयर ट्री" कहा जाता है, देहरादून, शिमला, व मनाली में उद्यानो में लगाया हुआ है।

टैक्सेल्स गण का एक ही वंश व जाति *टेक्सस बकाटा* पश्चिमी हिमालय में कुमाऊं से लेकर जम्मू व कश्मीर तक फैली है। छायादार, नम स्थान इसके प्रिय वासस्थान हैं। अपने पर्ण समूह और गरिमामय रुपाकार के कारण स्वतः ही इनकी ओर ध्यान आकर्षित हो जाता है। "टेक्सोल" नामक पदार्थ इनकी पत्ती से निकाला जाता है जोकि कर्कट (कैंसर) जैसी जानलेवा बीमारी के उपचार में प्रयुक्त किया जाता है। लद्दाख में इसकी छाल का प्रयोग चाय जैसे पेय के रुप में किया जाता है।

कोनीफेरेल्स गण के पौधे अपने महत्व के लिए सुविदित हैं। इनके दो कुलों *पाइनेसी व क्यूप्रेस्सेसी* के पौधे पश्चिमी हिमालय में प्राकृतिक रुप में पाये जाते हैं। *सेड्रस देवदारा* साधारणतः पश्चिमी हिमालय के 2500-3300 मीटर ऊंचाई के बीच पाई जाती है। इसकी लकड़ी अच्छी प्रकार की होती है क्योंकि इस पर दीमकों और कवकों का कोई प्रभाव नहीं होता। इसकी लकड़ी से प्राप्त की गई औषधियाँ मूत्रवर्धक और पाचक होने के साथ ही श्वास, बवासीर और गठिया में लाभदायक होती हैं। मुर्गा कुल की एक विशिष्ट जाति *वैस्टर्न ट्रेगोपान्* जो देवदार के पेड़ो पर कुमाउं से कश्मीर तक पाई जाती है, अब संकटग्रस्त है, शायद देवदार के वन विनाश के कारण। (साहनी[1])।

एबीज पिन्ड्रो पश्चिमी हिमालय में 2300-3350 मीटर ऊंचाई के बीच में पाई जाती है। इसकी लकड़ी फल पेटियां और रेलवे स्लीपर बनाने में प्रयुक्त होती है। दूसरी जाति ए. *स्पेक्टाबिलिस* हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश में इसी ऊंचाई के बीच सामान्यतया पाई जाती है।

---

1. साहनी, के० सी०, जिम्नोस्पर्मस ऑव इन्डिया एण्ड एडजैसेण्ट कन्ट्रीज, (1990), बिशन सिंह महेन्द्र पाल सिंह, देहरादून

पीसिया वंश की पश्चिमी हिमालय में एक ही जाति *पी० स्मिथियाना* कुमाऊं से कश्मीर तक फैली हुई है।

जुनीपेरस वंश की भारत में 6 और पश्चिमी हिमालय में 4 जातियाँ पाई जाती हैं। ये झाड़ियों के रुप में उगती हैं। इनकी टहनियां आम तौर से मंदिरों में सुगन्धित धूप देने के लिए जलाई जाती हैं। *जु० इन्डिका* उत्तर प्रदेश व हिमाचल प्रदेश में तथा *जु० पॉलीकार्पोस व जु० रिकर्वा* कुमाऊं से लेकर जम्मू व कश्मीर तक फैली है। *जू० पॉलीकार्पस* के ऊपर *आरसिउथोवियम आक्सीसेड्री* नामक पौधा पराश्रयी होता है। यह काफी हानिकारक सिद्ध हुआ है। *जु० तुर्किस्तानिका* नामक जाति कश्मीर में नंगा पर्वत के आस-पास पाई जाती है।

क्यूप्रेस्सस वंश की भारत में चार जातियाँ पाई जाती हैं। पश्चिमी हिमालय में तीन जातियाँ यथा *क्यू० तोरुलोसा, क्यु० कश्मीरियाना* और *क्यु० सेमपरविरेन्स* कुमाऊं से जम्मू व कश्मीर तक पाई जाती हैं। *क्यू० सेमपरविरेन्स* ने भूमध्य सागरीय क्षेत्र से एशिया में प्रवेश किया और पश्चिमी हिमालय के परिवेश में भी वन्य रुप में स्थापित हो गया। इसकी पत्तियों से निकाले गये तेल में कृमिनाशक गुण विद्यमान होते हैं।

पश्चिमी हिमालय में *पाइनस* (चीड़) की तीन जातियाँ, *पा० राक्सबर्घी, पा० जेरार्डियाना* और *पा० वालिचियाना* पाई जाती हैं।

पा० जेरार्डियाना के बीज "चिलगोजा" के नाम से पौष्टिक सूखे मेवे के रुप् में व्यवहृत किये जाते हैं। इन के बीजों से निकाले गये तेल का उपयोग घावों और फोड़ों पर मलहम के रुप में होता है। इनकी लकड़ी भवन निर्माण के लिए भी उपयोगी है। *पाइनस* की अन्य जातियों से भी रेजिन प्राप्त होता है।

साहित्य के अनुसार *त्सुगा डूमोसा* भी कुमाऊं में पाया जाता है। इसकी काष्ठ इमारती लकड़ी के रुप में उपयोगी होती है।

एफिड्रेल्स गण के वंश *एफेड्रा* की भारत में पाई जाने वाली आठ में से सात जातियाँ पश्चिमी हिमालय में पाई जाती हैं। इनमें से *ए० प्रेजेल्वस्की* कश्मीर के नंगा पर्वत और लददाख की स्थानिक हैं जबकि *ए० फोलियाटा* पंजाब के मैदानी भागों में पाई जाती है। *ए० पेकिक्लाड़ा, ए० इन्टरमिडिया, ए० सैक्साटिलिस, ए० जेरार्डियाना व ए० नेब्रोडेन्सिस* उत्तर प्रदेश से लेकर जम्मू और कश्मीर तक पाई जाती हैं। *ए० जेरार्डियाना* को वनस्पति विज्ञानियों ने प्राचीन भारत के सोम पादप के रुप में माना है। "एफेड्रीन" के कारण इस जाति का महत्वपूर्ण स्थान है। यह औषधि "हे फीवर" जुकाम, श्वास रोगों और दमा में बहुत प्रभावकारी पाई गयी है।

भारत में उद्यानों की शोभा बढ़ाने के लिए भी कुछ अनावृतबीजी वंशों के पौधे लगाये जाते हैं जैसे *साइकस, गिंक्गो बाइलोबा, आउरोकेरिया, कनिंघामिया, पोडोकार्पस, अगाथिस क्रिप्टोमेरिया, थूजा, त्सुगा, लेरिक्स* इत्यादि।

गिंक्गो बाइलोबा और *पाइनस वालिचियाना* प्रदूषण रोकने में भी उपयोगी पाये गये हैं।

महेश्वरी[2] के अनुसार अनावृतबीजी पादपों का पर्यावरण के सन्तुलन में असीम योगदान है। भूमिक्षरण को रोकने के साथ ही ये वृक्ष पशु-पक्षियों को आवास और खाद्यान्न की पूर्ति करते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में इनके निर्मम विनाश ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। इनकी उपयोगिता को देखते हुए हमें इनके कटान को रोकने और नये वनों को लगाने की ओर विशेष ध्यान देना होगा।

---

2. महेश्वरी, जे० के०, हिमालयन माउन्टेन्स इकोसिस्टम, नई दिल्ली (1978)।

पश्चिमोत्तर हिमालय में एक रोचक किन्तु अल्प-ज्ञात अपुष्पी पादप समूह "लिवरवर्टस" की विविधता

देवेन्द्र कुमार सिंह

जलवायु, भौगोलिक एवं पादप जातीय विविधता के आधार पर वनस्पतिशास्त्रियों ने भारत को नौ पादपभौगोलिक प्रदेशों में विभाजित किया है। देश का पश्चिमी हिमालय क्षेत्र भी एक ऐसी ही इकाई है जो कि अपने अतुलनीय प्राकृतिक सौंदर्य, मनोरम स्थलों, तथा वानस्पतिक समृद्धता के कारण सदियों से प्रकृति-प्रेमियों, वनस्पतिज्ञों व पर्यटकों के लिए समान रुप से आकर्षण का केन्द्र रहा है। कश्मीर से हिमाचल प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की पहाड़ियों से होता हुआ नेपाल की पश्चिमी सीमा तक विस्तृत, हिमालय के अन्य क्षेत्रों की तुलना में कम वर्षा एवं आर्दता वाला यह भूखण्ड एक ओर भारत तथा दूसरी ओर पश्चिम व मध्य एशिया, मध्यपूर्व, यूरेशिया तथा भूमध्य सागरीय देशों की वनस्पतियों के बीच एक कड़ी स्थापित करता है। वर्तमान ज्ञान के अनुसार देश की लिवरवर्ट समेत अनेक पादप प्रभागों की लगभग एक तिहाई जातियाँ यहाँ पाई जाती हैं।

लेटिन के शब्द "हिपैटिका" अर्थात यकृत से व्युत्पत्त यह पादप समूह हरितोद्भिद (ब्रायोफाइटा) प्रभाग के एक वर्ग हिपैटिकी का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार वैसे तो हम इस समूह के अंतर्गत थैलसाभ रचनाओं वाले पौधों की कल्पना करते हैं पर यथार्थ में इनकी 85 प्रतिशत से अधिक जातियां "तना" व "पर्णधारी" होती हैं। यद्यपि ये सभी जातियाँ समूहशील प्रकृति की होती हैं तथापि अपने लघु आकार के कारण ये बहुधा वनस्पतियों में गौण सदस्यों की भांति पायी जाती हैं तथा प्रकृति में अक्सर नग्न आंखों को चकमा दे जाती हैं। साधारणतया आर्थिक अनुपयोगिता के साथ ही इनकी यह विशेषता ही इनके अल्प परिचित होने का प्रमुख कारण है। ये अधिकतर स्थलीय अथवा अधिपादपीय तथा कभी-कभी अधिपर्णी भी होते हैं। समूचे भारत देश में पायी जाने वाली लगभग 843 जातियों व प्रजातियों में से अनुमानतः 250 पश्चिमोत्तर हिमालय क्षेत्र में पायी जाती हैं। यह विश्व भर से ज्ञात इनकी जातियों का मात्र तीन प्रतिशत है। पर इस प्रदेश के बहुत से क्षेत्र इस समुदाय के अध्ययन की दृष्टि से अभी भी अछूते होने के कारण ये आंकडें यथार्थ से परे है। विज्ञान जगत अथवा देश की वनस्पति जाति के लिए इस क्षेत्र से आये दिन नई खोज इस तथ्य को भरपूर उजागर करती है।

पश्चिमी हिमालय में लिवरवर्टस की अधिकतम प्रचुरता व विविधता समुद्र तल से 2000-2800 मी० की उंचाई के क्षेत्रों में पायी जाती है। इस प्रदेश में इनके वितरण का एक रोचक पक्ष यह है कि तलहटी से 3000 मी० तक की उंचाई तक इनकी प्रचुरता व विविधता में निरन्तर वृद्धि होती है। पर इसके ऊपर इनमें शनैः शनैः कमी आती जाती है। इसी प्रकार समुद्र तल से एक निर्दिष्ट ऊंचाई पर पूर्व से पश्चिम की ओर इनकी संख्या में क्रमशः कमी होती जाती है।

आवृतबीजी (एन्जियोस्पर्मस) पौधों के समान ही लिवरवर्टस भी इस क्षेत्र में ऊंचाई के आधार पर अनुक्षेत्रीय वर्गीकरण दशति हैं। तुंगता, वर्षा, आर्दता एवं जातीय संघटन के आधार पर इन्हें भी उष्णकटिबंधीय, समशीतोष्ण तथा हिमाद्रि (अलपाइन) श्रेणी में संवर्गित किया जा सकता है।

उष्ण कटिबंधीय-उपोष्ण कटिबंधीय लिवरवर्टस :

पश्चिमोत्तर हिमालय में लिवरवर्टस की यह वनस्पति-जात समुद्रतल से लगभग 1500 मी0 की ऊंचाई तक पायी जाती है। अपेक्षाकृत अधिक तापमान व निम्न आर्दता वाले स्थानों में साधारणतया इनकी स्थलीय जातियाँ ही पायी जाती हैं। इनमें *एस्टरेल्ला ब्लूमियाना, ए0 पठानकोटेन्सिस, एन्युरा इन्डिका, सायथोडियम केवरनेरम, मानिया इन्डिका, मार्केशिआ नेपलेन्सिस, मा0 पामेटा, प्लेजियोकाज्मा अप्पेण्डिकुलेटम, फासम्ब्रोनिया हिमालयसिस,* आदि तथा *रिक्सिआ, जंगरमैनिआ* वंश की अनेक जातियां प्रमुख हैं। साथ ही रेडुलेसी, पोरेलेसी, जुबुलेसी, आदि कुलों की कुछ अधिपादपीय जातियां भी इन स्थानों में पायी जाती हैं। इसी अनुक्षेत्र के अपेक्षाकृत ठंडें स्थानों पर *फेयोसिरास लीविस* उपजा0 *लीविस, प्लेजियोकाज्मा इन्डिका, पिटेलोफिल्लम इन्डिकम, जेम्सोनिएला एलांगेला,* आदि स्थलीय तथा रेडुलेसी, लिजज्युनिएसी आदि कुलों की अधिपादपीय जातियां प्रमुख हैं।

समशीतोष्ण लीवरवर्टस :

लिवरवर्टस की इस वनस्पति-जात का विस्तार 1500-3000 मी0 की ऊंचाई तक पाया जाता है। लिवरवर्टस की प्रचुरता एवं विविधता के दृष्टिकोण से यह सबसे अधिक समृद्ध अनुक्षेत्र है। यहाँ पर पाई जाने वाली *एन्थोसिरास एरेक्टस, ए0 भारद्वाजिई, फेयोसिरास हिमालयंसिस, फे0 लीविस उपजा0 कैरोलिनियानस, नोटोथायलस हिमालयंसिस, एन्युरा पिंग्विस, पेलिया एपिफिल्ला, कैलिकुल्लेरिआ क्रिस्पुला, राईकार्डिया, ब्लेजिआ पुसिला, एपोमेट्जीरिआ प्युबेसेंस, मेट्जीरिआ, लोफोकोलिआ बाईडेन्टेटा, सिफेलोजिआ गोलेनाई, जंगरमैनिया, मार्केशिआ पालिमार्फा, मा0 पामेटा, डयुमार्टिएरा हिर्सुटा, क्रिप्टोमिट्रिअम हिमालयंसि, रिबौलिआ हेमिस्फेरिका, प्लेजियोकाज्मा आर्टिकुलेटम, सायथोडियम इन्डिकम, सा0 ट्यूबरांसम, टार्जियोनिया हाईपोफिल्ला, एथेलेमिआ,* आदि स्थलीय तथा *फ्रूलेनिया, लेपिडोजिआ, बजानिआ, पोरेला, प्लेजियोकाइला, रेडुला* आदि वंश की अनेक अधिपादपीय जातियां प्रमुख हैं।

हिमाद्रि (अलपाइन) लिवरवर्टस :

यह वनस्पति-जात सामान्यतः समुद्रतल से 3000-5000 मी0 की ऊंचाई वाले क्षेत्र में पाई जाती है। इस अनुक्षेत्र की प्रमुख स्थलीय लिवरवर्ट जातियाँ इस प्रकार हैं: *एन्थोसिरास अलपाइनस, प्रेशिया क्वाड्रेटा, एस्टरेला रेटिकुलेटा, ए0 इन्डिका, रिबौलिआ हेमिस्फेरिका, एथेलेमिआ पुसिला, साउटीरिआ अलपाइना, सा0 स्पांजियोसा, मानिआ डाइकोटमा, मा0 पर्सोनाई, एन्थेलिआ जुलेशिआ, लोफोजिआ अल्पेस्ट्रिस, लो0 इंसाइजा, हैप्लोमिट्रिअम हुकेरी, जियोकेलिक्स ग्रेवियोलेंस,* आदि। जबकि *ब्लिफेरोस्टोमा ट्राइकोफिल्लम, पोरेला अपेण्डिकुलेटा, पो0 प्लेटिफिल्ला, पो0 ग्रेसिल्लिमा, रेडुला लिण्डबार्जियाना, रे0 आरिकुलेटा,* आदि यहाँ की मुख्य अधिपादपीय जातियाँ हैं।

पश्चिमी हिमालय के विस्तार व यहाँ पर सुलभ विभिन्न आवासीय परिस्थितियों का यहाँ के लिवरवर्टस की पादपजातीय विविधता में महत्वपूर्ण योगदान है। यह क्षेत्र तीन रोचक, स्थानिक व एकलप्ररुपी वंश, यथा *सीवर्डिएला, ऐचिसोनिएला, स्टिफैसोनिएला* तथा एक स्थानिक कुल ऐचिसोनिएलेसी की महत्वपूर्ण उपस्थिति से अभिलक्षणित है। भारत से ज्ञात इस पादप समूह के 53 कुलों में से 40 इस क्षेत्र में पाये जाते हैं। इसमें से जहाँ अर्नोलिएसी, एचिसोनिएलेसी तथा वीज्नेरेलेसी जैसे कुल भारत में केवल इसी क्षेत्र में मिलते हैं वहीं 35 पूर्वी हिमालय क्षेत्र, 14 पंजाब व पश्चिमी राजस्थान, 8 गांगीया, मैदान, 20 मध्य भारत, 25 पश्चिमी घाट, 10 पूर्वी घाट व दक्खिन के पठार एवं 10 अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह के पादपभौगोलिक क्षेत्रों में भी पाये जाते हैं। ऐचिसोनिएलेसी के अतिरिक्त इस क्षेत्र में पाये जाने वाले अन्य एकलप्ररुपी कुल डेलावयलेसी व ब्लेजिएसी हैं, जबकि पाँच अन्य कुल, जैसे एन्थेलिएसी, रेडुलेसी, टाईलिडिएसी, कोनोसिफेलेसी व नोटोथायलेसी एक वंशीय है।

इसी प्रकार अपने देश में पाई जाने वाली लिवरवर्टस की लगभग 175 स्थानिक जातियों में से 46 (लगभग 26 प्रतिशत) पश्चिमोत्तर हिमालय क्षेत्र में पाई जाती हैं। इनमें से 24, अर्थात 50 प्रतिशत से भी अधिक, जातियां, यथा *सिफेलोजिआ उदारिई, नोवेलिआ इन्डिका, सिफेलोजिएला मैग्ना, रेडुला ग्रेन्डिफोलिआ, जुबुला, हिमालयंसिस, फ्रुलेनिआ सबक्लेवेटा, फासम्ब्रोनिया कश्यपिई, सीवर्डिएला ट्यूबेरिफेरा, गाईकार्डिया पर्सोनिई, ऐचिसोनिएला हिमालंयसिस, सायथोडियम इन्डिकम, एथेलेमिआ पिग्विस, ए0 पुसिला, एस्टरेला रेटिकुलेटा, क्रिप्टोमिट्रिअम हिमालयंसि, मानिआ फोरियुई, मा0 पर्सोनिई, प्लेजिओंकाज्मा पौड़ियाना, स्टिफैसोनिएला ब्रेविपेडन्कुलेटा मार्केशिआ कश्यपिई, रिक्सिआ पाण्डेई, फेयोसिरास कश्यपिई, एन्थोसिरास अलपाइनस, फोलिओसिरास इन्डिकस,* केवल इसी क्षेत्र में सीमित हैं जबकि शेष जातियों में से 13 जातियां पूर्वी हिमालय, 6 पंजाब व पश्चिमी राजस्थान, 2 गांगीय मैदान, 9 पश्चिमी घाट एवं 1 पूर्वी घाट व दक्खिन के पठार के पादपभौगोलिक क्षेत्रों में पाई जाती हैं।

इस प्रदेश में बहुलता से पाई जाने वाली ये स्थानिक जातिया भारतीय लिवरवर्टस के देशज स्वभाव को परिलक्षित करती हैं। दूसरी ओर इस क्षेत्र में पाई जाने वाली उत्तर ध्रुवीय (आर्कटिक) (*प्रेशिआ क्वाड्रेटा, साउटीरिया अलपाइना, सा0 स्पांजिओसा एन्चुरा पिंग्विस, एपोमेट्जीग्रिआ प्यूबेसेंस,*) द्विध्रुवीय, (बाइपोलर) (*ब्लिफेरोस्टोमा*), पूर्वी एशियाई (*डेलावयेला सिर्रेटा, पोरेला डेन्सिफोलिआ, स्केपेनिआ*), परिउत्तरीय (परिबोरियल) (*लेपिडोजिया रेप्टेंस, बजानिया ट्राडक्रिनेटा, कोनोसफैलम कोनिकम, जियोकेलिक्स ग्रेविओलेंस, लांफोजिआ इंसाइजा, टाईलिडियम*), अखिल उष्णकटिबंधीय (*कैलिकुलेरिआ क्रिस्पुला, नोटोथायलस*), पुराउष्णकटिबंधीय (*फ्रुलेनिआ स्कवेरोजा, सायथोडियम, टाइकेन्थस स्ट्रिएटस*), सर्वव्यापी (*डयूमार्टिएरा हिर्सुटा, लोफोकोलिआ बाईडेण्टेटा, मार्केशिआ पालिमार्फा, रिबौलिआ हेमिस्फेरिका, रिक्सिआ फ्लुइटेंस, रिक्सिओकार्पस नेटेंस, टार्जियोनिआ हाइपोफिल्ला*), आदि जातियां इनकी विविधिता तथा अन्य क्षेत्रों से पादपीय घनिष्टता की द्योतक हैं। साथ ही यहाँ पाई जाने वाली कुछ जातियाँ, जैसे *हैप्लोमिट्रिअम हुकेरी, एन्थेलिआ जुलेशिआ, जेम्सोनिएला एलांगेला, जे0 निप्पानिका, हेटेरोस्काइफस आर्गुटस, लोफोकोलिआ माइनर, जिम्नोमिट्रियान कांसिन्नेटम, फ्रुलेनिआ ग्रेसिल्लिमा, सायथोडियअम केवरनेरम, वीज्नरेला डेन्युडेटा, रिक्सिआ हिर्ता, नोटोथायलस लीवियरी, एन्थोसीरास अंगस्टस, ए0 क्रिस्पुलस,* आदि अपने पार

महाद्वीपीय, पारमहासागरीय अथवा दोनो ही तरह के वियोजित वितरण के कारण पादपभौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

पश्चिमोत्तर हिमालय क्षेत्र रिबौलिएसी कुल का उद्भव केन्द्र भी माना जाता है, जो कि अपने मरुगर्भोद्भिद (जीरोज्योफिटिक) स्वभाव के कारण इस प्रदेश में 1600 से 2300 मी0 की ऊंचाई पर नितांत प्रचुर हैं। इस क्षेत्र से संबधित एक अन्य रोचक तथ्य यह भी है कि भारत में पाई जाने वाली रिक्सिएस्सी कुल की 33 जातियों में से 17 यहाँ उगती हैं।

यद्यपि लिवरवर्टस ने विभिन्न जलवायु एवं आवासीय परिस्थितियों के अनुकूल अपने आप को असाधारण रुप से रुपान्तरित किया है, तथापि अनेक जीवीय अथवा जैविक कारणों से इनके प्राकृतिक आवास में होने वाली उथल पुथल ने इनकी अनेक जातियों को आज दुर्लभ, संकटग्रस्त या सुभेद्य बना दिया है। *ऐचिसोनिएला हिमालयंसिस, एन्थेलिआ जुलेशिया, ब्लिफेरोस्टोमा ट्राइकोफिल्लम, डेलावयेला सिरेटा, जियोकैलिक्स ग्रेवियोलेंस, हैप्लोमिट्रिअम हुकेरी, प्ल्यूरोजिआ परपूरिया, टाइलिडियम सिलिएयर, सीवर्डिएला ट्यूबेरीफेरा, पिटैलोफिलम इन्डिकम, सिफैलोजिआ उदारिई, नोवेलिआ इन्डिका, पोरेला हटटोरिई, फासमब्रोनिआ कश्यपिई, थेलेमिया पिग्विस, ए0 पुसिला, एक्जार्मोथीका ट्यूबेरीफेरा, स्टिफेसोनिएला ब्रेविपेडंकुलेटा, फेयोसिरास कश्यपिई, फोलिओसिरास इन्डिकम, एन्थोसिरास अलपाइनस,* आदि कुछ जातियां आज इस क्षेत्र में दुर्लभ या संकटग्रस्त है। इनमें से कुछ को तो दुबारा संग्रहित ही नहीं किया जा सका है। अतः इनके सरंक्षण की उचित व्यवस्था एक सामयिक आवश्यकता के साथ साथ हमारा नैतिक दायित्व भी है। पर दुर्भाग्य तो यह है कि देश का आम नागरिक, चाहे वह वैज्ञानिक हो अथवा प्रकृतिविद् या पर्यावरण सरंक्षण से जुड़े किसी सरकारी अथवा गैरसरकारी संस्थान से संलग्न वनस्पतिविद् अथवा उच्चाधिकारी, आज भी इस समूह की दुर्दशा से पूर्णतः अनजान है। इसका प्रमुख कारण है देश में इस समुदाय के प्रति उचित लोकप्रियता का अभाव। अतः इनके प्रभावी सरंक्षण की दिशा में पहला कदम देश की युवा पीढ़ी व आम वैज्ञानिकों में इनके प्रति रुचि व जानकारी पैदा करना होगा, जो विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं, विश्वविद्यालयों आदि के पाठ्यक्रम में इसके उचित एवं विवेकपूर्ण प्रतिनिधित्व द्वारा सहज ही कार्यान्वित किया जा सकता है।

वर्तमान में इस प्रदेश में स्थित विभिन्न संरक्षित क्षेत्रों (अभयारण्य, राष्ट्रीय उद्यान व जैवमण्डलीय सुरक्षित क्षेत्र) में पाई जाने वाली स्थानिक, दुर्लभ अथवा संकटग्रस्त जातियाँ "यथास्थान" स्वतः ही संरक्षित है, पर अन्यत्र पाई जाने वाली ऐसी जातियों का रक्षण केवल "विस्थापित संरक्षण" (एक्स सिटु) विधि से ही सम्भव है। इसके लिए इस क्षेत्र के विभिन्न "इकोक्लाइमेटिक" अनुक्षेत्रों में, जापान तथा हाल ही में कुमाऊं विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग द्वारा सफलतापूर्वक विकसित किये गये "मॉस उद्यान" की पद्धति पर जगह जगह उद्यान विकसित किये जाने चाहिये जहाँ पर ऐसी जातियों का संरक्षण हेतु प्रवेशन किया जा सके। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण का उत्तरी परिमण्डल अपने पौड़ी व खिर्सू स्थित प्रायोगिक उद्यानों के विभिन्न अनुभागों में ऐसे स्थान सरलता से विकसित कर सकता है। इसके अतिरिक्त जैविक रुप से क्षीण जातियों, जैसे, *सीवर्डिएला ट्यूबेरीफेरा* तथा *स्टिफेसोनिएला ब्रेविपेडंकुलेटा* (जिनके बीजाणुउद्भिद् यद्यपि प्रचुर मात्रा में बीजाणुओं का उत्पादन करते हैं पर ये बीजाणु न तो प्राकृतिक अवस्था में उगते हैं न ही कृतिम अवस्था में) का सरंक्षण उतक सवर्धन विधि द्वारा किया जा सकता है। इस प्रकार हम इस अल्प ज्ञात राष्ट्रीय धरोहर का सफलता पूर्वक अधिकाधिक संरक्षण कर सकेंगे।

पश्चिमी हिमालय के "काष्ठ को विगलित" करने वाले कवक (अफिल्लोफोरेल्स) व उनकी विविधता

जय राम शर्मा

अपुष्पी पौधों का एक बड़ा भाग कवकों के अतंर्गत आता है। ये अधिकतर परजीवी व मृतजीवी होते हैं। ये कवक तन्तुओं (हाइफे) से बने होते हैं जो कुल मिलाकर कवक जाल (माइसीलियम) कहलाते हैं। संसार में कवकों के पाँच हजार से अधिक वंश व एक लाख बीस हजार से अधिक जातियाँ हैं, (स्टेस[1], प्रांस[2]) जिनमें से लगभग दो हजार दो सौ एकलप्ररुपी (मोनाटिपिक) हैं। भारतवर्ष में कवकों के लगभग दो हजार तीन सौ वंश व तेरह हजार जातियाँ हैं। इनमें से आठ सौ वंश एकलप्ररुपी तथा लगभग तीन हजार जातियां भारत की स्थानिक हैं (शर्मा[3])।

कवकों की श्रेणियों में बेसिडियोमाइसीट्स एक बड़ी श्रेणी है जो कि संसार भर में पाई जाती है। संसार में इसके आठ सौ वंश (250 एकलप्ररुपी) तथा अट्ठारह हजार जातियाँ हैं। भारतवर्ष में इस श्रेणी के लगभग 500 वंश (140 एकलप्ररुपी) तथा लगभग तीन हजार दो सौ जातियाँ हैं जिनमें से 450 भारत की स्थानिक हैं।

कवकों की इस श्रेणी में खाये जाने वाले छत्रक कवक (मशरुम), विषैले कवक (टोडस्टूल्स) पूतिकवक (स्टिन्कहार्नस), जैली कवक (जैलीफंजाई), फूत्कार कवक (पफबाल्स), किट्ट कवक (रस्टस), कण्ड कवक (स्मट्स), तथा काष्ठ को विगलित (वुडरोटिंग फंजाई) करने वाले कवक आते हैं। काष्ठ को विगलित करने वाले कवकों से हमारा तात्पर्य उन कवकों से है जो प्रकिण्वों की प्रतिक्रिया के फलस्वरुप लकड़ी से अपना भोजन ग्रहण करने की क्षमता रखते हैं। इनका कवक-जाल लकड़ी के अन्दर फैला होता है तथा उचित समय व मौसम आने पर इनकी फलकाय (फ्रुटिंग बॉडी) लकड़ी पर उभरकर आ जाती है। इस प्रकार के कवकों को अलग ही गण में रखा गया है जिसे अफिल्लोफोरेल्स कहते हैं। इस गण के कवक संसार भर में पाये जाते हैं। पश्चिमी हिमालय में इनके लगभग 250 वंश (50 एकलप्ररुपी) व 800 जातियाँ हैं जिनमें से 5 वंश तथा लगभग पचास जातियाँ पश्चिमी हिमालय की स्थानिक हैं।

विभिन्न प्रकार की जलवायु, अधिक वर्षा व भौगोलिक परिस्थितियों के कारण पश्चिमी हिमालय में वनस्पतीय विविधता पाई जाती है जो कि इन कवकों के लिए उपयुक्त होती है। उदाहरणतया दो

---

1. स्टेस, सी० ए० : प्लांट टैक्सोनोमी एण्ड बायोसिस्टेमेटिक्स, एडवर्ड आरनोल्ड, 279, (1984)
2. प्रास, जी० टी० : फलोरीस्टिक इन्वेन्टरी आफ द ट्रोपिक्स-ब्येहर इ वी स्टैण्ड, एनल्स, मिस्सौरी बौटानिक गार्डन **64:** 659-684 (1978)
3. शर्मा, जे० आर० बायोडाईवर्सिटी इन इन्डियन फजाई एण्ड दियर कन्जरवैशन (1993)

हजार मीटर तक की ऊंचाई में पाए जाने वाले उष्णकटिबन्धीय वनों में मुख्यत *अकेसिया अरेबिका, अ0 मांडेस्टा, फ्लैकोरशिया इन्डिका, बाउहीनिया रैसीमोसा* इत्यादि के पेड़ प्रमुख हैं। दो हजार से तीन हजार मीटर तक की उंचाई में पाए जाने वाले शीतोष्ण वनों में *कुएरकस इन्काना, कु0 डायलाटाटा, पाइनस एक्सेल्सा, सैड्रस देवदारा, एस्कुलस इन्डिका* इत्यादि के पेड़ प्रमुख हैं। उच्चपर्वतीय वनों में (तीन हजार मीटर की उंचाई से ऊपर) *बेटुला यूटिलिस, रहोडोडेन्ड्रोन* (बुरांश) तथा *ज्यूनीपेरस* की जातियां प्रमुख हैं। इस लेख में पश्चिमी हिमालय के इन वनों में पाए जाने वाले अफिल्लोफोरेल्स की पारिस्थितिकी वितरण, परपोषी विशिष्टता व उनसे होने वाली हानि के विषय में चर्चा की गई है।

काष्ठ विगलनः काष्ठ मुख्यत लिगनिन, सैल्युलोज व हैमीसैल्यूलोज से बनी होती है। अनावृतबीजी (जिमनोस्पर्म) पौधों की लकड़ी में आवृतबीजी (एन्जिओस्पर्म) पौधों की तुलना में अधिक लिगनिन होता है। लकड़ी को ये कवक किस प्रकार के प्रकिण्व का प्रयोग व कैसी हानि पहुँचाते है, के आधार पर इन कवकों को दो भागों में बाटा गया है। 1. बभु विगलनकारी कवक (ब्राउन रोट फंजाई) तथा श्वेत विगलनकारी कवक (व्हाइट रोट फंजाई)। श्वेत विगलनकारी कवक सैल्यूलेज व लिगनेज प्रकिण्वों की प्रतिक्रिया से लकड़ी के सभी अवयवों को नष्ट कर देते हैं जबकि बभुविगलनकारी कवक केवल सैल्युलोज व हैमीकैल्यूलोज को ही प्रभावित करते हैं। श्वेत विगलनकारी कवकों से प्रभावित काष्ठ की शक्ति समाप्त हो जाती है तथा यह स्पंज जैसी एवं पीली पड़ जाती है। लकड़ी को हानि अधिकतर (90%) श्वेतविगलनकारी कवकों से ही होती है। दोनों ही प्रकार के कवक जब अन्तः काष्ठ (हार्टबुड) को प्रभावित करते हैं तो पेड़ों को अधिक नुकसान पहुँचता है।

विविधताः अफिल्लोफोरेल्स गण को हाईमेनियम घर (हाइमीनोफोर) के प्रकार को देखते हुए प्रमुख तौर से चार भागों में बांटा जा स्कता है। पहली श्रेणी में वे कवक आते है जिनका हाइमेनियम घर चिकना होता है। इन्हें थैलीफोरस कहते हैं तथा ये सबसे प्राचीन माने जाते हैं। संसार भर में इनकी एक हजार दो सौ जातियां हैं जबकि पश्चिमी हिमालय में इनके लगभग 100 से अधिक वंश (10 एकलप्ररुपी) व लगभग दो सौ पचास जातियाँ हैं जिनको कि कौर्टिसिएसी थैलीफोरेसी, स्टीरिएसी इत्यादि कुलों में बांटा गया है। इन्क्रस्टी जातियाँ अधिकतर (75%) विपर्यस्त (रिसूपीनेट) प्रकृति की होती है तथा उष्ण, शीतोष्ण व उच्चपर्वतीय जंगलों की लकड़ी पर पाई जाती हैं। *टोमेन्टेल्ला* नामक वंश इसी क्षेत्र का एक बड़ा वंश है जिसकी संसार भर में एक सौ पचास व पश्चिमी हिमालय में बीस से अधिक जातियाँ हैं। इस की साधारणतया पाई जाने वाली जातियां *टो0 रुबीजिनोसा, टो0 फिलोसा* तथा *टो0 एपीफिल्ला* हैं तथा वे श्वेत विगलन की कारक होती हैं। *फैनेरोचीट* की भी लगभग आठ जातियां पीले व नारंगी रगों में पाई जाती हैं तथा इनमें *फै0 फिलैमेनटोजा व फै0 जाइगैन्टिया* मुख्यता शंकुधारी पेड़ों पर श्वेत विगलन पैदा करती हैं। इसी तरह *एमफीनीमा बिसूवायडीस* शंकुधारी जंगलों के ह्यूमस पर व *हाईफोडरमा प्यूवेरा* तथा *फलैवीया अलवीडा* शंकुधारी जंगलों में लकड़ी पर प्राय देखने को मिलती है। *अल्यूरोडिस्कस टैक्सिकोला* (*टैक्सस बक्काटा* के पेड़ों पर) तथा *अ0 ओकेसी* (बान्ज के पेड़ों पर) शीतोष्ण वनों में पूर्ण पराश्रयी होती हैं। *पीनिओफोरा* वंश जो कि नीला, लाल, भूरा व राख के रंगों का होता है, की जातियाँ *पी0 साइनेरिया* तथा *पी0 कुएरसीना* आवृतबीजी पेड़ों की छालों पर उगती हैं व ऐसा आभास देती हैं मानों शाखाओं को रंग दिया गया हो। *कोनिओफोरा* वंश की लगभग छः जातियों में से *को0 बेटुले* तथा *को0 ऐरिडा* नामक जातियां उच्च

पर्वतीय वनों में ही भोजपत्र, बलूत एबीज व बुरांश के पेड़ों पर ही उगती व उन्हें हानि पहुंचाती हैं। *सेरपुला लैक्रीमान्स* एक ऐसी जाति है जो कि भवनों में लगी हुई शंकुधारी वृक्षों की लकड़ी को अत्यधिक हानि पहुंचाती है। इसका हाईमोनियम घर बलित (फोल्डिड) प्रकार का होने से ये अपनी पहचान अलग बना लेती है। *सटीरियम गौसीपेटस* (बान्ज के पेडों पर), *स0 हिर्सूटम* तथा *स0 सैनगूईनौलैन्टम* (शंकुधारी पेड़ों पर) पराश्रयी होते हैं। रस स्त्रावी हाइमेनियम घर के कारण ये आसानी से पहचानी जाती हैं। *कोन्ड्रोस्टिरियम परपयुरियम* पश्चिमी हिमालय में पाए जाने वाले सेब तथा अन्य फलों के वृक्षों की पत्तियों को हानि पहुंचाता है। इसी समूह की एक जाति (*स्प्रैसिस क्रिस्पा*) जिसे लकड़ी पर उगने वाली गोभी कहा जाता है, को हिमालय की जनजातियां बड़े चाव से खाती हैं। कुछ ऐसी जातियां जैसे कि *लोफेरिया सइनेरीसेन्स, लो0 क्रास्सा, लैक्सीटैक्सटम बाईकलर* पश्चिमी हिमालय में उष्ण वनों से लेकर उच्चपर्वतीय वनों तक पाई जाती है। *हाईमिनोकीट* वंश की जातियाँ (लगभग बारह) गहरे भूरे रंग की होती हैं व प्रायः आवृतबीजी पेडों की लकड़ी को श्वेत विगलन द्वारा नष्ट कर देती हैं। इस वंश की प्रायः पाई जाने वाली जाति का नाम *हा0 रुबीजीनोसा* है। इसी तरह *अमाईलोसटीरियम चैलेटाई* नामक जाति भी पश्चिमी हिमालय में दूर-दूर तक फैली हुई है व इससे एक चौथाई वृक्ष ग्रस्त हैं। यह भी श्वेत विगलन की कारक है तथा प्रायः अन्तः काष्ठ को नष्ट करती है। इस समूह के कुछ विरल वंश जो इस क्षेत्र में पाये जाते हैं वे *बेसीडियोरेडुलम, रेडुलोमाइसिस, रैडुलोडौन, इर्पीसीपोरस, जिनाजमा, टुबूलीक्राइनस* इत्यादि हैं।

अफिल्लोफोरेल्स गण के कवकों का दूसरा मुख्य समूह उन कवकों का है जिनकी फलकाय का हाईमेनियम घर दांतदार होता है। इनको हम हिडनेसियस फंजाई कहते हैं। इनके पश्चिमी हिमालय में लगभग 10 वंश व चालीस जातियाँ (10 जातियां स्थानिक) हैं। सबसे बड़ा वंश है *हिडनम* तथा इस की पन्द्रह जातियाँ इस क्षेत्र के शीतोष्ण वनों में पाई जाती हैं। *आउरीस्कालपियम बुलगेर* नामक जाति मनुष्य के गुर्दे के आकार की होती है तथा शंकुधारी पेडों के शंकुओं पर ही उगती है। *हेरिसियम रिपैन्डम* व *है0 कोरेलोईडस* पर्णपाती वृक्षों पर पराश्रयी होती हैं तथा देखने में बहुत सुन्दर लगती हैं। इनके दांत छः से आठ सेन्टीमीटर तक लंबे होते हैं। इस समूह की कुछ अन्य जातियाँ जो प्रायः लकड़ी पर उगती हैं वे *हिडनम रिपैन्डम* (खाई जाने वाली तथा मांसल व नांरगी रंग की), *हैरिसयम ईरीनेसियम* (खाई जाने वाली व सफेद रंग की पराश्रयी जाति), *सारकोडोन स्क्रेबोसस* (हल्के पीले व ईंट के रंग की), *सा0 जापोनिकम* (पीले रंग की लकडीनुमा), *हाइफोडोन्सिया आर्गुटा* तथा *हा0 स्पेथुलाटा* (दोनों हीं नांरगी रंग की पराश्रयी) इत्यादि हैं।

इस गण के कवकों के तीसरे समूह में वे कवक आते हैं जिनकी फलकाय प्रवाल या मूंगे की तरह दिखाई देती है तथा इन्हें प्रवाल कवक (*कोरल फंजाई*) कहते हैं। प्रवाल कवकों के पन्द्रह से जयादा वंश तथा लगभग साठ जातियां पश्चिमी हिमालय में पाई जाती हैं जिनमें से *क्लेवेरिया, क्लैवुलाईना* तथा *रामेरिया* के वंशों की जातियाँ प्रमुख हैं। इनकी कुछ जातियां जैसे कि *रामेरिया एपीकुलेटा, रा0 आउरिया, क्लैवेरिया वरमीकुलैरिस* इत्यादि को पश्चिमी हिमालय की जनजातियाँ भोजन के रुप में प्रयोग करती हैं। *टाईफूला ओवाटा* जिसकी फलकाय, गदाकार, पीले रंग की होती है प्रायः उष्ण वनों में लकड़ी पर उगती है। कुछ अन्य जातियां जो कि मुख्यता शीतोष्ण वनों में पाई जाती हैं उनमें से *रामेरिया स्ट्रिक्टा, क्लैवुलाईना क्रिस्टाटा, क्लै0 साईनेरिया* तथा *क्लैवेरिया स्ट्रिक्टा* इत्यादि हैं।

अफिल्लोफोरेल्स गण के कवकों का अन्तिम समूह जो पश्चिम हिमालय के सभी प्रकार के जंगलों में साधारणतया पाया जाता है बहुरन्ध्रीय (पोलीपोरस) कहलाता है। इन के पश्चिमी हिमालय में लगभग 80 वंश (15 एकलप्ररुपी) तथा तीन सौ पचास के लगभग जातियाँ पाई जाती हैं। इनके पादप भौगोलिक वितरण, विविधता तथा इनसे पहुंचने वाली हानि को अच्छी तरह से समझने के लिए इनको हम निम्नलिखित दो भागों में बांट सकते हैं।

अ. वे कवक जो कि भूरे रंग के होते हैं तथा जिनकी फलकाय पोटाशियम हाइड्रोक्साइड के घोल में काली हो जाती है। ये कवक अधिकतर आवृतबीजी पेड़ों की लकड़ी पर पाये जाते हैं और श्वेत विगलन के कारक होते हैं। ये हाइमिनोकीटेसी कुल के अंतर्गत आते हैं।

ब. वे कवक जो कि सफेद, हल्के पीले व लाल रंग के होते हैं तथा जिनकी फलकाय पोटाशियम हाइड्रोक्साइड के घोल में काली नहीं होती है। ये कवक अधिकतर अनावृतबीजी पेड़ों की लकड़ी पर होते हैं और श्वेत व बभू विगलन के कारक होते हैं। ये पॉलीपोरेसी कुल के सदस्य हैं।

अ. इस समूह के कवकों के सबसे बड़े वंश का नाम *फैलाइनस* है। इस वंश की सारे संसार में दो सौ से भी अधिक जातियाँ हैं। भारतवर्ष में इसकी पचपन जातियाँ में से लगभग चालीस जातियाँ पश्चिमी हिमालय में ही पाई जाती हैं। इस की उष्ण बनों में प्राय: पायी जाने वाली जातियां *फै0 एडामैन्टीनस, फै0 बेडीयस* (खैर के पेडों पर पराश्रयी), *फै0 राईमोसस, फै0 फास्चुओसस* (साल पर पराश्रयी) व *फै0 सीनेक्स* (तुन पर पराश्रयी) हैं। *फै0 पैचीफलोइअस* सबसे अधिक हानिकारक व विशेषतया आम तथा अंजीर जाति के पेड़ों को सबसे ज्यादा हानि पहुंचाने वाला कवक है। यह माप में आधा मीटर लम्बा व उतना ही चौड़ा होता है। *फै0 नौक्सीयस* चाय व काफी के पेड़ों को नष्ट कर देता है। इसी वंश की कुछ जातियाँ ऐसी हैं जो कि केवल शीतोष्ण वनों के पेड़ों, पर ही पाई जाती है। इनमें से *फै0 अर्लाडाई, फै0 जीरेन्टीकस* मृत व जीवित बान्ज पर, *फै0 पीनाई* चीड़ पर, *फै0 रोबसटस,* बलूत के पेड़ो पर तथा *फै0 एगनेरियस* अनेक जाति के पेड़ों पर पराश्रयी होती हैं। इन्ही जंगलों में इस वंश की कुछ दिलचस्प व विरल जातियाँ *फै0 सैनफोरडाई, फै0 लिन्टीयस, फै0 एक्सटैसंस* हैं। कुछ जातियां जैसे कि *फै0 लेवीगाटस, व फै0 निग्रिकान्स,* केवल भोजपत्र के पेडों पर ही उगती हैं तथा उन्हें नष्ट कर देती हैं। *फै0 एकोनटैक्सटस* एक विरल जाति है जो कि पश्चिमी हिमालय की स्थानिक है तथा बुरांश के पेड़ो पर ही पाई जाती है।

इन्नोटस भी एक बड़ा व दिलचस्प वंश है जिसकी भारतवर्ष में पाई जाने वाली लगभग 20 जातियों में से 18 जातियाँ पश्चिमी हिमालय के शीतोष्ण व उच्च पर्वतीय जंगलों में पाई जाती हैं। ये जातियाँ बांज व भोजपत्र के पेड़ो को ज्यादा प्रभावित करती हैं। *इ0 ड्राएडीअस* नामक जाति को तो जगंलों में रोने वाला कवक कहा जाता है क्योंकि इससे आंसुओं की तरह बूंदे टपकती रहती है। *इ0 साईयूरीनस* नामक जाति जो कि अब तक जापान की स्थानिक थी, अब पश्चिमी हिमालय के शीतोष्ण बनों में खोज ली गई है। *इ0 टोमेन्टोस्स, व इ0 सर्सीनेटस* तो पूरी तरह से चीड़ के पेड़ो पर पराश्रयी होती हैं। *इ0 डाइवर्टीकुलोमिटा* एक विरल तथा पश्चिमी हिमालय का स्थानिक कवक है। इस समूह की कुछ अन्य हानिकारक जातियाँ जो कि पश्चिमी हिमालय के पेड़ों पर साधारणत: पाई जाती हैं वे

औरीफिकेरिया शोरिये, औ0 इन्डिका, साईक्लोमाइसिस टेबेसिनस, फिलोपोरिया रिबिस, फि0 बेबेरियाना इत्यादि हैं।

ब. इस समूह के पश्चिमी हिमालय में पाये जाने वाले बड़े-बड़े वंशो के नाम *ट्रामीट्स* (20 जातियां) *पालीपोरस* (14 जातियां) व *अनट्रोडिया* (10 जातियां) हैं। इनके अतिरिक्त *हैटिरोबेसिडीआन, फोमीस,* तथा अरलीयला वंशो की जातियाँ भी प्रायः देखने को मिलती हैं। *ट्रामीट्स व पोलीपोरस* जैसे बड़े वशों की जातियाँ प्रायः सभी प्रकार के वनों में पाई जाती है। जबकि *अनट्रोडिया* जैसे दिलचस्प वंश की जातियों में बहुत विविधता है तथा वे अधिकतर उच्च पर्वतीय जंगलों में पाई जाती हैं। इस समूह की साधारणतया उष्ण कटिबंधीय वनों में पाई जाने वाली मृतजीवी जातियाँ *कोरीओलौपसिस टैलफैराई, लोपोरेस टैफरोपोरस, हैक्सागोनिया टेन्युइस, नीग्रोपोरस वाईनोसस, आक्सीपोरस मीटिलस* इत्यादि हैं। इन वनों में पाई जाने वाली *अरलीयला स्कैब्रोसा* लगभग सभी आवृतबीजी पेडों पर पराश्रयी जाति हैं।

इसी समूह की साधारणतया जो जातियां सर्वव्यापक और मृतजीवी हैं वे *जैरकैनडेरा अडस्टा, डाट्रोनिया मौलीस, लैनजाइटस एक्यूटा, पोलीपोरस ग्रामोसीफैलस* आदि हैं। *पाइरोफोमिस अलबोमारजिनेटस* तो साल के पेड़ो पर एक अद्वितीय विनाशकारी पराश्रयी कवक है।

इसी समूह की जो मृतजीवी जातियां शीतोष्ण जगलों में पाई जाती हैं वे *फोमीटोपसिस रोजिया* (शंकुधारी पेडों की लकड़ी पर ही), *अनट्रोडिया लैनिस, औलिगोपोरस फ्रेजिलिस* (बलूत की लकड़ी पर ही), *डैडालिऔपसिस कनफरैगौजा व ट्रामीट्स वर्सीकलर* हैं। इन्हीं जगलों में पाई जाने वाली पराश्रयी जातियाँ में *फोमीस फोमैंटेरियस* (बांज के पेड़ो पर), *हैटिरोबेसिडीआन इनसूलैरे* (शंकुधारी पेड़ों पर) व *फैइओलस स्वाईनिटजाई* (बलूत के पेड़ो पर) हैं। पश्चिमी हिमालय में इस समूह की कुछ विरल व दिलचस्प जातियों के नाम *डैडालिऔपसिस परप्यूरिया* जो कि अभी तक जापान का स्थानिक था अब पश्चिमी हिमालय में भी खोज लिया गया है। *पाइलोपोरिया इन्डिका* जो कि पूर्वी हिमालय का स्थानिक था अब पश्चिमी हिमालय में भी पाया गया है। *फिश्चूलाइना हैपैटीका* जिसके हाईमेनियम घर के छिद्र देखते ही बनते हैं व शक्ल मनुष्य के यकृत से मिलती जुलती है, को भी इस क्षेत्र के एक दो स्थानों से एकत्रित किया गया है। इसी तरह *बौन्डारजीविया बैरकेलाई* जिसकी फलकाय बहुत बड़ी होती है, को बांज के पेड़ों के मूल से इक्ट्ठा किया गया है। *पिपटोपोरस बिटूलाइनस* तो ऐसा लगता है मानो एक बर्फ का टुकड़ा ही भोजपत्र के पेड़ो के ऊपर रखा गया हो। इसकी ऊपरी सतह के ऊपर पतले कागज जैसे छिल्के उतरते रहते हैं।

बहुरन्ध्रीय कवकों के दो वंश *गैनोडर्मा* (10 जातियाँ) तथा *अमौरोडर्मा* (2 जातियां) भी अपनी परजीवी सक्रियतता के लिए प्रसिद्ध हैं। *अमौरोडर्मा* की जातियां उष्णकटिबंधीय वनों में ही पाई जाती हैं जबकि *गैनोडरमा* की जातियाँ तो उष्ण बनों से लेकर उच्च पर्वतीय बनों तक पाई जाती हैं। इन जातियों की विशेषता यह है कि ये पेड़ों के मूलों को विगलित करके उन्हें अदंर से खोखला कर देती हैं तथा पेड़ थोड़ी सी तेज हवा से गिर जाते हैं। इसकी दो जातियां जैसे कि *गै0 अपलानेटम* तथा *गै0 लूसीडम* प्रायः देखने को मिलती हैं।

अफिल्लोफोरेल्स गण के कुछ स्थानिक वंशों के नाम *लूटाइपा, सिस्टोस्टीप्टोपोरस* तथा *अमाईलोस्पोरोमाइसिस* हैं। इसी गण की कुछ स्थानिक जातियाँ *टोमेन्टेल्ला इन्काना, टो0 हिमालयाना, वरारिया वरैवीस्पोरा, अमाईलोकौरटिसीयम इन्डिकम, रामेरिया फलैवीसैपस, टाईफूला लौन्जीस्पोरा, क्लैवुलाईना लाईमोसा, हाईमिनोकीट फसकोबेडिया, हाईफोडोन्सिया सबडैट्रीका, कोन्ड्रोस्टरियम हिमालेकम* इत्यादि हैं।

नन्दा देवी जीवमण्डल सुरक्षित क्षेत्र एवं पर्यावरण संरक्षण

प्रभात कुमार हाजरा एवं बिपिन बलोदी

विश्व में बढ़ती जनसंख्या और उसकी आवश्यकता के अनुसार संसाधनों को जुटाने के लिये प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग तो आदिकाल से होता रहा है लेकिन पिछले कुछ वर्षों में अपने विलास के लिये प्रकृति को घाव देने और उसके अंगों को खंडित करने के मानव के अविवेकी कार्यकलापों ने पूरे जीवमण्डल के संतुलन को ही डांवाडोल कर दिया है जिसके फलस्वरुप जीवमण्डल के रक्षाकवच "ओजोन परत" में दरार पैदा हो रही है, पृथ्वी पर तापमान निरन्तर बढ़ रहा है, अम्लीय वर्षा की संभावनायें बढ़ रहीं हैं, नदियों और पोखरों मे जल की गुणवत्ता में निरन्तर ह्रास हो रहा है और कई जगह तो यह पीने योग्य रहा ही नहीं है। पूरा विश्व भारी मशीनों तथा वाहनों के काले धुंऐ से आच्छादित है और प्राण वायु आक्सीजन का अनुपात हवा में ठीक बना रहेगा इसमें भी संशय है। इन सबके चलते मनुष्य व जैवमण्डल के बीच सदियों से स्थापित नाजुक संतुलन आज संकटासन्न है। साथ ही अनुवांशिक सम्पदा से परिपूर्ण उष्णकटिबन्धीय वनों के निरन्तर ह्रास ने आज मनुष्य के स्वयं के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है।

सौभाग्य की बात है कि पिछले कुछ वर्षों में विश्वभर के वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों, सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों तथा अन्य जागरुक व्यक्तियों में पर्यावरण तथा इसका संरक्षण चर्चा का मुख्य विषय बन गया है। ये सभी वर्तमान विश्व को पर्यावरण असंतुलन से उत्पन्न खतरों के प्रति सचेत करने के भीष्म प्रयास मे लग गये है। इसी क्रम में विश्व भर में आये दिन गोष्ठियां तथा कार्यशालायें आयोजित की जा रही हैं तथा ऐसे कार्यक्रम बनाये जा रहे हैं जिससे न केवल इस विनाश को रोका जा सके अपितु इसकी दिशा को वापस मोड़ा जा सके। इन्हीं प्रयासों में एक है विश्वभर में संरक्षित क्षेत्रों की श्रृंखला बनाना। भारत में भी इस कार्य का शुभारम्भ किया जा चुका है। पर्वतीय क्षेत्रों के भंगुर पारिस्थितिकी तंत्र को ध्यान में रखते हुए हमारे देश के हिमालयी क्षेत्र में अब तक कुल 58 संरक्षित क्षेत्र घोषित किये जा चुके हैं जिसके द्वारा कुल 12539 वर्ग कि0मी0 क्षेत्र को संरक्षण प्रदान करने की व्यवस्था है। यह सम्पूर्ण हिमालय क्षेत्र का 3 प्रतिशत मात्र है। इनमें से 17 संरक्षित क्षेत्र पश्चिमी हिमालय में स्थित हैं, जिसमें लगभग 3885 वर्ग कि0मी0 क्षेत्र को संरक्षण प्रदान करने की व्यवस्था है। यह कुल पश्चिमी हिमालय क्षेत्र का मात्र 5 प्रतिशत है।

हमारे देश में यूनेस्को के 1973-74 के मानव तथा जीवमण्डल कार्यक्रम के अन्तर्गत बायोस्फियर रिजर्व घोषित करने तथा इसमें सभी प्रकार के जीवों (सभी जन्तुओं, पादपों एवं सूक्ष्म जीवियों) को इनकी प्राकृतिक निवास स्थलियों में संरक्षण प्रदान कर इनके विकास एवं संवर्धन को सुनिश्चित करने का कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है। इस के अंतर्गत भारत मे अब तक कुल 7 जैवमण्डल सुरक्षित क्षेत्रों (बायोस्फियर रिजर्व) में से एक नन्दा देवी जैवमण्डल सुरक्षित क्षेत्र, पश्चिमी हिमालय के एक

प्राकृतिक परिस्थितिक तंत्र को संरक्षण प्रदान करने के लिये 18 जनवरी 1988 को घोषित किया गया। इस बायोस्फियर रिजर्व के हृद् (कोर) क्षेत्र में हमारे देश की द्वितीय सबसे ऊंची चोटी नन्दा देवी सहित धरासीं, डिब्रूघेटा, देवड़ी, रामनी, पटालखान, सरसूपातल आदि स्थान हैं। इसके अंतर्रोधी (बफर) क्षेत्र में चमोली, पिथौरागढ़ व जनपद अल्मोड़ा के क्रमशः 10, 4 व 3 ग्रामों को सम्मिलित किया गया है। इस बायोस्फियर रिजर्व का कुल क्षेत्रफल 2236.74 वर्ग कि0मी0 है जिसमें कोर क्षेत्र करीब 624.62 वर्ग कि0मी0 है।

मूल निवासी और कृषि

पूरे बफर क्षेत्र में स्थित गांवों में मुख्यतः तालछा (चमोली में) व जोहारी (पिथौरागढ़ में) जनजातीय लोगों का निवास है। प्रारम्भ में इनमें से अधिकांश लोग व्यापारी होते थे जो कि यहा से सामान तिब्बत लाया व ले जाया करते थे पर 1962 में चीनी आक्रमण के बाद व्यापार समाप्त हो जाने के पश्चात् इन लोगों ने गांवों में ही अपने स्थायी निवास बना लिये तथा कृषि को ही जीविका का साधन बना लिया।

यहां मुख्यतया चीना (*पेनिकम मिलिएसियम*), फाफड़ (*फैगोपायरम टाटारिकम*), चौलाई (*एमरेन्थस पेनिकुलाटस*), राजमा (*फैसिओलस ल्यूनेटस*), तथा आलू (*सोलानम ट्यूबरोसम*) उगाये जाते हैं। चुलू (*प्रूनस आरमेनियाका*), सेब (*पायरस मेलस*), नाशपाती (*पायरस कम्यूनिस*) भी यहां काफी मात्रा में पैदा की जाती है। जम्बू (*एलियम स्ट्रेचियाई* तथा *एलियम वालिचिई*) भी खूब पैदा किया जा रहा है। मिलम गांव में औषधीय गुणों से भरपूर हत्थाजड़ी (*डेक्टायलोराइजा हत्थाजरिया*) तथा मांशी (*नार्डोस्टेकिस जटामांसी*) भी पैदा किया जा रहा है।

कृषि के अतिरिक्त यहां के निवासियों के लिये पर्यटन तथा पर्वतारोहण धनोपार्जन का मुख्य आधार रहा है। लेकिन क्षेत्र को "संरक्षित" घोषित किये जाने तथा पर्वतारोहण पर रोक लगा दिये जाने के कारण इनका जीवन काफी प्रभावित हुआ है। इन लोगों की बातों से तथा अन्य स्रोतों से यह भी विदित होता है कि यहां के लोग जड़ी-बूटियों के दोहन के साथ-साथ बहुमूल्य कस्तूरी मृग (*मोस्कस क्रायसोगेस्टर*) का आखेट भी बहुतायत में किया करते थे।

जन्तु सम्पदा:

यह क्षेत्र अपनी विशिष्ट जन्तु सम्पदा के लिये अग्रणी है। यहां के मुख्य स्तनधारी जन्तु निम्न है:

भरड़ (*ब्ल्यू शीप*), कस्तूरी मृग, थार, बाघ, बर्फीला तेंदुआ, पाइका, स्याल इत्यादि।

वनस्पति सम्पदा:

सुविधा के लिये पूरे क्षेत्र की वनस्पति को निम्न लिखित भागों में बांटा जा सकता है।

1. शीतोष्ण वनस्पतियां
2. उपहिमाद्रि वनस्पतियां
3. हिमाद्रि वनस्पतियां

1. **शीतोष्ण वनस्पतियांः** इस प्रकार की वनस्पतियों में मुख्यतया मिश्रित वन आते हैं जिनमें *तूना सिरेंटा, जुगलेन्स रेजिया, प्रूनस कॉर्नुटा, लायोनिया ओवेलिफोलिया, रहोडोडेन्ड्रोन आरबोरियम, कुएरकस डायलाटाटा, पॉपुलस सिलिएटा, सेल्टिस ऑस्ट्रेलिस, एसर कैपिडोसियम, एस्कुलस इन्डिका, पीसिया स्मिथियाना, व एबीज पिन्ड्रो* के वृक्ष, *रुबस लेसिओकार्पस, रु0 इलिप्टिकस, रु0 निवियस, ड्यूटाजिया स्टेमिनिया, वाइबरनम कोटीनिफोलियम* इत्यादि की झाड़ियां तथा *पिओनिया इमोडी, वाइला सर्पेन्स, डलफीनियम वेस्टीटम, पॉलीगोनेटम वर्टीसिल्लेटम, फ्रेगेरिया न्यूबीकोला, बर्जीनिया सिलियाटा, माइक्रोमेरिया बाईफ्लोरा, क्लिनोपोडियम वुलगेर, अजूगा पार्वीफ्लोरा, कैम्पानुला कोलोरेटा, डिप्सेकस इनेर्मिस* इत्यादि के शाकीय पादप मुख्य हैं।

उपहिमाद्रि वनस्पतियांः उपहिमाद्रि क्षेत्र में मुख्यतया *एसर अक्यूमिनाटम, एबीज स्पेक्टाविलिस, रहोडोडेन्ड्रोन कम्पनुलाटम, रोजा वेबियाना, रो. सेरिसिया, राइब्स ग्लेसियल रा. ग्रोसुलेरिया, सैलिक्स कारोलिनी कोटोनेआस्टर माइक्राफिल्लम, सैलिक्स डैन्टीकुलेटा, रहोडोडेन्ड्रोन एन्थोपोगोन, रहोडोडेन्ड्रोन लेपिडोटम, लोनिसेरा स्याइनोसा* इत्यादि के वृक्ष एवं झाड़ियां पायी जाती हैं। शाकीय पौधों में यहां *एनीमोन, जिरेनियम, पोटेन्टिला, पॉलीगोनम, रिहयम, पैडिकुलेरिस, गैनिसियो, पिमुला, जैन्शियाना* तथा *स्वार्शिया* आदि की जातियां सर्वत्र पायी जाती हैं।

हिमाद्रि वनस्पतियांः सामान्यतः 12,500 फीट की ऊंचाई के आसपास यहां वृक्ष सीमा है। भोज पत्र (*बेट्यूला यूटिलिस*), *रहोडोडेन्ड्रोन कम्पानुलाटम* के साथ वृक्ष सीमा पर उगने वाले अन्तिम वृक्ष होते हैं। यहां पर सुन्दर घास के मैदान होते हैं जिन्हें बुग्याल कहते हैं। ये बुग्याल विभिन्न आकार प्रकार एवं सुन्दर, सजीले, रंगबिरंगे दुर्लभ पुष्पी पादपों के लिये पौराणिक काल से विख्यात रहे हैं। औषधीय गुणों से भरपूर जड़ी बूटियां भी यहां अत्यधिक मात्रा में पाई जाती हैं। नन्दा देवी जैवमण्डल सुरक्षित क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाला सरसूपातल का बुग्याल सम्भवतः पश्चिमी हिमालय के समस्त बुग्यालों में सबसे विशाल है। इसके अतिरिक्त यहां डिब्रूघेटा, धरांसी तथा मारतोली के बुग्याल भी अतिसुन्दर हैं।

इन बुग्यालों में जून के प्रथम सप्ताह के बाद (बर्फ पिघलने के साथ-साथ) नाना प्रकार के शाकीय पादपों में पुष्प आने प्रारम्भ होते हैं और पूरे हिमाद्रि घास के मैदानों में प्रकृति रंग भरने प्रारम्भ कर देती है। यहां *पॉलीगोनम* जातियों के लाल रंग, *डलफीनियम* जातियों के नीले-बैंगनी रंग, *जैन्शियाना* की जातियों के नीले-बैंगनी रंग, *प्रिमुला* की जातियों के गुलाबी-बैंगनी रंग, *सायनैन्थस* के नीले-बैंगनी रंग, *पोटेन्टिला* की जातियों के पीले एवं कुछ लाल रंग, व *एनीमोन* जातियों के सफेद रंगों वाले पुष्पों से ऐसा प्रतीत होता है मानों धरती पर रंग बिरंगा कालीन बिछा दिया गया हो।

उपरोक्त शाकीय पौधों के अलावा यहां *कैरागेना, एस्ट्रागैलस, कोटोनेआस्टर* की जातियों के साथ-साथ *रहोडोडेन्ड्रोन एन्थोपोगोन* तथा *रहो. लेपिडोटम* की छोटी-छोटी झाड़ियां भी सर्वत्र पायी जाती हैं।

इस जैवमण्डल सुरक्षित क्षेत्र के रुपकुण्ड क्षेत्र में बगुवाबासा नामक स्थान 16500 फीट की ऊंचाई पर स्थित आश्चर्यजनक हिमोढ़ (मोरेन) है जहां धरती बड़े-बड़े सपाट पत्थरों से अटी पड़ी है। यहां जुलाई-सितम्बर के महीनों में पहुंचने पर ऐसा प्रतीत होता है मानों पवित्र ब्रह्मकमल (*साउस्सुरेआ आबवलाटा*) की कृषि की जा रही हो। यह दुर्लभ, सफेद-हल्के पीले रंग के बड़े-बड़े पुष्पों वाला पादप संभवतः सम्पूर्ण पश्चिम हिमालय में इसी क्षेत्र में अधिकतम पाया जाता है। इसके अतिरिक्त बर्फ के समान सफेद रुई के गुच्छे सा, अत्यन्त दुर्लभ फेन कमल (*साउस्सुरेआ गोस्सिपिफोरा*) भी पाया जाता है।

सुरक्षित क्षेत्र में औषधीय पादपों में यहां *एकोनाइटम* की जातियां (अतीस एवं मीठा), मांशी (*नार्डोस्टेकिस जटामांसी*), कटकी (*पिक्रोराइजा कुर्रुआ*) तथा हत्थाजड़ी (*डैक्टायलोराइजा हत्थाजरिया*) भी काफी मात्रा में पाई जाती है।

प्रकृति की उपरोक्त धरोहर को सुरक्षित रखना और इसका विकास सुनिश्चित करना आज मानव के लिये अपने अस्तित्व की सुरक्षा का प्राय है।

किसी भी क्षेत्र में प्राकृतिक सम्पदा की सुरक्षा वहां के निवासियों के सहयोग के बिना अकल्पनीय है। अतः सर्वप्रथम स्थानीय निवासियों में पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता एवं तत्सम्बन्धी शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार करना आवश्यक है। साथ ही इन्हें इनके जीविकोपार्जन के अन्य साधन उपलब्ध कराना भी आवश्यक है, अन्यथा हमारे सारे पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी कार्यक्रम अधूरे रह जायेंगे।

राष्ट्रीय उद्यान फूलों की घाटी एवं हेमकुण्ड की वनस्पति

बी० एम० वाधवा, सी० एल० मल्होत्रा,
रेशमा माथुर एवं आर० आर० राव

फूलों की घाटी अथवा भ्यूंदर घाटी, चमोली, गढ़वाल हिमालय का एक रमणीक पर्यटक स्थल है। सर्वप्रथम इसका उल्लेख ब्रिटिश अभियान "कामिथ चोटी" 1931 के सदस्य फ्रेंक एस० स्माईथ ने किया था तथा इसे "वैली आफ फलावर्स" अर्थात् "फूलों की घाटी" नाम दिया। इनकी पुस्तक "वैली आफ फलावर्स (1938) ने इसे विश्व-विख्यात कर दिया।

इस घाटी का अन्वेषण अचानक ही हुआ जब ब्रिटिश अभियान के सदस्य, जिनमें फ्रेंक एस० स्माईथ भी थे, कामिथ चोटी से लौटते हुए गंगा की दो मुख्य धाराओं के स्रोत के समीप पहाड़ी इलाकों का अन्वेषण करते हुए घाटी में स्वतः ही आ पहुंचे और इसके प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर मंत्रमुग्ध हो गये।

फूलों की घाटी गढ़वाल हिमालय की जांसकर श्रृंखला उत्तर प्रदेश के जिला चमोली की मुख्य घाटी अलकनन्दा एवं धौली गंगा की घाटियों के बीच स्थित है। नदी पुष्पावती जो इस घाटी से होकर निकलती है, इसका मुख्य स्रोत तिपरा ग्लेशियर में है जो कि गौरी पर्वत की चोटी तक जाती है। यह घाटी लगभग 5 किमी० लम्बी तथा 2 किमी० चौड़ी है। इसकी ऊंचाई 3500-3733 मी० तक है और यह पूर्व से पश्चिम दिशा में फैली हुई है। इस घाटी तक पहुंचने का सबसे सरल मार्ग दक्षिण दिशा से है, जहां पर नदी पुष्पावती गहरे पर्वतीय मार्गों से होती हुई बहती है। इसके अतिरिक्त दो अन्य मार्ग भी हैं जो चरवाहों तथा पर्वतारोहियों द्वारा ही प्रयोग में लाये जाते हैं। पश्चिमी दिशा का मार्ग कन्वखाल ग्लेशियर से होत हुआ हनुमानचटी (बद्रीनाथ के मार्ग में एक छोटा गांव) को जाता है एवं पूर्वी दिशा का मार्ग लक्ष्मणमास होता हुअ चमसली को जाता है। दोनों स्थानों तक पहुंचने के लिए घाटी से लगभग तीन दिन की पैदल यात्रा करनी पड़ती है। नदी पुष्पावती, नदी लक्ष्मण गंगा से मिलती है जो कि घंघेरिय (गोविन्दधाम) में स्थित हेमकुण्ड (लोकपाल, लक्ष्मण कुण्ड) से निकलती है। यहीं पर इसका नाम भयुन्दर गंगा पड़ता है जो कि फिर गोविंद घाट पर अलखनन्दा में आ मिलती है।

ऋषिकेश बद्रीनाथ के मार्ग में नदी अलकनन्दा के दाहिने किनारे पर स्थित छोटा सा गांव गोविन्दघाट लगभग 1800 मी० की ऊंचाई पर है और यह फूलों की घाटी हेमकुण्ड के पर्यटकों के लिए सबसे पहला कैम्पिंग स्थान है।

ऋषिकेश (जो कि एक प्रमुख केन्द्र है रेल/मोटर आदि के लिए) से गोविन्दघाट होते हुए फूलों की घाटी/हेमकुण्ड की यात्रा के लिए सड़क मार्ग (276 किमी०) है और यह सड़क मार्ग घाटियों

प्रमुखतः अलकनन्दा घाटी से होता हुआ जाता है। गोविन्दघाट से फूलों की घाटी/हेमकुण्ड जाने वाला मार्ग सड़क से अलग हो जाता है। घंघेरिया (गोंविन्दधाम) 3200 मी0 की ऊंचाई तथा गोवन्दधाम से 12.5 किमी0 की दूरी पर आखिरी बस्ती है तथा पर्यटकों के लिए दूसरा बेस कैम्प है। यह दूरी पैदल अथवा खच्चरों के द्वारा तय की जा सकती है। पूरा मार्ग गंगा के साथ-साथ जाता है। अलकनन्दा को पार करने के बाद गोविन्दघाट से लगभग 2 किमी0 की खड़ी चढ़ाई घने वनों से होती हुई गांव पुन के खेतों के पास निकलती है। यहां पर पाये जाने वाले प्रमुख पौधे हैं *बरबेरिस चित्रिया* (बारबेरी), *बरबेरिस लाईसियम* (बारबेर), *हाईपेरिकम सैनुंउम, इनडीगोफेरा हैटरैन्था, रस पाखीफ्लौरा, क्रैटेवस क्रेनूलैटस, रोजा मैवरौफिला* (वाईल्ड रोज), *रुबस एलीपटिक्स, कैलीकार्पा मैवरोफिला, डेस्मोडयम टील्यीफोलियम, लौबसेरा क्युनक्यूलांकुलेरिस स्किमिआ लाउरिओला* (स्किमी)। इनके अतिरिक्त यहां पर पायी जाने वाली कुछ प्रमुख बेलें उदाहरणतः *डायोस्कोरिया* बेलोफिला, क्लेमेटिस बुकानिआना, ऐसपेरागस फिलिसिना तथा कसकुटा कैपटाटा जैसी परजीवी बेल भी प्रायः देखने में आती है। प्रारम्भ में पैदल मार्ग की खडी चढ़ाई एवं आसपास के दृश्य इस आभमय फूलों की घाटी के सौन्दर्य को धूमिल करते हुए प्रतीत होते हैं। परन्तु इसके बाद सारा मार्ग अत्यधिक सुन्दर वनों एवं प्राकृतिक दृश्यों से चकाचौंध कर देने वाला है। यहां से घाटी धीरे-धीरे संकरी तथा गहरी होती जाती है जिसके दोनों और फैली हुई चट्टानें कहीं कहीं पर प्राकृतिक झरनों के पानी से झिलमिलाती सी प्रतीत होती हैं। घाटी में नदी के गहरे एवं तेजबहाव के कारण चारों और एक प्रकार का कोहरा सा फैला रहता है जिसके शीतल स्पर्श से यात्रियों की सारी थकान तुरन्त उतर जाती है। इस वन में मुख्यतः पाये जाने वाले पेड़ हैं *ऐसर सीर्जायम* और *ऐसर कॉडेटम्* (मैपल), *योनिआ औंवेलीफोलिया, एस्कुलस इन्डिका* (होर्स स्टपस), *कारपिनस विमीनिआ* (होर्नबीम), कोरन्यूटा, प्रनूस पदम (बर्डचेरी), *टुना सीलिएटा* (दूब), *रहोडोडेन्ड्रान अर्बोरियम* (टी रहोडोडेन्ड्रान), *एरकुस डायलाटाटा* ओक), *आल्नुस नेपालेन्सिस* (ऐल्डर), कोरीलस की जाति एवं *मोरस सिर्राटा* (मलबेरी)।

इस गूंजती हुई नदी को यात्री, बाए किनारे पर स्थित एक पेड़ों के तनों के समकोण के द्वारा बने पुल से पार कर पाते हैं तथा ये नदी दाएँ ओर से आगे बहती हुई चली जाती है। भ्यूंदूर घाटी से कुछ ही आगे एक छोटा सा गांव है जिसमें खुशहाल किसान और गड़रिये बसते है। वो लोग जाड़ों में वहां से पुन गांव की ओर चले जाते हैं। भ्यूंदर घाटी के एक भाग से एक घाटी हाथी पर्वत और गौरी पर्वत की ओर जाती है। ये बर्फ से ढकी चोटियां प्रातःकालीन चमकती हुई किरणों में बहुत ही सौन्दर्यमय दिखाई देती हैं। इसके बाद यह मार्ग नमी वाले मिश्रित शीतोष्ण वनों से होता हुआ जाता है जहा पर *कुएरकुस डायलाटाटा, कु0 सेमीकार्पीफोलिया* (ओक) *रहडोडेन्ड्रॉन आर्बारिय* (ट्री रहोडोडेन्ड्रॉन), *कोरीलस कोलूर्ना* (दी हिमालयन हेजलनट), सेलिक्स जाति के पौधे (विल्लोज) तथा बम्बूस (अरुनडीनेरिया जाय) आदि पाये जाते हैं जिनकी छाया में बहुत से छोट-छोटे शाकीय पौधे पाये जाते हैं। यहां की नमी वाली जलवायु का उदाहरण हमें वहां पर प्रचुर मात्रा में पाये जाने वाली अधिपादपीय पर्णांग जो कि पेड़ों पर लगी मॉस के बीच उगते हैं, से मिलता है। इनके अतिरिक्त छोटे पौधे मुख्यतः *एरीसीमा वालीचीआना* जिनका पुष्पक्रम नाग के फन जैसे होते हैं साधारणतः पाये जाते हैं, तथा *ऐनाफेलिस* (सदाबहार), *क्राईसैन्थिमम इन्डिकम* (डेजी), *फ्रेगेरिया वेस्का* और *फ्रे इन्डिक* (स्ट्राबैरि) तथा *रेननकुलस* की जाति (बटरकप्स) जैसे शाकीय पौधे भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इन्हीं पौधों के साथ एक और पौध *सिर्काएआस्टर अग्रस्टिस* जो कि आदि पौधा कहलाता है, छाया में मॉस

के बीच पाया जाता है। इसके अतिरिक्त एक पौधा *बैलेनोफोरा इनवोलुक्रटा,* जो क रहोडोडेन्ड्रोन के पेड़ों की जड़ों पर आश्रित होता है, यहां पर पाया जाता है।

इसके बाद का सारा मार्ग चढ़ाई वाला है, और यहां से वनस्पति बदल जाती हैं क्योंकि छोटे-छोटे पौधों की जगह बड़े लम्बे शंकुधर, जैसे *ऐबीज पिन्ड्रो* (सिल्वर फर) और *टेक्सस बकाटा* (ईयू), ले लेते हैं। हिमालय के ऊपरी तथा निचले भागों में पाये जाने वाले वनों को वहां जाकर ही सही रुप से समझा जा सकता है। 2100 मी0 तक पाये जाने वाले निचले वनों में जहां कीड़े-मकोड़े अधिक मात्रा में पाये जाते हैं वहीं ऊपरी वन अत्यन्त शान्तिप्रद हैं तथा यहां पर हवा की हल्की सी भी आवाज नहीं आती, सिर्फ घाटी में सनसनाहट सी गूंजती रहती है।

यहां पर ऊंचे लम्बे पेड़ों से छनती हुई सूरज की रोशनी मॉस से ढकी बड़ी-बड़ी चट्टानों तथा जगह-जगह उगने वाले पर्णांगों के झुण्डों को प्रकाशित करती हैं। इसके बाद लगभग 3200 मी0 की ऊंचाई पर स्थित छोटे पर्वतीय मैदानी भाग को पार करके घने सिल्वर पर्णांग के वन में प्रवेश करते हैं जहां पर चट्टानों के बीच बड़े-बड़े पेड़ पाये जाते हैं। इस जगह को घंघरिया कहते हैं।

घंघरिया गांव में वन विश्राम गृह, पर्यटक विश्राम गृहों तथा गुरुद्वारा के अतिरिक्त छोटी-छोटी झोपड़ियों में रहने की सुविधाऐं उपलब्ध हैं। यहां पर कुछ दुकानें आदि भी हैं। इस स्थान पर केवल मई माह से सितबंर तक जाया जा सकता है।

फूलों की घाटी तक पहुंचने का पैदल मार्ग घंघरिया से लगभग 5 कि0मी0 लम्बा है तथा यहां से हेमकुण्ड (लोकपाल) 6 किमी0 है। इस मार्ग को खच्चरों के द्वारा भी तय किया जा सकता है। इस मार्ग के मैदानी भाग में बहुत से नीले तथा सफेद *ऐनीमोन* पाये जाते हैं और चट्टानों के नीचे छाया में सिर्काएआस्टर तथा जिरेनियम की विभिन्न जातियां पाई जाती है। फूलों की घाटी की चढ़ाई पार करके जैसे-जैसे पर्वतीय मैदानों से होकर जाते हैं, घाटी धीरे-धीरे चट्टानों के बीच संकीर्ण होती जाती है। घाटी में दक्षिण से प्रवेश करने वाले मार्ग के दायीं ओर ऊर्ध्वाधर चट्टानें तथा पूर्व की ओर वाली चट्टानें झुकी हुई प्रतीत होती हैं जो कि लगभग 1000 मी0 तक की ऊंचाई तक है और सम्पूर्ण घाटी के दृश्य को इस प्रकार से ढक लेती हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि घाटी यहीं पर समाप्त हो गई है। पर्वतों के बीच का मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा नीचे की तरफ जाता हुआ नदी पर फैले लम्बे पुल पर जो कि दो चट्टानों पर बंधा है, से होता हुआ ऊपर दूसरे किनारे पर शंकुधर वनों को जाता है। जैसे-जैसे यह मार्ग चौड़ा होता जाता है चढ़ाई आसान होती जाती है तथा वहां की वनस्पति इस चढ़ाई के साथ-साथ बदलती जाती है। यहां पर प्रमुखतः पाये जाने वाले पौधों में अधिकतर भोजपत्र (*बेटुला युटीलिस*), वामन रहोडोडेन्ड्रोन की कुछ जातियां उदाहरणतः (*रहोडोडेन्ड्रोन लेपीडोटम, रो0 कम्पैनुलाटम* तथा *रो0 एंथोपोगोन* और *सोरबस फोलियोलोसा* हैं)।

यहां से यह मार्ग ऊंचे हरे भरे पर्वतीय मार्ग से होता हुआ समकोण पर पूर्वी दिशा में मुड़ जाता है। वहां पर घाटी चौड़ी हो जाती है तथा ऊंची पर्वतीय चोटियां चारों और से घाटी को घेरती हुई सी प्रतीत होती है। इससे थोड़ा आगे चलकर घाटी का सम्पूर्ण दृश्य तथा कनखल ग्लेशियर, जो कि पूर्वी-पश्चिमी भाग में है, साफ दिखाई देता है।

मौसम:

यहां का मौसम अत्यन्त अनिश्चित रहता है। जहां की सुबह बहुत ही साफ होती है। कहीं-कहीं पर नीले आकाश में छिटके हुए बादल दिखाई देते हैं परन्तु लगभग 10 बजे घना कोहरा घाटी से उठता हुआ सारे वातावरण में फैल जाता है। दोपहर बाद यहां पर काफी तेज वर्षा आरम्भ हो जाती है। सितम्बर माह के आखिर में जब पहली बर्फ ऊंची चोटियों पर गिर जाती है, घाटी में दिन का तापमान 7^{0} से 8^{0} से0 और हेमकुण्ड में 1^{0}-2^{0} से0 होता है तथा रात का तापमान लगभग 8^{0}-10^{0} से0 हो जाता है।

घाटी:

फूलों की यह घाटी एक विस्तृत पर्वतीय मैदान है जो कि धीरे-धीरे ऊंचाई की ओर बढ़ता हुआ ग्लेशियर से मिल जाता है। घाटी का मध्य भाग जो भ्यूण्डर पहाड़ी के सामने है वहां पर मिस जोन मारग्रेट लेग की कब्र है जिनकी मृत्यु 1938 में यहां पर पौधे एकत्रित करते हुए हुई थी। इस कब्र के संगमरमर की शिला पर लिखा हुआ है "आई विल लिफ्ट अप माई आई अनटू द हिल्स फ्राम व्हेंस कम्थ माई हैल्प"।

आगुन्तक/पर्यटक अपने कैम्पस "मिस लेग" की कब्र के पास लगाकर विभिन्न दिशाओं में हर रोज जा तो सकते हैं पर ज्यादा अच्छा रहे कि कैम्प ग्लेशियर के करीब लगाया जाये, यद्यपि यहां तक चढ़ना व पहुंचना बहुत कठिन है। इस स्थान से सुन्दर नीला आकाश, बड़ी उंची पहाड़ों की चोटियां तथा सदैव बर्फ से ढके मैदान इस घाटी की सुन्दरता को एक अनुपम रुप देता है। वर्षा ऋतु के साथ-साथ घाटी में फूलों की छटा निखरती जाती है और एक समय ऐसा प्रतीत होता है जैसे सारी घाटी अचानक पुष्पों से भर गयी है।

यह घाटी नवम्बर माह के मध्य से लेकर मई माह के मध्य तक बर्फ से घिरी तथा ढकी रहती है। इस समय वहां पर पहुंचना बहुत ही कठिन हो जाता है परन्तु जब यह बर्फ पिघलने लगती है और वर्षा आरम्भ होती है उस समय से फिर एक बार इस घाटी का सौन्दर्य, जो कि विश्व भर में प्रसिद्ध है, धीरे-धीरे निखरने लगता है। चारों और इस घाटी में सुन्दर रंगों के फूलों से प्रकृति एक इन्द्रधनुष सा पृथ्वी पर बना देती है। सर्वप्रथम इस घाटी में *रहोडोडेन्ड्रोन* की विभिन्न वामन जातियों के फूल खिलते दिखाई देते हैं। उदाहरणतः (*रहोडोडेन्ड्रोन केम्पनुलाटम, रो0 लेपीडोटम* और *रो0 ऐन्थोपोगोन*)। उसके बाद *प्रीमुला डेन्टीकुलाटा* कि जल्दी खिलने वाली प्रजाति के सुन्दर फूल चट्टानों के बीच से खिलते इनके साथ-साथ *ऐन्ड्रोसेसी सारमेन्टौसा, ऐ0 रैसटन्डीफोलिया* (रौक जैसमीन्स), *आईरिस कुमाऊंनेंसिस, वायला बाई-लोरा तथा वायला सरपन्स* (पैनजी), *फ्रीटीलारिया रायली, पोटन्टिला माइक्रोफिल्ला, पो0 एरगाईरोफिला* एवं *पो0 ऐट्रोपसेग्वीलियां* अथवा अन्य वार्षिक पौधे जो कि घाटी में एक सुन्दर गलीचा सा बिछा देते हैं।

इस घाटी में अधिकतर फूल मध्य जुलाई से मध्य अगस्त तक खिलते हैं। इस समय पर यह घाटी हर प्रकार के रंग-बिरंगे फूलों से इस प्रकार ढल जाती है जिससे कि घाटी में एक कदम भी

किसी सुन्दर फूल को कुचले बिना नहीं चला जा सकता। रंगों की इस बहुतायत में भी प्रकृति न तो कभी रंगों के सामंजस्य को बिगाड़ती है और न ही प्राकृतिक रचना की एकरसता पर कुछ असर पड़ता है। रंगों की अद्भुत एवं दैविक छटा पर्यटकों को भौतिक से अधिक आत्मिक सुख प्रदान करती है। स्माईथ ने इस घाटी के परिवेश के उन पहलुओं को दर्शाया है जो यहां पर पौधों के आश्चर्यजनक जीवन-चक्र तथा उनके बीच सामंजस्य को प्रभावित करता है।

घाटी में फूलों की बहुलता होने के कारण उन सबका वर्णन करना बहुत ही कठिन कार्य है परन्तु वर्षा व बसन्त ऋतु में पाये जाने वाले कुछ मुख्य पौधों का वर्णन यहां किया गया है।

ऐनीमोन ओबटयूसीलोबा, ऐ० रुपीकोला और *ऐ० पोलीऐन्थस* (सफेद व नीले ऐनीमोन) *मेकौनोप्सिस एक्यूलीआटा* (नीली पौपी), *डेल्फीनियम* की जातियां (नीले व नीले जामुनी लार्कस्पर्स), *जेनशियाना ट्यूबीफ्लोरा, जे० स्टीपीटाटा, जे० आरजेनटिया* व *जे० कशमीरिका* (नीले जामनी जेनशीयाआना), *मायोसोटिस सिसपीटोसा* और *मा० सिल्वेटिका* (नीले रंग के फोरगेट मी नोट) *पोलीगौनम वेकसीनीफौलियम, पो० ऐफीन, पो० पोलीस्टैकिअम, पो० डैलीकेटुलम,* तथा *पो० वीवीपेरम* (सफेद, गुलाबी, गुलाबी जामनी व लाल रंग के पौलीगोनम्स), *ऐन्ड्रोसैस रौटन्डीफैलिया* और *एन्ड्रोसैस सारमेन्टौसा* (हल्के गुलबी या जमनी फूलों वाले रौक जेसमीन्स), *थाईमस सर्पिलम* (जामनी थाईम्स) *गेजिआ लूटीआ* (पीले रंग का बेथलेहम का तारा) *कैल्था पल्सटौरस* (मार्ष मेरीगैल्ड), *नौमोकेरिस आक्सीपेटैला* (सुनहरा नोमौकैरस), *एपीलोबीअम लेटफौलिअम, ए० रौजीएम* व *ए० आरगेनीफोलीअम* (गुलाबी जामनी तथा लाल विलो के शाकीय पौधे), *फ्लोमस ब्रेक्टीआय* (नीले जामनी जेरुसलम सेज), *जीरोनेएम वालीचिआनम* अथवा *जी० ग्रेवेलीआनम* (जामनी जीरेनिएमस), *पिऔनिया ईमौडी* (सफेद पिऔनी), *जीअम इलेटम* (ब्राईट पीले जीअग्स), *सैक्सीफ्रेगा डाईवर्सीफौलिआ, सै० सरनुआ, सै० ब्रूनौनिआना, सै० जेक्यूमौनशियाना* (सफेद या पीले *सेक्सीफ्रेगा राकफाएल), प्रिमुला डैटिक्यूलाटा, प्रि० इनेवाल्युक्राटा प्रि० पिटियूलैरिया, पोटैनट्ला माइक्रोफिला, पो० एरगाईरोफिला, सिनैसिओ क्राइजेन्थोमोइडिस,* एस्टर की जातियां, *लिओंटोपोडियम एलपिनम, इम्पेसंस रायलिआई, इ० स्केब्रिडा,* तथा *इ० थोमसोनी, कोरीडेलिस एलपिनम, को० गोवेनियाना, को० मीफोलिया* तथा *को० कैश्मीरियाना, लेक्टयूका वायलिफोलिया, ले० मैक्रोराईजा, रेननक्यूलस हाइपरबोरियस, रे० हिर्टेलस, एकौनाइटम हैट्रौफिलम, ए० बेलफौरी, ए० वॉयलेसियम, साईनेंथस लोबेटस, पैडीक्यूलेरिस* की जातियां, *गोल्थीरिया ट्राईकोफिला* तथा *फ्रीटिलेरिया रॉयलियाई।*

सितम्बर के अन्त में कहीं-कही घने फूलों के गुच्छे दिखाई पड़ते हैं जैसे कि *ऐकोनाईटम हेटरोफिल्लम पोलीगोनम वैक्सीनीफौलिएम व पो० ऐफीन* के विस्तृत झुंड इसके अतिरिक्त *पारनेसीआ न्यूबीकोला, कोरडेलिस नाना, जेनशियाना स्टीपीटाटा, साईनेन्थस, जीअम इलेटम, साउस्युरेआ* की कुछ जातियां तथा *पॉलीगोनम पॉलीस्टौकिएम* जैसे अन्य पौधे यदा कदा दिखाई देते हैं। इनके अतिरिक्त *एपीलोबिअम रोजीअम* और *ऐ० लेटीफोलिअम* अपने एक शानदार अन्दाज में छोट-छोटे पानी भरे गड्ढों के पास दिखाई देते हैं, जिनके बीज रेशमी धागों जैसे बालों से ढके रहते हैं। इसी के साथ, *बरसा-पस्टौरिस* कैप्सेला के पौधे भी इधर उधर दिखाई पड़ते हैं। इसी समय पर *पोटेनटिला* की विभिन्न जातियां भी चारों ओर खिलती हुयी दिखाई देती हैं *नोमोकेरिस आक्सीपिटैला* भी बहुत

दिखाई देता है परन्तु इस समय तक उनमें फूलों की जगह फल ले लेते हैं।

इसी समय चट्टानों के बीच की दरारों से कई पौधे जैसे *कैसयोपी फेस्टीगाटा* तथा *गौलथेरिआ ट्राईकोफिला, सीडम ट्रुलिपैटेलम, सीडम इवरसी* उगते हुए देखे जा सकते हैं।

घाटी में पाये जाने वाले विशिष्ट रुप से उल्लेखनीय क्षुप हैं *जूनीपेरस कम्यूनिस, मीरीकेरिया जर्मनिका, कोटोनिआस्टर रोटन्डिफोलिया* व *को० माईक्रोफिला* और *सैलिक्स फ्लैबिलेरिस* हैं जो चारों और फैले नजर आते हैं।

इनमें बहुत से पौधे अपने औषधि गुणों के लिए प्रसिद्ध है। उदाहरणतः *ऐकोनाईटम हैटरोफिल्लम, ऐ० बालफेरी* तथा *नारडोस्टोकिस जटामान्सी* (हिमालयन स्पाईकनार्ड) , *जेन्शियाना* को विभिन्न जातियां, *थैलिक्ट्रम* की जातियां (मामीरा), *वायला* की जाति तथा *रिहम इमोडी* (रहबर्ब)। इनके अतिरिक्त बहुत से और पौधे, जैसे कि "ब्रह्म-कमल" (*साउस्सुरेआ ओबवालाटा*) के हजारों पौधों को एकत्रित किया जाता है जो कि हिन्दुओं द्वारा पूजा में चढ़ाने के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं।

घाटी में वर्षा युक्त बसंत बहुत ही कम समय के लिये होता है। यहांपर सिर्फ 3 माह के लिये ही प्रकृति अपने अद्भुत रुपों से इस घाटी का विभिन्न रंगों से श्रृंगार करती है तथा सबसे प्रमुख रंग इस समय पर यहां हरा होता है। पर जैसे-जैसे सितम्बर माह खत्म होने पर आता है सारे रंग धीरे-धीरे धूमिल पड़ते जाते हैं और अक्टूबर में पतझड़ आ जाने पर कहीं कोई फूल खिला दिखाई नहीं देता - बस सिर्फ इन रंग-बिरंगे फूलों के बीज अगले वर्ष के बसंत का इंतजार करते घाटी में चारों ओर रंग-बिरंगे फूलों-भरे दृश्यों के स्थान पर सूखे हुए पीले भूरे पत्तों के बिछोने नजर आने लगते हैं। यह दृश्य तब तक रहता है जब तक कि यह घाटी पूरी तरह से बर्फ से ढक नहीं जाती है तथा नदियों व झीलों का साफ-सुथरा जल बर्फ की चादर का रुप नहीं धारण कर लेता है।

संरक्षण

घाटी के परिवेश का हर एक पौधे की दृष्टि से अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है। यहां का प्रत्येक पौधा अपनी परिस्थितियों के अनुकूल है तथा अपने जीवन-चक्र यहाँ के पर्यावरण को भी प्रभावित करता है। यद्यपि कि बकरियों के चराने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है पर इससे खरपतवार आवश्यकता से अधिक उगने लगती हैं जो कि फिर घाटी के परिवेश को प्रभावित करती हैं। यहां पर पर्यटकों एवं आगुन्तकों के द्वारा लाये गये खच्चर इत्यादि पर कोइ रोक नहीं है जो कि घाटी के वातावरण को दूषित करते हैं। जैविक हस्तक्षेप को रोकने के लिये पर्यटकों/आगुन्तकों के आने-जाने पर ध्यान देने की आवश्यकता है। बहुत से जंगली औषधियुक्त पौधे जैसे रहबार्ब, एकौनाईटस, जैशियन्स ब्रहमकमल आदि तथा अनेक सुन्दर बागवानी वाले पौधों के विनाश को रोकने के लिये ध्यान देना आवश्यक है। यदि प्राकृतिक सम्पदा का विनाश इसी तरह होता रहा तो एक दिन फूलों की घाटी सदैव के लिए अपनी बहुरंगी छटा, बिखेरना बन्द कर देगी एवं प्रकृति के सुन्दर उपहार लाल *पाटेनटिला,* क्रीम और नीले *एनीमोन* सुन्दर सफेद और नीले *प्रिमुलास,* नीले और पीले *कोरीडैलिस* गुलाबी व जामनी *जीरेनियम* तथा नीले कांटेदार पॉपी, बस स्वपन भर रह जायेंगे।

इससे पहले कि प्राकृतिक विनाश को रोकना असम्भव हो जाये, मनुष्य को उसके लिए आवश्यक कदम उठाना होगा। प्रकृति के इस अद्भुत एवं अनमोल खजाने को उसके मूल वैभव में संरक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे आगे आने वाली पीढ़ियां अपने व्यस्त जीवन से कुछ समय निकाल कर इसका भरपूर आनन्द उठा सकें।

तालिका:
उद्यान में पायेजाने वाले विरल पौधे

क्रम सं0	स्थानीय नाम	वनस्पतिक नाम	कुल
1.	अतीस	*एकोनाईटम हैटरोफिल्लम*	रैनन्कुलेसी
2.	पापरा	*पोडोफाईल्लम हैक्ट्रोन्ड्रम*	पौडोफाईलेसी
3.	कन्त-स्वर्णनीयस (नीली पॉपी)	*मेकौनौप्सिस एक्यूलीआटा*	पपावरेसी
4.		*सिरकिआस्टर*	सिरकिआण्ड्रेसी
5.	गारुवी	*माईकेलिआ किसौपा*	मैगनोलिऐसी
6.	बलधर जटामान्सी (स्पाईकनार्ड)	*नार्डोस्टैकिएस ग्रेन्डीफ्लोरा*	वैलेरिएनेसी
7.	कटकी कूरु	*पिक्रोराहिजा स्कोफ्यूलैरिफ्लोरा*	स्कोफ्यूलेरिएसी
8.	हटजीश, सालभपन्जा, सलाप	*डैक्टीलोराइजा हटाजीरीआ*	आर्किडेसी
9.	*बैलेनौफौरा इनवोल्यूराटा*	बैलेनौफोरेसी	

हेमकुन्ड झील:

हेमकुन्ड झील 4200 मी0 की ऊंचाई पर स्थित है। चारों और पहाड़ियों से घिरा झील का स्वच्छ शीतल जल प्राकृतिक सौन्दर्य का एक अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है। झील की महत्ता सिक्खों के दसवें गुरु, श्री गुरु गोविन्द सिंह जी की वजह से है जिन्होंने इसके किनारे पर तपस्या की थी। पहले इस झील को लक्ष्मण कुन्ड कहा जाता था और इसी नाम का एक छोटा सा मन्दिर आज भी यहां है।

हेमकुन्ड पहुंचने के मार्ग में एक खड़ी चढ़ाई आती है जो कि भोजपत्र के जंगलों से होती हुई नम चट्टानों के ढलवां मार्ग पर जाती है। यह मार्ग पैदल या खच्चरों द्वारा तय किया जाता है। भोजपत्र के साथ ही *सौरबस फौलीओलोसा* नामक पौधा विशिष्ट रुप से पाया जाता है। इसके फल हिमालय में पाये जाने वाले भालू का प्रिय भोजन है।

यहां की वर्षा बसंत ऋतु में पाये जाने वाले पौधे करीब-करीब घाटी जैसे ही विभिन्न रंगों के शाकीय पौधे चट्टानों के बीच दरारों में तथा धरातल पर फैले हुए दिखाई देते हैं और सितम्बर तक इनमें फल आ जाते हैं। नीली पॉपी (मेकोनोप्सिस एक्यूलीआटा) कम नमी वाले भागों/इलाकों में

पाया जाता है। ऊपरी भाग में ढलान पर आकार ब्रहम-कमल (*साउस्सुरेआ औबवालाटा*) के पौधे पाये जाते हैं, जिनके जामुनी पुष्पपुंज बड़े-बड़े अधःपत्रों से ढके रहते हैं।

ऊंचाई पर पाये जाने वाले *प्रिमुला इकोनाईटस* तथा *कैस्योपी फेस्टीजीआटा* अधिकतर ढलानों पर पाये जाते हैं। झील की दूसरी तरफ हिमोढ़ों पर मुलायम रुयेंदार जामुनी नीले पुष्पपुंज वाले *साउस्सुरेआ सिम्पसोनीआना* तथा घने रुई जैसे रोंयदार जामनी पुष्प-कुंज वाले *सउसूरीआ गौसीपीफोरा* बहुत ही सुन्दर दृश्य प्रस्तुत करते हैं।

यहां पर हाल ही में अष्टकोणीय गुरुद्वारा लगभग चार-पांच करोड़ रुपये की लागत से बनाया गया है। इसका मुख्य द्वार झील की तरफ है तथा पिछले कई सालों से यह एक तीर्थ स्थान बन गया है। हर वर्ष यहां हजारों की संख्या में तीर्थ यात्री आते हैं जिन्हें यहां पर भोजन, चिकित्सा, औषधियां एवं रहने की मुफ्त सुविधा गुरुद्वारा प्रबन्धकों की तरफ से उपलब्ध है।

इस ऊंचाई पर स्थित यह झील धरती पर स्वर्ग के समान है। चित्रकार, छविकार तथा अन्य लोग अपने व्यस्त जीवन से कुछ समय निकालकर यहां पर आलौकिक आनन्द प्राप्त करते हैं।

पश्चिमी हिमालय की विषैली किन्तु उपयोगी वनस्पति - "एकोनाइटम"

सुरेन्द्र सिंह एवं पूरन चन्द्र विश्वकर्मा

जबसे मनुष्य का ध्यान पेड़-पौधों व वनस्पतियों तथा इनके अध्ययन की ओर आकर्षित हुआ, तभी से हिमालय क्षेत्र मुख्य रुप से चर्चा का विषय बना हुआ है। कई विश्व-प्रसिद्ध विद्वानों एवं वनस्पतिविदों ने हिमालय-क्षेत्र में पाई जाने वाली विभिन्न वनस्पतियों का वर्णन अपनी बहुमूल्य रचनाओं में किया है। इनमें से हूकर द्वारा लिखित "फ्लोरा ऑफ ब्रिटिश इंडिया" इस क्षेत्र की वनस्पतियों के अध्ययन का प्रमुख आधार है। हम देखते हैं कि इन ग्रन्थों में वर्णित कई पौधे वर्तमान में या तो लुप्त हो गये हैं, या अति दुर्लभ है किन्तु कुछ नये पौधे (जो विदेशी घास-पात हो सकते हैं), पुराने पौधों का स्थान लेते जा रहे हैं इन पौधों की दुर्लभता का प्रमुख कारण यह है कि प्रायः वनस्पतिज्ञों का ध्यान सदैव इनकी सुन्दरता व महत्व पर ही केन्द्रित रहा है। इनके अस्तित्व को एक टिकाऊ संरक्षण प्रदान करने की तरफ बहुत ही कम लोगों का ध्यान गया।

उत्तर-पश्चिम हिमालय में पाई जाने वाली वनस्पतियों में से लगभग 75 प्रतिशत वनस्पतियां औषधीय, आर्थिक, दैनिक एवं घरेलू उपयोग की हैं। इनमें से कुछ पौधे जहां एक ओर विषैले हैं तो दूसरी ओर उपयोगी एवं लाभदायक भी हैं। इसी श्रेणी के पौधों का एक वंश *एकोनाइटम* है।

वनस्पति शास्त्र की वर्गीकरण पद्धति के अनुसार *एकोनाइटम*, रैनुनकुलेसी कुल का वंश है। इनका वर्गीकरण मुख्यतया जड़ों की रचना पर आधारित है। भारत में इसकी लगभग 26 जातियाँ (5 उप जातियों सहित) पाई जाती हैं, जिनमें से लगभग 12 जातियाँ (4 उप जातियों सहित), उत्तर-पश्चिम हिमालय (कश्मीर से कुमाऊं तक) में पाई जाती हैं। इनमें से ऐ. *वियोलासियम* व ए. *हिटरोफिल्लम* को छोड़कर शेष सभी जातियाँ दुलर्भ हैं।

उत्तर-पश्चिम हिमालय-क्षेत्रों में पाये जाने वाले एकोनाइटों में से ए. *हिटरोफिल्लम* (अतीस) पुराने समय से ही, औषधीय उपयोग हेतु इन क्षेत्रों से पर्याप्त मात्रा में एकत्रित करके, विदशों को भेजे जाने वाली प्रमुख एकोनाइट है। ए. *वियोलासियम* की जड़े जिला किन्नौर (हिमाचल प्रदेश) के आदिवासी, स्वास्थ्यवर्धक के रुप में उपयोग में लाते हैं, जबकि शेष अन्य के, स्थानीय लोगों की जानकारी के अनुसार विषैले होने की सूचना मिलती है। यद्यपि सभी एकोनाइट विषैले होते हैं, तथापि इनकी कई जातियां कम या अधिक विषैली होती हैं। मुख्यतः ए. *बालफोरी*, ए. *फालफोनैरी*, ए. *डाइनोरिहजम* खास विषैले होते हैं। अधिक अल्कालाइड, एकोनिटीन या स्यूडैकोनिटीन धारक होने के कारण इनका सेवन खतरनाक भी है।

उत्तर-पश्चिम हिमालय में मिलने वाले सभी एकोनाइटों के प्रतिदर्श भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के

हावड़ा तथा देहरादून स्थित पादपालयों में उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ का संग्रह रॉयल बोटानिक गार्डन, क्यू (इंगलैंड) में भी उपलब्ध है।

औषधि के क्षेत्र में एकोनाइटम जातियों का विशेष स्थान होने के कारण स्थानीय एवं व्यापार के उद्देश्य से आने वाले लोगों द्वारा इन्हें अधिक से अधिक मात्रा में निकाला जाने लगा है। यदि यही क्रम अधिक समय तक चलता रहा तो इन क्षेत्रों से ये लुप्त भी हो सकते हैं। अतः इन के संरक्षण की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

उत्तर-पश्चिमी हिमालय के स्थानिक, विरल एवं आर्थिक रुप से उपयोगी पर्णांग (फर्न)

सुरेन्द्र सिंह एवं बिपिन बलोदी

उत्तर-पश्चिमी हिमालय 29-35° उत्तरी अक्षांश तथा 74-81° पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है जिसकी लम्बाई लगभग 800 कि०मी० एवं चौड़ाई 150 से 120 कि०मी० है। जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश के गढ़वाल एवं कुमाऊं तथा पंजाब और हरियाणा के कुछ हिस्से पश्चिमी हिमालय में समाहित हैं। यहां स्थान-स्थान पर समुद्रतल से ऊंचाई भिन्न है तदनुसार सम्पूर्ण क्षेत्र वानस्पतिक विविधता से परिपूर्ण एवं अद्वितीय है। पुष्पी, पौधों की भांति अपुष्पी पौधे भी पर्याप्त संख्या में पाये जातें हैं। विविधता की दृष्टि से भी अपुष्पी पौधें पुष्पी पौधो से नहीं हैं।

यहां पश्चिमी हिमालय में पाये जाने वाले कुछ विरल, लुप्तप्रायः स्थानिक (सीमित क्षेत्रीय) एवं कुछ उपयोगी पर्णांगों (फर्न) की विवेचना की जा रही है।

दीक्षित[1] के अनुसार भारत में पर्णांगों के लगभग 67 कुल, 191 वंश तथा 1000 से अधिक जातियां हैं इनमें से पश्चिमी हिमालय में लगभग 300 जातियां पाई जाती हैं।

धीर[2] ने लगभग 264 जातियों का विवरण दिया है। खुल्लर[3] ने 246 जातियों के सम्बन्ध में सूचना दी है जिसमें उन्होंने गढ़वाल और कुमाऊं क्षेत्र के पर्णांगों को सम्मिलित नहीं किया है। पांगती एवं पुनेठा[4] ने कुमाऊं के पर्णांगों पर विस्तृत कार्य किया है।

वन अनुसंधान संस्थान देहरादून के पादपालय तथा भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय हावड़ा में संरक्षित पादप नमूनों के अध्ययन से विदित होता है कि श्रीमती स्ट्रैची, विन्टरबाटम, दुथी, मैकिनान, हॉप, कर्नल डेविडसन, स्टेवार्ट इत्यादि ने इस क्षेत्र से पर्णांगों के नमून एकत्रित किये। जम्मू-कश्मीर व हिमाचल प्रदेश की तुलना में उत्तर प्रदेश के गढ़वाल व कुमाऊं क्षेत्र पर्णांगों की संख्या एवं विविधता में धनी हैं। इसका मुख्य कारण सम्भवतः पहले क्षेत्र में वर्षा का अधिक होना है।

---

1. दीक्षित, आर० डी० : सेन्सस आफ इंडियन टेरीडोफाइट्स, हावड़ा (1984)
2. धीर, के० के० : फर्न्स आफ नार्थ-वेस्ट हिमालया, जे० क्रेमर एण्ड क०, जर्मनी (1980)
3. खुल्लर, एस० पी० एव एस० एस० शर्मा वेस्टर्न हिमालय, (सपादित वाई० पी० एस० पागती) 1: 310-346 (1987)
4. पांगती, वाई० पी० एस० एव एन० पुनेठा : वेस्टर्न हिमालय, (सपादित वाई० पी० एस० पागती) 1: 389-412. (1987)

पर्णांग समुद्रतल से लगभग 4000 मी0 तक की ऊंचाई तक, छायादार एवं नम स्थानों पर, मॉस से ढके बांज-बुरांश (*कुएरकस, रहोडोडेन्ड्रोन*) आदि वृक्षों के तनों पर, चट्टानों, पथरीली दरारें, तथा झरनों व नदी-नालों के आस-पास अधिकता में पाये जाते हैं। कुछ पर्णांग दलदल वाले स्थानों एवं पोखर व तालाबों में भी अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं।

प्राकृतिक आवासों के अनुसार समस्त पर्णांगों को निम्न लिखित भागों में बांटा जा सकता है।

1. स्थलीय (टेरेस्ट्रियल) पर्णांग
2. चट्टानी (लिथोफाइटिक) पर्णांग
3. उपरिरोही (एपिफाइटिक) पर्णांग
4. जलीय (एक्वेटिक) पर्णांग

स्थलीय पर्णांग: पश्चिमी हिमालय के कुल पर्णांगों का 53 प्रतिशत भूमि पर ढलानों, घाटियों, झरनों व नदी-नालों के समीप उगते पाये जाते हैं। इन में *पोलीस्टिकम* की कुछ जातियां, *ड्रायोप्टेरिस, डिप्लैजियम, अथेरियम, मैटियूसिया, मैक्रोथैलीप्टेरिस्* क्रिस्टेल्ला *मेटाथैलीप्टेरिस, टेरिडियम, टेरिस, लुनाथेरियम* व इत्यादि की जातियां मुख्य हैं।

चट्टानी पर्णांग

ये कुल पर्णांगों का 20 प्रतिशत होते हैं जो मुख्यतया छायादार तथा नम स्थानों पर जलधारा के समीप की चट्टानों के ऊपर अथवा इनकी दरारें में उगते पाये जाते है। पर्णांगो के इस समूह में *अस्पलीनियम, पोलीस्टिकम* की कुछ जातियां, *सेस्टोप्टेरिस, वुडसिया, एडिएन्टम* इत्यादि की जातिया, *ओनीकियम फ्रेगिल, क्रिप्टोग्रामा नोथोलाइना, पेलाइया, चिलैन्थस, माइक्रोसोरियम,* इत्यादि की कुछ जातियां तथा *वुडवार्डिया यूनिजेमाटा* इत्यादि प्रमुख है।

उपरिरोही पर्णांग

कुल पर्णांगों का 25 प्रतिशत उपरिरोही होते है जो वृक्षों के तनो पर ही उगते पाये जाते हैं। इनमें *अरायोस्टेजिया, ल्यूकोस्टेजिया, ड्राइनेरिया, लेपिसोरस, पोलीपोडियम* आदि की जातियों के अलावा *आलिएन्ड्रा पाइरोशिया, मेकोडियम* इत्यादि मुख्य हैं।

उपरोक्त वर्णित पर्णांग समूहों के अतिरिक्त कुछ ऐसे पर्णांग भी होते हैं जो चट्टानों तथा वृक्षों के तनों, दोनों ही स्थानों पर समान अधिकार से उगने की क्षमता रखते हैं इनमें *सिलोटम नूडम, पौलीपोडियम, एस्प्लीनियम वुडसिया पाइरोशिया, क्रेपिडोमैनस, फाइमाटोप्टेरिस* तथा *लेपिसोरस* आदि की जातिया प्रमुख हैं।

जलीय पर्णांग

पर्णांगों के इस समूह में पानी में उगने वाले पर्णांग आते हैं। जिस प्रकार जलकुम्भी, सिंघाड़ा,

लेम्ना आदि पुष्पी पादप पानी में ही उगते हैं उसी प्रकार *सालवीनिया नेटान्स, अजोला पिन्नाटा, सेराटोप्टेरिस थैलिक्ट्रोइडेस, मार्सीलिया माइनूटा, मा. क्वाड्रीफोलिया* आदि पर्णांग खरपतवार की भांति झील, पोखरों, व तालाबों या धीमे बहाव वाले पानी में उगते पाये जाते हैं।

सालवीनिया नेटान्स कश्मीर की डल-झील एवं डलहौजी (हि0प्र0) में खजियार झील में मिलती है जबकि *अजोला पिनाटा, मार्सीलिया माइनूटा, सेराटोप्टेरिस थैलिक्ट्रोइडेस* 700-1300 मी0 की ऊंचाई पर दलदलों, पोखरों एवं तालाबों में सर्वत्र पाये जाते हैं।

विभिन्न कारणों से बहुत सी पर्णांग, जातियां अपने प्राकृतिक निवास स्थलियों में विरल होती जा रही है और बहुत सी जातियां संकटग्रस्त हैं। ऐसे विरल एवं संकटग्रस्त कुछ पर्णांगों की सूची निम्नवत है।

अस्प्लेनियम एटाकिनसोनी फ्रेजर-जेनकिन्स	(अस्प्लेनिएसी)
अ. नेसी क्रिस्ट0	(")
अ. पन्जाबेन्सिस बीर	(")
अ. सरेली हुकर	(")
अक्टिनोप्टेरिस रेडियेटा लिंक	(अक्टिनोप्टेरिडिसी)
अन्जियोप्टेरिस इवेक्टा होफम0	(अन्जियाप्टेरिडेसी)
एडिएन्टम वाट्टी बेकर	(एडिएन्टेसी)
कोलाइसिस पोटिफोलिया प्रेस्ल	(पोलीपोडियसी)
कोरनोप्टेरिस मैक्डोनेली टार्ड0	(अथीरिएसी)
ड्राइनारिया तिवेतिका चिंग	(पौलीयोडिएसी)
फेगोप्टेरिस कोनेक्टिलिस वाट0	(थैलीप्टेरिडेसी)
मैटियूसिया आरियन्टेलिस ट्रेम0	(ओनोकलीयेसी)
लेपिसोरस जैकोनेन्सिस चिंग	(पोलिपोडिएसी)
वूडसिया हान्कोकी बेकर	(वुडसिएसी)
साइथिया, स्पाइनुलोसा वालिच	(साइथिएसी)
स्टेनोग्राम्मा पोजोई इवान्स	(थैलीप्टेरिडेसी)

उपरोक्त पादपों के अतिरिक्त नीचे कुछ ऐसे पर्णांगों की सूची दी जा रही है जो केवल, पश्चिमी हिमालय में ही सीमित है।

अथीरियम प्रोलीफेरम मूरे	(अथरियेसी)
अ. मैकिनोनी होप	(")
ओनीकियम फ्रेगिल वर्मा व खुल्लर	(क्रिप्टोग्राम्मेसी)
एडिएन्टम एजवर्थी हूकर	(एडिएन्टेसी)
क्रिस्टेल्ला कुमाउनिका होल्टम	(थैलीप्टेरडेसी)
कैलिमेन्थेस डुबिया होप	(कैलिमेन्थेसी)

ड्रायोप्टेरिस चिंगिई नायर	(ड्रायप्टेरिडेसी)
पोलीस्टिकम गढ़वालिकम नायर व नाग	(ड्रायोप्टेरिडेसी)
पो. इन्डिकम खुल्लर व गुप्ता	(")
मिट्टारिया गढ़वालेन्सिस दीक्षित	(मिट्टारिएसी)
लेपिसोरस कश्यपी मेहरा	(पोलीपोडिएसी)
ले. लियोप्टेरिस वीर व तिर्खा	(")
स्टेनोग्रेम्मा हिमालइका (चिंग) इवाट्स	(थैलीप्टेरीडेसी)
स्टे. पोजोई (लैंग.) इवाट्स	(")

उपयोगी पर्णांग

उत्तर-पश्चिमी हिमालय के दूरदराज के क्षेत्रों में जहां आज भी स्थानीय निवासियों की दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं को पहुंचाना कठिन है अपनी दैनिक उपभोग की वस्तुओं के लिये स्थानीय लोग प्राकृतिक सम्पदा पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से निर्भर करते हैं। पुष्पी पादपों की भांति ही पर्णांगों का उपयोग कई प्रकार से किया जाता है। इनमें से कुछ खाने योग्य पर्णांग निम्न लिखित हैं।

अथीरियम स्किम्पेरी मौंग. एक्स फी0

गढ़वाल व कुमाऊं में "कुथरा" कहे जाना जाने वाले इस पर्णांग के युवा वृन्तों को उबाल कर सब्जी के रुप में प्रयोग किया जाता है।

डिप्लेजियम एस्कुलेन्टम (रेट्ज0) स्वा0

गढ़वाल और कुमाऊं में इसे "लिंगड़ी" कहा जाता है। इसके कोमल वृन्तों से सब्जी बनायी जाती है।

डि0 फ्रोन्डोसम (क्लार्क) क्रिस्ट0

गढ़वाल और कुमाऊं में "लिंगोड़ा" कहे जाने वाले इस पर्णांग की सब्जी बड़े चाव से खायी जाती है।

पोलीस्टिकम एक्यूलियाटम (लिन0) स्काट0

कोमल पर्णांगों से सब्जी बनाई जाती है।

हाइपोडिमाटियम क्रेनाटम (फोर्स्क0) कुहन0

इसके कोमल वृन्तों को सब्जी के रुप में प्रयोग किया जाता है।

मार्सीलिया माइनूटा लिन0

कश्मीर में इसे पफलू कहा जात है। इसे भी सब्जी के रुप में प्रयोग किया जाता है।

(आस्ट्रेलिया में इससे प्राप्त स्टार्च से रोटी बना कर खाई जती है)

नेफ्रोलेपिस आरिकुलाटा (लिन0) ट्रिमन

गढ़वाली में बानू कहे जाने वाले इस पर्णांग के ताजे गोल कंदों के अन्दर स्वादिष्ट तरल पदार्थ होता है जिसको स्थानीय लोग चाव से खाते हैं।

स्फेनोमेरिस चाइनेन्सिस (लिन0) मैक्सोन

इसके पत्तों को सुखाकर चायपत्ती के रुप में प्रयोग किया जाता है।

औषधीय पर्णांग

पुष्पी पादपों की भांति पर्णांगों के औषधीय उपयोग भी विश्वविख्यात हैं। पश्चिमी हिमालय में औषधि के रुप में प्रयोग किये जाने वाले कुछ पर्णांग हैं:

एडिएन्टम वेनुस्टम डी0 डॉन

इस पर्णांग का प्रयोग हंसराज नामक औषधि बनाने में किया जाता है जो कि ज्वर में तथा ठंडक पहुंचाने हेतु प्रयुक्त की जाती है।

एस्प्लीनियम ट्राइकोमेनेस लिन0

यह पर्णांग पेट के भीतरी भाग के फोड़े (अल्सर) के उपचार में प्रयोग किया जाता है। छाती एवं सिर के दर्द में भी इसे लाभकारी समझा जाता है। इसके निवारण के लिये इस सिगरेट-बीड़ी के रुप में प्रयोग करते हैं।

नेफ्रोलेपिस कॉर्डिफोलिया (लिन0) प्रेसल

कन्द तथा पर्णांग-पत्रों के रस को खांसी तथा गले के रोगों में लाभकारी समझा जाता है।

सेराटोप्टेरिस थैलिक्ट्रोइडेस (लिन0) ब्रोंग0

इस जलीय पर्णांग को चर्म रोगों तथा घावों में लेप बना कर लगाया जाता है।

पौड़ी तथा खिर्सू (गढ़वाल) की अल्प परिचित वनस्पतियों का अध्ययन

अनीस अहमद अन्सारी एवं घनानन्द भदोला

प्राचीनकाल से ही पौधों की औषधिक तथा आर्थिक उपयोगिता की जानकारी मनुष्य की भलाई तथा उत्थान के लिये प्राप्त की गई है तथा इस अध्ययन का महत्व निश्चय ही प्रत्येक देश के आर्थिक विकास पर पड़ा है। मनुष्य की संस्कृति के उद्गम से ही हिमालय आकर्षण का केन्द्र बना रहा है तथा शोधकर्ता इस ओर अधिक से अधिक संख्या में काम करने के लिये उद्यत हुए हैं। पौड़ी तथा खिर्सू हिमालय का बाहरी क्षेत्र है। इसकी समुद्र तल से ऊंचाई 1650-1800 मीटर के बीच तथा अक्षांश 30^{o}, व देशान्तर 78^{o}-46' है। इससे सम्बन्धित साहित्य की जांच से पता चलता है कि इस स्थान पर विस्तृत वानस्पतिक अध्ययन का कोई कार्य अब तक नहीं हुआ है। अतः इस विषय पर स्थानीय लोगों से मिलकर प्राप्त की गई जानकारी उपयोगी सिद्ध होगी। इस विवरण में प्रत्येक वनस्पति का वानस्पतिक नाम (लेखक के नाम के साथ), कुल तथा गढ़वाली नाम व उपयोग दिया गया है।

1. **एस्पैरागस रेसीमोसस** विल्ड (लिलिऐसी) "सतावर"
   इसकी जड़ को कूटकर तथा ठन्डे पानी में मिलाकर मवेशियों को पेट के रोग ठीक करने के लिए दिया जाता है। जड़ को सुखाकर तथा चूर्ण बनाकर कुछ दिनों तक लगातर प्रयोग किये जाने से यह बहुत ही बलवर्धक सिद्ध होता है।

2. **कोटिनस कोगाइरिया** स्कोप (एनाकार्डिएसी) "जलतुंग"
   इसके तने की टोकरी बनाई जाती है।

3. **डलफिनियम डेन्युडेटम** वालिच एक्स हुक0 एफ0 एवं थाम्स0 (रैननकुलेसी) "निर्विषी"
   पूरे पौधे या किसी भी हिस्से को मसलकर जो रस प्राप्त होता है उसको घाव पर लगाने से तुरन्त आराम मिलता है।

4. **फाइकस आरिकुलेटा** लाउर (मोरेसी) "तिमला"
   कच्चे फल की सब्जी बनाई जाती है व पके फल को खाया जाता है। पत्तियों को पानी में उबालकर गायों तथा भैंसों को दिया जाता है, जिससे दूध की मात्रा में वृद्धि होती है। पत्तियों से खाने की प्लेट बनाई जाती है जो शादी व अन्य समारोहों में प्रयोग होती है।

5. **फा. पात्माता** फोर्स्क (मोरेसी) "बेडू"
   पके हुए फल को खाया जाता है। तथा पौधे के लेटेक्स (दूध) को गहरे गड़े हुए कॉंटे को निकालने के लिये प्रयोग किया जाता है।

6. **जिरेनियम नेपालेन्स** स्वीट (जिरेनियेसी) "मूरिली"
समस्त पौधे को पानी में धोकर तथा पीसकर लेप बनाया जाता है। इस लेप को फोड़े तथा घाव को ठीक करने के लिए तथा मवेशियों में खुर की बीमरी को ठीक करने के लिये लगाया जाता है।

7. **ग्रेविया ऑप्टिवा** जे0 आर0 ड्रम0 (टीलिएसी) "भीमल"
पतले तथा नये तने को पानी में अच्छी तरह कूटकर कुछ देर तक हाथ से खूब मिलाकर सिर के बाल धोने से बाल मुलायम हो जाते हैं। तने से पत्तियों को निकालकर पानी में कुछ दिनों के लिये भिगा दिया जाता है। इनको फिर थोड़ा सा पीटकर रेशे प्राप्त किये जाते हैं, जिनसे अच्छी किस्म की रस्सी बनाई जाती है। रेशे निकाले हुए तने को "केडे" कहते हैं। इन्हें जल्दी जलने वाली लकड़ियों के रुप में अन्य लकड़ियों के साथ प्रयोग किया जाता है।

8. **लायोनिया ओवालिफोलिया** ड्रूड (इरिकेसी) "अंयार"
पत्तियों को कूटकर खुजली वाले स्थान पर लगाने से खुजली ठीक हो जाती है।

9. **मीरिका ऐस्कुलेन्टा** बुच - हैम0 एक्स डी0 डॉन (मीरिकेसी) "काफल"
तने की छाल का जुशाँदा पुरानी खाँसी तथा सर्दी के लिये दिया जाता है। पके हुए फलों को खाया जाता है इसके फल पेट की बीमारियों के लिए भी लाभदायक होते है।

10. **ऑक्जेलिस कार्निकुलेटा** लिन0 (ऑक्जेलिडेसी) "खट्टी-मीठी"
पूरे पौधे को भली भाँति साफ धोकर माँ के दूध के साथ मिलाकर खूब रगड़कर लुग्दी बनाई जाती है। इसको बारीक कपड़े में छानकर दो-दो बूंद आंख में डालने से "फूल" (आंख की पुतली में सफेदपन) ठीक हो जाती है।

11. **रयूमेक्स नेपालेन्सिस** स्प्रेना. (पॉलीगोनेसी) "अल्मोड़ू"
इसकी पत्तियों को कंडाली (*अर्टिका* वंश) लगे स्थान पर रगड़ने से उस स्थान की पीड़ा ठीक हो जाती है। इसकी जड़ पेट दर्द ठीक करने के काम आती है।

12. **सोलानम निग्रम** लिन0 (सोलानेसी) "किवई" "मकोई"
इसके पके फलों को दूब घास की जड़ के साथ काढ़ा बनाकर पीने स पुरानी खाँसी व जुक़ाम ठीक हो जाता है।

13. **ट्राइकोसेन्थस ट्राईकर्स्पीडेटा** लाउर0 (कुकरबिटेसी) "इन्द्रायणी"
इसकी जड़ चीनी या गुड़ के साथ कूट कर पानी में मिलाकर छानकर देने से जानवरों व मनुष्यों के पेट के गैस्ट्रिक व अम्लता के कारण हुआ दर्द ठीक हो जाता है। इसकी पत्तियों को सुखाकर चूर्ण बनाकर थोड़ा सा चूर्ण गुड़ के साथ लेने से बुखार ठीक हो जाता है।

14. **ट्राइफोलियम रीपेन्स** लिन0 (फाबेसी)
पूरे पौधे का काढ़ा बनाकर पीने से बुखार ठीक हो जाता है।

15. **अर्टिका आर्डेन्स** लिन्क. (अर्टिकेसी) "कन्डाली"
इसकी पत्तियाँ स्त्री रोग में प्रयोग की जाती हैं। तथा इसकी नई पत्तियों तथा कोपलों की गब्जी बनाकर खाई जाती हैं।

16. **वियोला कैनेसेंस** वालिच (वियोलेसी) "बनफसा"
इसके सूखे फूलों को उबालकर छानकर पीने से या चाय में डालकर पीने से सर्दी व जुकाम दूर हो जाता है।

17. **वेलेरियाना जटामाँसी** जोन्स (वेलेरियानेसी) "समेवा"
इसकी जड़ सुगन्धित धूप बनाने के काम आती है। सम्पूर्ण पौधे को जड़ सहित "वन हल्दू" (*हेडीकियम स्पाइकेटम* हेम0 एक्स स्मिथ) की जड़ के साथ मिलाकर लुग्दी तैयार की जाती है तथा दूब घास की छोटी सी गड्डी (ब्रुश) बनाकर इसको शादी में दूल्हा और दुल्हन के शरीर पर लगाकर स्नान कराया जाता है जिसे स्थानीय भाषा में "बान" कहते हैं। यह धार्मिक महत्व के साथ-साथ सुगन्धित व चर्म रोग के लिये उत्तम है।

18. **जेन्थोजाइलम आरमेटम** डीसी0 (रुटेसी) "टिमरु"
इसकी नई टहनियाँ दाँत साफ करने के काम आती हैं। इसकी टहनियाँ स्थानीय व्यक्तियों द्वारा धार्मिक कार्यों में उपयोग की जाती हैं। इसकी मोटी टहनियों से चलने की छड़ी बनाई जाती है जो कि देखने में सुन्दर होती है। ऐसी छड़ी सावधानी से काँटों को निकालकर विभिन्न आकार में बनाई जाती हैं।

19. **हेडीकियम स्पाइकेटम** बूच0 हेम0 एक्स0 स्मिथ (जिंजिबरेसी) "बन हल्दू"
इसकी जड़ को कूटकर मक्खन के साथ लेप बनाया जाता है जो कि फोड़े फुन्सियों में लगाने के लिये प्रयोग किया जाता है।

पश्चिमी हिमालय के उपयोगी पौधे और उनका संरक्षण

सी0 एल0 मल्होत्रा एवं बिपिन बलोदी

विशाल हिम-किरीट हिमालय, भारत की उत्तरी सीमाओं का प्रहरी, हमेशा से विश्व में कौतुहल का केन्द्र रहा है। इसकी ऊंची-ऊंची, सफेद चोटियां अपने आप में कई विचित्रतायें समाये हुये हैं। एक ओर पश्चिमी हिमालय से निकलने वाली जीवन दायिनी भागीरथी, अलकनन्दा, यमुना अपने स्वच्छ, निर्मल जल से उत्तरी भारत के अधिकांश भाग को सिंचित कर उसमें जीवन प्रवाह करती रही है, वहीं दूसरी ओर विभिन्न आकार-प्रकार एवं रंग-रुप के वृक्ष और पादप विश्व भर के वनस्पतियों एव प्रकृतिप्रेमियों के लिये आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। पश्चिमी हिमालय का क्षेत्र भारत के कुल 9 पादपभौगोलिक क्षेत्रों में से एक है जिसका विस्तार सुदूर कुमाऊं से लेकर जम्मू और कश्मीर तक है। जलवायु में विविधता के कारण यह क्षेत्र उष्णकटिबन्धीय (ट्रापिकल) वनस्पति से लेकर शीतकटिबन्धीय एवं हिमाद्रि (एलपाइन) वनस्पतियों का प्रतिनिधित्व करता है। हिमालय का यह क्षेत्र अपने अनुपम बर्फीले घास के मैदानों (बुग्याल) में अनेकों कल्याणकारी जड़ी बूटियों का अतुल भंडार समेटे हुए है।

वर्तमान समय में वनस्पति सर्वेक्षण का उत्तरी परिमण्डल (देहरादून) पश्चिमी हिमालय के वनस्पतियों के सर्वेक्षण का दुरूह कार्य कर रहा है। इसके अलावा कुछ अन्य वैज्ञानिक संस्थान तथा विश्वविद्यालय भी इस कार्य में संलग्न हैं। यद्यपि पिछले लगभग 100 वर्षों से लगातार हिमालय की वनस्पतियों का सर्वेक्षण होता रहा है पर शायद हम अभी भी इस क्षेत्र में पाई जाने वाली कई अनुपम पादप जातियों के विषय में नहीं जान पाये हैं। आज आवश्यकता है कि हम अपनी पूरी कार्यक्षमता के साथ इस कार्य में जुट जायें। पिछले कुछ वर्षों के वनस्पति सर्वेक्षण से स्पष्ट होता है कि आज भी कई जातियां, ज्ञात पश्चिमी हिमालय की वनस्पति में और जुड़ सकती हैं।

सुदूर हिमालय में भारतीय जहां वर्तमान सभ्यता का प्रभाव अभी नहीं पहुंचा है वहाँ आज भी स्वास्थ्य, ईंधन एवं अन्य आवश्यक साधन पूर्ण रुप से उपलब्ध नहीं हैं। यहां के निवासी अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अपने आसपास पैदा होने वाली वनस्पति पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से निर्भर करते हैं।

लगातार किये जा रहे सर्वेक्षणों के दौरान वनस्पतिज्ञ क्षेत्र विशेष में रहने वाले स्थानीय लोगों से पादपों तथा उनके उपयोग के बारे में जानकारियां एकत्रित करते रहते हैं। ऐसे अनेकों आर्थिक महत्व के उपयोगी पौधों की सूची नीचे दी जा रही है।

एनीमोन आबटयूसिलोबा डी0 डॉन0

पश्चिमी हिमालय में पाये जाने वाले ये सुन्दर सफेद फूल वाले एक वर्षीय पौधें होते हैं। इनके तने की छाल तथा पत्तियां तिल्ली एवं गुर्दे की बीमारियों तथा पीलिया में उपयोग होती है।

साइसर माइक्रोफिल्लम बेन्थ0

कश्मीर से कुमाऊं तक शीतकटिबन्धीय क्षेत्रों में झाड़ियों की छाँव में उगने वाले ये पौधे एक वर्षीय होते हैं। इनके पुष्प नीले रंग के होते हैं। इनकी ताजी पत्तियाँ शक्तिवर्धक होती हैं तथा विश्वास किया जाता है कि इसके उपयोग से जीवन वृद्धि होती है।

रि्हडम इमोडी वाल0 एक्स मेस्न0

कश्मीर से कुमाऊं तक ऊंचाई के क्षेत्रों में पाये जाने वाले इन बहुवर्षीय पौधों की पत्तियां बड़ी व चौड़ी होती हैं तथा फूल पीले-हरे होते हैं। इसकी जड़ें बवासीर तथा पुराने फेफड़ों के रोगों में उपयोगी होती हैं। इसे स्वास्थवर्धक भी माना जाता है। चोट लग जाने एवं कट जाने में भी उपयोगी होती है।

पोडोफिल्लम हेक्सेन्ड्रम रॉयल

कश्मीर से कुमाऊं तक ऊंचाई के शीतकटिबन्धीय क्षेत्रों में पाये जाने वाला यह एक बहुवर्षीय पादप होता है जिसके पुष्प सफेद रंग के होते हैं। इसके फल को उत्तेजक तथा पेट की बीमारियों में उत्तम समझा जाता है।

नार्डोस्टेकिस जटामांसी डी सी0

गढ़वाल तथा कुमाऊं के शीतकटिबन्धीय क्षेत्रों में पाये जाने वाले ये एक वर्षीय पौधे होते हैं तथा पुष्प नीले-सफेद रंग के होते हैं। इनकी सुगन्धित जड़ों से प्राप्त होने वाले तेल का उपयोग सुगन्धि निर्माण में किया जाता है।

बिस्टोर्टा विविपेरा (लिन0) ग्रे

कश्मीर से कुमाऊं तक पाई जाने वाली बहुवर्षीय झाड़ियां होती हैं जिनके फूल गुलाबी रंग के होते हैं। इनकी सख्त जड़ों का उपयोग सीने व फेफड़ों की बीमारियों में किया जाता है साथ ही हैजा तथा बवासीर में भी इसको उपयोगी समझा जाता है। इसे शक्तिवर्धक के रुप में भी प्रयोग किया जाता है।

बुपल्यूरम फालकेटम लिन0

पश्चिमी हिमालय के शीतकटिबन्धीय क्षेत्र में पाये जाने वाले ये ऊंचे, खड़े पौधे होते हैं तथा पुष्प छत्रक में होते हैं। इसकी जड़ें यकृत की बीमारियों में उपयोगी पायी गई हैं तथा इसका उपयोग मलेरिया में भी लाभदायक होता है।

एट्रोपा एक्यूमिनाटा रॉयल

कश्मीर घाटी में शीतकटिबन्धीय क्षेत्रों में कम मात्रा में पाया जाने वाला यह भारतीय बेलाडोना

एक से बहुवर्षीय पादप होता है, इसके पुष्प गन्दे सफेद रंग के होते हैं। इसकी जड़ें तथा पत्तियाँ दर्द निवारक के रुप में प्रयोग की जाती हैं।

बेटुला यूटिलिस डी० डॉन

कश्मीर से कुमाऊं तक, वृक्ष सीमा पर हिमाद्रि (एलपाइन) क्षेत्रों में पाये जाने वाले छोटे आकार के वृक्ष होते हैं। इनके तने की छाल चमकीली गंदे सफेद-हल्के भूरे रंग की होती है। इस पौधे की छाल का उपयोग फेफड़ों, खून और कान की बीमारियों में किया जाता है। इसका उपयोग पीलिया में भी किया जाता है। पौराणिक काल में इसकी छाल का उपयोग लेखन सामग्री के रुप में भी किया जाता था।

एकोनाइटम फाल्कोनेरी स्टाप्फ

गढ़वाल - कुमाऊं क्षेत्र में पाया जाने वाला यह पादप बहुवर्षीय होता है, जड़ें कन्दिल तथा फूल नीले रंग के होते हैं। इसकी कन्दिल जड़ें विषैली होती हैं तथा इनका उपयोग रक्त शुद्धिकरण व अन्य बीमारियों में किया जाता है।

एकोनाइटम हेट्रोफिल्लम वाल० एक्स रॉयल

हिमालय में कश्मीर से लेकर कुमाऊं तक ऊपरी शीतकटिबन्धीय क्षेत्रों में पाया जाने वाला यह पादप भी बहुवर्षीय होता है, इसकी जड़ें कंदिल तथा पुष्प सफेद-नीले होते हैं। इसकी कन्दिल जड़ें विषैली होती हैं तथा इनका उपयोग भी उपरोक्त वर्णित जाति के समान ही होता है।

डेक्टायलोराइजा हत्थाजरिया (डी० डान) सू

कुमाऊं से कश्मीर तक शीतकटिबन्धीय क्षेत्रों के घास के मैदानों में उगने वाले इस स्थलीय आर्किड की जड़ें मांसल तथा पुष्प गुलाबी-बैंगनी रंग के होते हैं। इसकी जड़ें स्वास्थ्य एवं शक्तिवर्धक मानी जाती हैं। इनको रक्त शुद्धिकारक भी समझा जाता है।

थैलिक्ट्रम फोलिओलोसम डी सी०

पश्चिमी हिमालय के इस बहुवर्षीय पौधे की पत्तियां संयुक्त प्रकार की तथा पुष्प सफेद और पीले-हरे होते हैं। इसकी जड़ों का उपयोग शक्तिवर्धक के रुप में किया जाता है। विश्वास किया जाता है कि इसके प्रयोग से आंखों की ज्योति बढ़ जाती है। यह पेट दर्द में भी लाभकर होता हैं।

उपरोक्त वर्णित पादपों के अतिरिक्त हिमालय का यह क्षेत्र सैकड़ों उपयोगी पौधों की खान है जिनका अध्ययन बड़े पैमाने पर जरुरी है।

पिछले कुछ वर्षों में निहित स्वार्थों के लिए हिमालय की इस बहुमूल्य सम्पत्ति का अनाधिकृत व अवैज्ञानिक दोहन किये जाने के समाचार प्रकाश में आये हैं। वैसे सरकार ने सहकारी समितियों के माध्यम से इस क्षेत्र में कुछ अधिकृत भेषज केन्द्रों की स्थापना की है तथा बहुत सी पादप जातियों को उखाड़ने और ले जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया है लेकिन स्थानीय लोगों के दबाव तथा वन विभाग की अपेक्षाकृत कम सतर्कता के कारण बहुमूल्य जड़ीबूटियों का अनाधिकृत व्यापार जारी है। यहां यह भी

सत्य है कि वन विभाग के छोटे कर्मचारी जो कि चुंगियों पर नियुक्त होते हैं इन जड़ीबूटियों का वैज्ञानिक ज्ञान न होने के कारण इन अनाधिकृत ठेकेदारों और अन्य लोगों द्वारा इस चोरी का पता नहीं लगा पाते। अतः प्रकृति द्वारा वरदान स्वरुप प्राप्त इन जड़ी बूटियों के इस प्रकार अनाधिकृत दोहन को रोकने के कार्य पर नियुक्त वन विभाग के कर्मचारियों को पुलिस अधिकार प्रदान किये जायें साथ ही वन विभाग की सहायता के लिये प्रत्येक रेंज में कम से कम एक वनस्पतिज्ञ (वर्गीकर) की नियुक्ति की जाय ताकि वे चोरी की जा रही जड़ीबूटियों की पहचान चुंगी पर ही करके अपराधियों को उपयुक्त सजा दिलाने में सहायक सिद्ध हों।

ईंधन के रुप में उपयोग किये जाने वाले पौधे

भोला दत्त नैथानी

बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण आज भारत ही नहीं वरन् समस्त विश्व में ईन्धन की समस्या है एवं इसके समाधान हेतु अनेक विकल्पों की खोज की जा रही है। यदि इस समस्या का उचित ढंग से निदान न निकाला गया तो भविष्य में अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। प्राचीन काल से चली आ रही पेड़ पौधों का ईंधन की आपूर्ति के लिए उपयोग के फलस्वरुप, वन सम्पदा का ह्रास होता जा रहा है। अत्यधिक मात्रा में वनों के कटान से अनेकों विशिष्ट उपयोगी पौधों का भी विनाश होता जा रहा है। यहाँ तक कि कई स्थानों में तो वनों के स्थान पर गिने चुने पौधे मात्र रह गये हैं। बजंर भूमि बढ़ती जा रही है। इसका प्रतिकूल प्रभाव पर्यावरण पर भी हो रहा है।

इसमें सन्देह नहीं कि ईंधन की समस्या के समाधान हेतु अनेक विकल्पों की खोज की जा रही है। परन्तु यह प्रयास किया जा रहा है कि जहाँ तक हो सके ईंधन समस्या का समाधान नवीनीकरण योग्य साधनों के माध्यम से किया जाये। इसका मुख्य कारण यह है कि अभी तक जितने भी विकल्पों को अपनाया गया है वे न केवल किसी विशेष स्थान के लिए ही सार्थक हैं अपितु इनके स्त्रोत भी सीमित हैं, उदाहरणार्थ प्राकृतिक गैस, तेल एवं कोयला इत्यादि। इसके अतिरिक्त ये उन्ही स्थानों के लिए उपयोगी हैं जहाँ पर आवागमन के साधन सुचारु रुप से उपलब्ध हैं। पश्चिमी हिमालय के दूर दराज व कम विकसित क्षेत्रों के लोग इन साधनों का उपयोग नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त आजकल अनेकों शहरों एवं गाँवों में सौर-ऊर्जा का भी ईंधन के रुप में प्रयोग किया जा रहा है, पर यह भी पूरी तरह मौसम पर निर्भर है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया है कि पेड़ पौधे ही एक ऐसा साधन है जिससे इस प्रकार की समस्या का स्थाई समाधान हो सकता है।

भारत में विभिन्न प्रकार की जलवायु पाई जाती है जो कि विभिन्न प्रकार के वनों के पनपने में सहायक है। इस प्रकार की भौगोलिक परिस्थितियाँ प्राकृतिक सम्पदा के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण हैं। जहाँ इन वनों में अपेक्षाकृत अनुपयोगी पौधे ईंधन के दृष्टिकोंण से महत्व रखते हैं वहीं विशेष जाति के पौधे भी अन्य उपयोगों के लिये महत्वपूर्ण हैं। अतः वनों का संरक्षण अनेक समस्याओं का समाधान करने में सहायक हैं।

पौधों के सर्वेक्षण के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कौन सा पौधा ईंधन के रुप में महत्वपूर्ण हो सकता है। इस प्रकार की प्रणाली के द्वारा पौधों का अनावश्यक विनाश भी रोका जा सकता है।

भारत के विभिन्न क्षेत्र के निवासी अपनी-अपनी सुविधाओं के आधार पर ईंधन के रुप में अलग-अलग पौधों का प्रयोग करते आ रहें हैं। अतः इस प्रकार की ईंधन आपूर्तियों को सुव्यवस्थित

एवं चिर स्थाई बनाने हेतु उचित ज्ञान दिया जाना आवश्यक है।

निम्न कुछ सुझाव ईंधन की समस्या के निदान में काफी सीमा तक सहायक हो सकते हैं:

1. जहाँ तक सम्भव हो सके ईंधन के रुप में प्रयोग किये जाने वाले पौधों का दोहन सीधे प्राकृतिक वनों से न कर इनकी आपूर्ति सामाजिक वानिकी द्वारा वनों का विकास करके की जाये अन्यथा उनके अत्यधिक कटान से वन पर कुप्रभाव पड़ सकता है।

2. ईंधन के रुप में प्रयोग किये जाने वाले पौधों का ऊर्जा विश्लेषण किया जाना चाहिए जिससे उन्ही पौधों का विशेष रुप से चयन किया जाये जो अधिक ऊर्जा देने में समर्थ हो अन्यथा कई पौधे ऐसे भी हैं जो इस दृष्टिकोण से अनुपयोगी होते हैं। अतः वैज्ञानिक ढंग से ईंधन के पौधों का चयन किया जाना चाहिए।

3. पौधों की उन विशिष्ट जातियों का प्रयोग करना जो थोड़े से समय में ईंधन आपूर्ति कर सकें।

देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के सर्वेक्षण से यह निष्कर्ष निकलता है कि ईंधन के रुप में प्रयोग किये जाने वाले पौधे विभिन्न स्थानों पर उनकी उपलब्धता पर निर्भर है। इस प्रकार आवश्यकता है कि वहाँ के क्षेत्रवासी यह ध्यान दें कि किस प्रकार इन पौधों को नष्ट होने से बचाया जा सकता है। निचे कुछ पौधों की सूची दी गई है, जो कि पश्चिम हिमालयी क्षेत्रों में साधारणतय ईंधन के रुप में प्रयोग किये जाते हैं। अतः इस बात की आवश्यकता है कि इन पौधों के संरक्षण पर ध्यान दिया जाना चाहिये जिससे आज की ईंधन की बड़ती हुई माँग की आपूर्ति की जा सके एवं ईंधनोपयोगी पौधे विनाश से बचाये जा सके।

ऐसर विलोसम, रस पार्वीफ्लोरा, इन्डिगोफेरा हेटरन्था, डेस्मोडियम टिलिएफालियम, बाउहीनिया रेसिमोसा, बा0 मालाबारिका, वुडफोरडिया फ्रूटिकोसा, केजिरिया ग्रेवियोलेन्स, रेन्डिया डुआटोरम, हिप्पोफी रहैम्नोइडेस, मैलोटस फिलिप्पेन्सिस, कारपिनस विमिनिया, कुएरकस की जातियाँ, *जूनिपेरस* की जातियाँ, *जाइलोस्मा लांगीफोलियम, पिट्टोस्पोरम फ्लोरीबन्डम, पि0 इरियोकारपम, बोसविलिया सिर्राटा, मीलिया अजिडैरेक, आइलैक्स डाईपेरिना, युओनिमस* की जातियाँ, *जिजिफस* की जातियाँ, *पिथेसेलोबियम डल्सी, माइकेलिया लेनुजिनोजा, फ्लैकोर्टिया सेपिएरिया, टैमिरिक्स गेलिका, मिरीकेरिया जरमैनिका, युरिया जेपोनिका, यु0 अक्युमिनेटा, पोगामिया ग्लैब्रा, माइमोसा रुबीकोलिस, एकेसिया ल्यूकोफ्लोइया, अलबीजिया* की जातियाँ, *रहोडोडेन्डोन* की जातियाँ, *केलीकार्पा आरबोरिया, मेलाइना एसियाटिका, ग्लोचिडियान वेलूटिनम,* इत्यादि।

पौड़ी गढ़वाल क्षेत्र में पाई जाने वाली खरपतवार वनस्पतियों का आर्थिक महत्व

घनानन्द भदोला एवं अनीस अहमद अन्सारी

भारत की वनस्पति सम्पदा का विवरण पौराणिक पुस्तकों में श्लोक के रुप में दिया गया है। ईसा से पूर्व संस्कृत में लिखी गई पुस्तकों में कुछ वनस्पतियों का वर्णन व उनकी उपयोगिता के बारे में काफी कुछ लिखा हुआ है। वनस्पतियों से सम्बन्धित बहुत सी प्राचीन पद्धतियों का प्रयोग, विभिन्न रोगों के उपचार हेतु आज भी किया जाता है।

इस लेख में साधारणतया खरपतवार या बेकार समझी जाने वाली वनस्पतियों का वर्णन किया गया है। इनमें कुछ के वर्णन प्राचीन आयुर्वेद की पुस्तकों में दिये गये हैं जिनके संस्कृत श्लोक तथा उनके अनुवाद भी प्रस्तुत हैं। प्रत्येक वनस्पति के लैटिन नाम, लेखक का नाम, कुल के नाम दिये गये हैं तथा स्थानीय गढ़वाली, संस्कृत तथा हिन्दी नाम भी दिये गये हैं। आयुर्वेदिक उपचार में स्थानीय लोगों द्वारा पौधों के उपयोग का वर्णन प्रस्तुत लेख में किया गया है।

पौडी गढ़वाल क्षेत्र में दो प्रकार की मुख्य फसलें उगाई जाती हैं। रबी में गेहूं, सरसों तथा खरीफ में मुख्यतः मंडुवा भुंगारु तथा कुछ दालें होती हैं। इनमें पाई जाने वाली खरपतवार तथा दीवारों व बेकार पड़ी भूमि पर अनुपयोगी समझी जाने वाली वनस्पतियों का वर्णन इनकी उपयोगिता के आधार पर किया गया है, जो कि स्थानीय लोगों द्वारा औषधि के रुप में तथा अन्य कई प्रकार से प्राचीन व वर्तमान समय में किया जाता रहा है।

1. **एकाइरेन्थस एसपेरा** लिन0 (एमरेन्थेसी)

इसको स्थानीय भाषा में "कुमुर" हिन्दी में "लटजीरा" तथा संस्कृत में "अपामार्ग" कहते हैं। यह खरपतवार के रुप में दीवारों पर, खेत की मेंड़ो पर बहुतायत से पाया जाता है।

आयुर्वेद मतानुसारः

"अपामार्गः सरस्तीक्ष्णो दीपनस्तिक्तकः कटु
पाचनो रोचनश्छर्दी कफमेदो हनिलापः
निहन्ति हृद्रुजाध्मार्श बण्डुशूलोदरापर्वाः"

अर्थात लटजीरा सारक, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, तिक्त, कटुरस, पाचक व रुचिकारक है। यह कै, कफ, मेद, वायु, हृदयरोग, आध्मान, अर्श, बण्डू, उदरशूल और क्षयनाशक है।

इसके उपयोग निम्नलिखित हैं:

1. लटजीरा में ज्वरनाशक गुण हैं। इसके पत्ते, गोलमिर्च व लहसुन एक साथ पीसकर गोली बनाकर प्रयोग करने से रोग दूर हो जाता है।
2. मधुमक्खियों, बर्रों, भौंरे इत्यादि विषाक्त कीट पतंगों के काटने पर इसको पीसकर लेप लगाने से शीघ्र ही जलन व तकलीफ दूर हो जाती है।
3. इसका संकोचक गुण प्रसिद्ध है। इसको अत्यधिक जल के साथ सेवन करने से अतिसार रोग ठीक हो जाता है।
4. उदरामय और रक्तामाशय के शुरु की हालत में इसको जल में बारीक पीसकर लेप बनाकर शहद या मिश्री के साथ लेने से यह रोग दूर हो जाता है।
5. लटजीरा का भस्म शहद के साथ लेने से खाँसी दूर हो जाती है।
6. अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में इसकी जड़, प्रसव वेदना को कम करने के लिये तथा एक दिन छोडकर आने वाले बुखार में प्रयोग की जाती है।

2. **ल्यूकस लेनाटा बेन्थम** (लेमिएसी)

इसको स्थानीय भाषा में "गुम्मा", हिन्दी में "गोमा" तथा संस्कृत में "द्रोणपुष्पी" कहते हैं। यह गेहूं की फसल में खरपतवार के रुप में काफी पाया जाता है। यह पौधा छोटा तथा हल्का सफेदपन लिये होता है। इसके सफेद फूल होते हैं।

आयुर्वेद मतानुसार:

"द्रोणपुष्पी गुरुः स्वादुरुक्षोष्णा वातपित्त कृत
सतीक्ष्णा लवणा स्वादुपाका कटवी च भेदनी
कफाम कामला शोथ तमक श्वास जन्तुतित्"

अर्थात द्रोणपुष्पी भारी, नमकीन, मधुर, कटु, रुक्ष, उष्णवीर्य, वायु और पित्तवर्द्धक, तेज, विशाक, और भेदक है और यह कफ, आंव, कामला, शोथ, तमक, श्वास और कृमि को नष्ट कर देती है।

इसके उपयोग निम्नलिखित हैं:

1. यह प्लीहा रोग में प्रयोग किया जाता है।
2. बहुत दिनों तक बुखार रहने के कारण अगर अरुचि पैदा हो जाती है तो इसके पत्तों को तलकर खाने से अरुचि दूर हो जाती है।
3. इसकी जड़ दमा रोग में प्रयोग की जाती हैं।
4. इसके पत्तों का रस शरीर में मालिश करने से शरीर में होने वाली खुजली ठीक हो जाती है।
5. पीलिया रोग में रोगी की आँखों में इसकी पत्ती का रस डालने से रोगी की आंखों का पीलापन दूर हो जाता है।

3. **सोलेनम सुराट्टेन्स बर्म0** एफ0 (सोलानेसी)

इसको स्थानीय भाषा में "जंगली भट्टा" हिन्दी में "भटकटैया" तथा संस्कृत में "कण्टकारी" कहते हैं। यह पौधा खुले स्थानों में पाया जाता है। यह पौधा कँटीला होता है व इसके फूल बैगनी रंग के होते हैं।

आयुर्वेद मतानुसार:

"कण्टकारी सरातिक्ता कटुका दीपनी लघु:
रुक्षोष्णा पाचनीकास श्वास ज्वर कफानिलान्
निहन्ति पीनस पार्श्व पीड़ा कृमि हृदामयान"

अर्थात- कण्टकारी सारक, तिक्त, कटुस, अग्निदीपक, लघु, रुक्ष, उष्णवीर्य, पीनस, पार्श्वशूल, कृमि और हृदयरोग का नाश करती है।

इसके उपयोग निम्नलिखित हैं:

1. इसकी जड़ का रस कण्ठ रोग में विशेष फायदा करता है। किसी प्रकार का स्वरभंग होने पर इसकी जड़ का रस कुछ दिनों तक नियमित लेने से फायदा होता है।
2. इसकी जड़ बच्चों के निमोनिया तथा खाँसी आदि में बहुत उपयोगी होती है।

4. **स्वर्शिया टेट्रागोना** एजवर्थ (जैन्शियानेसी)

इस पौधे को स्थानीय भाषा में "चिरैता" तथा हिन्दी में "चिरायता" कहते हैं। यह प्राय: खरीफ की फसल में देखने को मिलता है। इसमें सफेद फूल पाये जाते हैं।

आयुर्वेद मतानुसार:

"किरात सार को रुक्ष: शीतलास्तिक्त को लघु:
सन्निपात ज्वर श्वास-कफपित्तास्नदाहनुत
कास शोथ वृषा कुप्ठ ज्वरव्रण कृमि प्रणुत"

अर्थात - चिरायता सारक, रुक्ष, शीतल, तिक्त, रस और लघु है। यह सन्निपात, ज्वर, कफ, खार्श, शोथ, प्यास, ज्वर, मुहाँसे और कृमि का नाशक है।

इसके उपयोग निम्नलिखित हैं:

1. चिरायता के पूरे पौधे को पानी में खूब उबालकर काढ़ा बनाकर पीने से पुराने से पुराना बुखार ठीक हो जाता है।

2. जब सबेरे मुंह बेस्वाद हो जाता है, उससे बदबू आने लगती है, जीभ भारी महसूस होती है, तथा जीभ का बीच का भाग पीला व मोटा हो जाता है तब इसका चूर्ण गरम पानी से कुछ दिन सेवन करने से ये सब लक्षण दूर हो जाते हैं।

5. **सैन्टेला एसियाटिका** (लिन0) अरबन (एपिएसी)

इस पौधे को स्थानीय, हिन्दी व संस्कृत तीनों भाषाओं में "ब्राह्मी" के नाम से जाना जाता है।

आयुर्वेद मतानुसार:

"ब्राह्मी हिमरसा तिक्ता लघुर्मेध्या च शीतला
कषाया मधुरा स्वादु पाकायुष्या रसायनी
स्वर्या स्मृतिप्रदा कुष्ठ पाण्डुमेहास्त्रका सजित
विष शोथ ज्वर हरी तद्वन्मण्डूकपर्णिनी"

अर्थात् - ब्राह्मी, सारक, मधुर, स्मरणशक्ति के बढ़ाने वाला, स्पर्श शीतल, आयु बढ़ाने वाला रसायन, स्वरवर्द्धक, कुष्ठ, पाण्डु, मेह, रक्तोदष शोथ और ज्वर नाशक है।

इसके उपयोग निम्नलिखित हैं:

1. ब्राह्मी बलरक्षक व स्मरणशक्ति को बढ़ाने वाली है।
2. पेट की खराबी व अन्य कारणों से जब मुंह में घाव हो जाते हैं, तो इसको पीसकर लेप बनाकर रात को सोते समय तीन चार दिन तक प्रयोग करने से यह घाव ठीक हो जाते हैं।
3. शरीर के किसी भाग में अत्यधिक खुजली होने पर इसको उस भाग पर रगड़कर लगाने से आराम मिलता है।

6. **साइनोडोन डेक्टाइलोन** (लिन0) पर्स0 (ग्रैमिनी)

इस पौधे को स्थानीय व हिन्दी भाषा में "दूब" तथा संस्कृत भाषा में "दुर्वा" कहते हैं। यह सामान्य घास है। यह प्रायः सभी स्थानों में पाई जाती है। हिन्दू धर्म में यह एक पवित्र वस्तु मानी जाती है। हर प्रकार के धार्मिक कार्यों में यह प्रयोग की जाती है।

आयुर्वेद मतानुसार:

"दुर्वात तुबरा शीता मधुरा तृप्तिदायिनी
पित्त वृडवान्ति दाहास्य दोषश्रम कफापहा
मूर्च्छरुचि विसर्पाश्च भूतबाधाज्च नाशयेत"

अर्थात दूब मधुर कषाय रस है, शीतवीर्य, तृप्तिदायक और पित्त, तृष्णा, वमन, दाह, रक्त - दोष, थकावट, कफ, मूर्च्छा, अरुचि, विसर्प व भूतबाधा नाशक हैं।

इसके उपयोग निम्नलिखित हैं:

1. नकसीर (नाक से रक्त आना) आने पर इसका रस नाक में डालने से रक्त आना बन्द हो जाता है।
2. पुराने उदररोग में यदि पेट से खून निकलता है तो इसको बारीक पीसकर व उबालकर काढ़ा बनाया जाता है तथा बिलकुल ठन्डा करके एक सप्ताह तक प्रयोग करने से काफी लाभ मिलता है और रक्त आना बन्द हो जाता है।
3. इसके जड़ सहित पूरे पौधे को पीसकर तथा ताजा रस निकाल कर समान मात्रा में एल्कोहल मिलाकर "होम्योपैथिक अरिष्ट" तैयार किया जाता है, जो विभिन्न बीमारियों में प्रयोग किया जाता है।

7. **अर्टिका अर्डेन्स** लिंक (अर्टिकेसी)

इसको स्थानीय भाषा में "कण्डाली" हिन्दी में "बिच्छू घास" तथा कुमायूं में "सिसौण" कहते हैं। अंग्रेजी भाषा में इसको "नेटलग्रास" कहते हैं। पर्वतांचल में यह सर्वत्र उगती है। ऋग्वेद में जो गुणगान सविता, उषा, इन्द्र का मिलता है वही पर्वतीय लोकगीतों में "कण्डाली" या "सिसौण" का किया गया है।

इसके उपयोग निम्नलिखित हैं:

अ) दवा के रुप में

1. पाँव या शरीर के किसी भाग पर मोच आने पर कण्डाली की चार झपाकें मारने से तुरन्त आराम मिलता है।
2. इसकी पत्तियों को स्थानीय लोग स्त्री रोगों में प्रयोग करते हैं।
3. वायु विकार से दर्द होने पर स्थानीय लोग इसको पीसकर लगाते हैं, तथा उबालकर सब्जी की तरह प्रयोग करते हैं। इससे लाभ मिलता है।
4 फुन्सियों तथा बालतोड़ में इसका लेप लगाने से तुरन्त आराम मिलता है।

(ब) तन्त्र मन्त्र में

1. पर्वतीय अन्चल में प्राचीन समय से ही कण्डाली के बिना तान्त्रिक और तन्त्र-मंत्र (रखौली, झाड़ताड़) की परिकल्पना ही नहीं हो सकती। सर्वप्रथम तान्त्रिक कण्डाली की टहनी माँगता है और एक ही झपाक में "छल" "छाया", "प्रेत" उतर आता है, और प्रेत पीड़ित व्यक्ति एकदम सामान्य हो जाता है। ऐसा स्थानीय लोगों का विश्वास है।

2. स्थानीय लोग अधिकतर प्रसूतिका गृह के बाहर टोने, टोटके के रुप में कण्डाली की टहनी लटका देते हैं। इनका विश्वास है कि ऐसा करने से प्रसूतिका को "सैदों" के चंगुल से मुक्ति मिलती है।

(स) सुरक्षात्मक उपयोगिता

खेत की मेंड व घर के पिछवाड़े पर इसको उगाने से खेत की रक्षा होती है कोई चोर चोरी नहीं कर सकता। अपनी रक्षा करने के लिए भी यह प्रयोग की जाती है।

(द) दण्ड देने के लिए

कण्डाली को देखकर बड़े बड़े चोर उचक्कों की रुह काँप जाती है। इसको जरा शरीर पर लगा देने से वे सब कुछ उगल देते हैं।

(ध) मनुष्यों के भोजन व पशुओं के चारे के रुप में

1. स्थानीय लोग इसकी कोमल पत्तियों की सब्जी बनाकर खाते हैं जो बहुत पौष्टिक व स्वादिष्ट होती है।

2. पशुओं को चारे के रुप में प्रयोग किया जाता है।

पश्चिमी हिमालय के कुछ खाद्योपयोगी "खुम्ब" (मशरुम)

प्रदीप कुमार घोष एवं पूरन चन्द्र विश्वकर्मा

खुम्ब या मशरुम के नाम से ज्ञात ये खाद्योपयोगी पौधे अपुष्पी पौधों की कवक श्रेणी में आते हैं। पुष्पी पौधों की भांति ये भी विभिन्न प्रकार के होते हैं सूक्ष्म से लेकर बड़े व ठोस आकृति वाले; रक्षक (*पेनीसिल्लियम*) से भक्षक (*अमानिता*) तक; व उपयोगी (मोरल व मशरुम) से हानिकारक (रस्ट्स व स्मट्स)। इन सभी फफूंदों में समानता है तो सिर्फ एक, पर्णहरित (क्लोरोफिल) का न होना।

कुछ समय पहले तक "मशरुम" शब्द का प्रयोग जंगलों में पाये जाने वाले खुम्ब (*अगेरिकस कम्पेस्ट्रिस, अ. आर्वन्सिस*) या कृत्रिम रुप से उगाये जाने वाले खुम्बों (*अ. बाइस्पोरिस*) तक ही सीमित था, परन्तु अब "मशरुम" शब्द का प्रयोग व्यापक रुप से किया जाने लगा है, और इसके अन्तर्गत सभी मांसल व खाने-योग्य फफूंदों को रखा गया है। पश्चिमी हिमालय में ऐसे फफूंदों की लगभग 650 जातियां हैं, परन्तु इनमें से खाद्योपयोगी जातियों की संख्या लगभग 20 है जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं:-

1. **कैन्थारेल्लस साइबेरियस:** अण्डे के आकार वाला यह मांसल पीला कवक चीड़ के जंगलों में पाया जाता है। बाजार में बेचने के लिए इसे काफी मात्रा में एकत्रित किया जात है। पकाने के लिये इसे आसानी से सुखाया भी जा सकता है। *कैन्थारेल्लस* की अन्य खाने योग्य जातियां *कै. कांग्रेगाटस, कै. इन्फन्डिबुलीफार्मिस, कै. नाइगर* व *कै. कार्नुकोपिआइडेस* हैं। ये सभी जातियाँ साधारणतया पर्णपाती वनों में गिरी हुई पत्तियों के बीच पाई जाती हैं।

2. **अगारिकस:** पश्चिमी हिमालय में इसकी लगभग 15 जातियां पाई जाती हैं, जो प्राय: जमीन पर ही उगती हैं। इसकी भारत में पाई जाने वाली अधिकतर जातियाँ खाई जाती हैं। इनमें से सबसे अधिक स्वादिष्ट *अ. कम्पेस्ट्रिस* (फील्ड मशरुम) व *अ. आर्बोन्सिस* (हॉर्स मशरुम) होते हैं। परन्तु सबसे अधिक उगाई जाने वाली जाति *अ. बाइस्पोरस* है।

3. **वोल्वारियेल्ला:** इसकी लगभग 13 जातियां भारत के गर्म स्थानों में पाई जाती हैं। इनमें से *वोल्वारियेल्ला वोल्वेसिया* (पैडिस्ट्रा मशरुम) का बहुत अधिक उत्पादन किया जाता है। साधारणतया पाई जाने वाली कुछ अन्य जातियों में *वो. पर्वुला, वो. थ्वेट्सी* व *वो. टेरेस्ट्रिया* मुख्य हैं।

4. **टर्मिओमाइसेस माइक्रोकार्पस:** यह एक छोटा व सफेद कवक है, जो अधिकतर दीमक से प्रभावित स्थानों पर उगता है। इसे भी खाया जाता है।

5. **प्लूटियसः** भारत में इस वंश की लगभग 8 जातियाँ हैं जिनमें से 2 पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में पायी जाती हैं। ये अधिकतर स्थलज व काष्ठीय होती हैं। ये जातियाँ उष्ण व समशीतोष्ण स्थानों में पाई जाती हैं। इनमें से केवल *प्लू. सर्विनस* खाद्योपयोगी है।

6. **कोप्रीनसः** यह 25 से अधिक जातियों वाला एक विशाल वंश है। इसकी जातियाँ गोबर पर या खाद वाले स्थानों पर उगती हैं। *को. कोमाटस* को यूरोपीय विद्वान लेखक खाद्योपयोगी कवकों मे सबसे अच्छा मानते हैं। दूसरी जाति *को. मिकेसियस, पोपुलस, सैलिक्स* व *रोबीनिया* की जड़ों के आस-पास या कटे हुए तनों के ऊपर 10-30 के समूहों में उगती हैं। कोमल व चमकीले छिलकों के कारण साहित्य में इसे चमकदार कोप्रीनस कहा गया है। चूंकि ये समूहों में उगते हैं, अतः इन्हें आसानी से एकत्रित किया जा सकता है।

7. **पल्यूरोटस आस्ट्रेयाटसः** सीप (ओइस्टर) के नाम से जाना जाने वाला यह कवक बहुत स्वादिष्ट होता है। स्थानीय लोगों में यह "डिंगरी" के नाम से जाना जाता है। सुखाने के बाद इसे अच्छी तरह सुरक्षित रखा जा सकता है। जम्मू-कश्मीर के मैदानी क्षेत्रों में यह एक वाणिज्यिक महत्व की वस्तु है, जिसे अन्य देशों को निर्यात भी किया जाता है। यह *यूफोर्बिया रायलेआना* के ऊपर उगता है। *प. संजोरकाजू* नामक जाति को जम्मू-कश्मीर, सोलन व बंगलोर के मशरुम केन्द्रों पर सफलतापूर्वक उगाया जा रहा है।

8. **स्पार्सिस क्रिस्पाः** इसको साधारणतया "लकड़ी पर उगने वाली गोभी" या "लकड़ी के ऊपर उगने वाला मांस" कहा जाता है। इसका एक ही पौधा एक परिवार के भोजन के लिए पर्याप्त है। यह प्रायः शंकुधारी वृक्षों की जड़ों के आस-पास उगती है।

9. **मोर्चेल्लाः** यह अपने विचित्र स्वरुप (मानव-मस्तिष्क के समान) के कारण सरलता से पहचाना जा सकता है। यह भी अधिकतर शंकुधारी वृक्षों की जड़ों के आस-पास ही उगता है। सुखाये गये मोर्चेल्ला (गुच्छी) रु0 1500/- प्रति कि0ग्रा0 या इससे भी ऊंची दर से बिकते हैं। विदेशी मुद्रा अर्जित करने का यह एक अच्छा स्रोत है। इस वंश की लगभग 8 जातियाँ पश्चिमी हिमालय के मुख्यतया शंकुधारी वृक्षों की जड़ों के आस-पास उगती हैं। ऐसा कहा जाता है कि ये तभी उगती हैं, जब आकाश में गर्जन होती है। इनमें से सबसे अधिक स्वादिष्ट *मो. हाइब्रिडा* व *मो. कोनिका* होते हैं। *मो. हिमालेंसिस* पश्चिमी हिमालय की स्थानीय है। अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी इसकी जातियों को कृत्रिम रुप से उगाने में सफलता नहीं मिल सकी है।

10. **रामेरिआ अपिकुलेटाः** यह पश्चिम हिमालय का स्वादिष्ट खाद्योपयोगी कवक है। इस खाद्योपयोगी कवक की अन्य जातियों में *रा. आब्टुसिस्सिमा, व रा. रुफेसेन्स* आदि प्रमुख हैं। ये जातियां वर्षा ऋतु में पश्चिमी हिमालय के शंकुधारी वृक्षों की जड़ों के आस-पास पाई जाती हैं। अब तक *रा0* वंश की लगभग 19 जातियों के पाये जाने की सूचना है।

पश्चिमी हिमालय के कुछ अन्य खाद्योपयोगी कवक *हिडनम रिपैन्डम, हि. इम्ब्रीकैटम, हि. लैविगैटम, हेरिसियम कोराल्लोइडिस, हे. एरिनासअस, फेओडॉन एस्प्राटस, रामेरिआ फ्लावा, क्लावेरिया वर्मिकुलैरिस* हैं।

फसली पौधों के स्वजात सम्बन्धी

सर्वेश कुमार

पौधों की उन्नत किस्मों के उत्पादन एवं पारस्परिक जातीय सम्बन्धों की जानकारी प्राप्त करने के लिए स्वजात सम्बन्धियों का अध्ययन अति आवश्यक है। इन पौधों का एक ही स्थान पर संघनित रहना फसलीय पौधों के विविधतापूर्ण केन्द्रों पर निर्भर करता है। भारतीय उपमहाद्वीप भी ऐसे ही केन्द्रों में से एक है जहाँ फसली पौधों के स्वजात सम्बन्धी काफी संख्या में पाये जाते हैं। पौधों की यह विभिन्नता आसपास के क्षेत्रों में जीन प्रत्यावर्तन द्वारा और भी समृद्ध हो गई है। देश के उत्तरी एवं उत्तर- पूर्वी भाग, पादप विभिन्नता के विशेष महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यही कारण है कि फसली पौधों के स्वजात सम्बन्धियों का इन क्षेत्रों में बाहुल्य है।

पौधों के स्वजात सम्बन्धियों के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए पादप-विविधता केन्द्रों का अध्ययन एक आवश्यकता है। इन अध्ययनों के द्वारा वनस्पतिज्ञ इस अति महत्व की अनुवांशिक सम्पदा के संग्रहण एवं संरक्षण के बारे में अपेक्षित जानकारी प्राप्त कर इस दिशा में उचित प्रयास करने में सफल हो सकेंगे। प्रस्तुत लेख में पश्चिमी हिमालय क्षेत्र मे पाई जाने वाली ऐसी ही कुछ पादप जातियों का उल्लेख किया गया है जो अन्न, फल एवं सब्जियों आदि अनेक फसलों के स्वजातीय सम्बन्धी प्रमाणित हो चुके हैं।

पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में जौ (*हार्डियम बल्गेयर*) के स्वजातीय सम्बन्धियों में *हा0 म्यूरीनम* के अतिरिक्त अन्य भी कई *हॉर्डियम* की जातियाँ मिलती हैं। गेहूं से सम्बन्धित कई स्वजातीय किस्मों में *एलाइमस डाहुरीकस, ए0 नूटेन्स* तथा *लेमस सिकेलिनस* आदि पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में मिलती हैं।

दालों में पाई जाने वाली प्रमुख स्वजातीय किस्मों में *विग्ना ट्राइलौबेटा, वि0 कपैन्सिस,* तथा *साइसर माइक्रोफिल्लम* आदि के नाम उल्लेखनीय है जिनमें से कुछ शीत रेगिस्तानी प्रदेशों जैसे लद्दाख आदि में 3500 मीटर से भी अधिक ऊंचाई पर मिलते हैं व वहाँ के निवासियों के भोजन का मुख्य अंग हैं।

फलों के स्वजात सम्बन्धियों में जहाँ उपशीतोष्ण क्षेत्रों में *जिजीफस वल्गेरिस, फाइक्स पामेटा* आदि बेर व अंजीरों का प्रतिनिधित्व करते हैं वहीं शीतोष्ण क्षेत्रों में आड़ू, अंजीर, आलू बुखारा, नाशपाती, सेब एवं रसभरी आदि फलों की जंगली किस्में बहुतायत में मिलती हैं। इनमें *प्रूनस प्रोस्ट्रेटा, प्रू0 टोमेन्टोसा* केवल पश्चिमी क्षेत्रों में ही सीमित है जबकि *प्रू0 कोर्नुटा* तथा *प्रू0 नेपालैन्सिस* आदि जातियाँ हिमालय के अन्य क्षेत्रों में भी फैल गई है। इसी प्रकार *पाइरस कम्युनिस* मुख्यतया कश्मीर में तथा *पा0 कुमाँऊनेन्सिस* पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में ही सीमित है जबकि *पा0 पशिया* एवं *पा0 बक्काटा* उत्तर पूर्वी क्षेत्रों में भी उगते हैं।

सोर्बस आकुपेरिया, रुबस फ्रूटी-कोसस, राइब्स नाइग्रम एवं *रा0 ग्लेसिएलिस* आदि रोजेसी व

ग्रास्सुलैएसी कुल के फलों के स्वजात सम्बन्धी भी पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में बहुतायत में मिलते हैं।

लिलिएसी कुल के *एलियम* वंश की जातियों (जिनमें प्याज, लहसुन आदि आते है) के स्वजात सम्बन्धियों में *ए0 रुबेलम, ए0 स्कीनोप्रेसम, ए0 जेक्यूमोण्टी* तथा *ए0 स्ट्रेचियाइ* आदि महत्वपूर्ण जातियाँ पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में मिलती हैं जिन्हे स्थानीय निवासी मसालों के रुप में प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार *केरम बल्बोकास्टेनम* तथा *के0 कावी* आदि *केरम* की जंगली जातियाँ इस क्षेत्र में लगभग 3600 मीटर की ऊंचाई तक मिलती हैं।

गन्ने की एक स्वजात किस्म *सेकेरम फिलीफोलियम* लगभग 2500 मीटर की ऊंचाई पर केवल पश्चिमी हिमालय क्षेत्र से ही प्राप्त की जा सकी है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्वजात किस्में फसली पौधों से निकटतर अथवा दूरस्थ सम्बन्ध बनायें हुए हैं। *पाइरस, प्रूनस* एवं अन्य शीतोष्ण जातियों में आपसी सम्बन्धों में काफी निकटता मिलती है। स्वजातीय सम्बन्धियों में कई जातियाँ तो सीमि क्षेत्री भी हैं। *पाइरस कम्युनिस* का क्रास *पा0 पाइरीफोलिया* से सम्भव है। कभी- कभी गुण विभेद के आधार पर वंशीय स्तर पर भी निकटतर सम्बन्धी किस्मों को अलग अलग किया गया है जैसे *सोर्बस* एवं *मेलस* आदि। इन सभी स्वजात किस्मों का अपने निकटतर फसली सम्बन्धियों के सम्बन्ध और अधिक स्पष्ट करने के लिये प्रयोगात्मक सत्यापन की आवश्यकता है। यद्यपि भौगोलिक भिन्नता एवं अन्य पारिस्थितिकीय प्रभावों के कारण ऐसे अध्ययन आसानी से सम्भव नहीं है परन्तु सभी क्षेत्रों की ऐसी स्वजातीय किस्मों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के हर सम्भव प्रयास किए जाने चाहिये व उपयुक्त किस्मों में संकरण की सम्भावनाओं का पता लगाया जाना चाहिये जिससे कि विभिन्न वंश-सेतुओं का ज्ञान हो सके व इन वंश भण्डारों में आशानुरुप सृजनात्मक परिवर्तनों द्वारा उपयोगी गुणों का समावेश किया जा सके। धान की फसल में रोग प्रतिरोधी क्षमता का समावेश तथा *ट्रिटीकेल* जैसे मानव निर्मित फसली पौधों ने इस दिशा में आशा की किरण दिखाई है व पूर्ण गुणवन्तायुक्त पौधों की उत्पत्ति सपना न होकर सच्चाई के रुप में प्रस्फुटित होती दिखाई दे रही है। अब वह दिन दूर नहीं जब हम शीत सहन क्षमता युक्त, सूखा प्रतिरोधी व प्रतिकूल परिस्थितियों को आसानी से सह सकने योग्य फसलें उगानें में पूर्ण समर्थ हो सकेंगें। आवश्यकता केवल सुनियोजित व समन्वित अध्ययन व कठिन परिश्रम की है जिसके बल पर आज के जंगली पौधों को सुरसा-मुख सी बढ़ती जनसंख्या का पेट भरने के लिये अनुकूल आहार में परिवर्तित किया जा सकेगा।

वाल्मीकि रामायण में वन और वन्य जीवन

गिरिजा शंकर त्रिवेदी

समस्त प्राणिजात और मानवजाति का जन्म, परिपोषण तथा संवर्धन वन्य प्रकृति की ममतामयी गोद में हुआ है। पृथ्वी पर मानव के अवतरण का स्वागत करने के लिए लगातार बीस करोड़ वर्ष तक उसके अग्रज पेड़ पौधों ने एक पृष्ठ भूमि की रचना की तथा जीव-जन्तुओं ने उसकी अगवानी के साज सजाये। धरती पर उतरे मानव को सघन वन, नदी-नद, निर्झर, कगार-कछार, मरुस्थल और जलधार के बीच जीवन को सुव्यवस्थित करने के लिए संघर्ष पर संघर्ष करने पड़े। धात्री प्रकृति ने हर स्तर पर उसका साथ दिया। फिर धीरे-धीरे आत्मीय रहे वन्य जन्तुओं से उसने मुंह मोड़ा तथा उनका पड़ोस छोड़ा। सभ्य और सुसंस्कृत होने के बाद वत्सला प्रकृति से न केवल विमुख होकर बल्कि उस पर प्रहार करता करता मनुष्य आज जहां जा पहुंचा है वह सर्वविदित है।

बाल्मीकि पहले महान् चिन्तक कवि हैं जो पशु पक्षियों और मनुष्यों की भांति वृक्ष में भी चेतना स्वीकार करते हैं। यह बात और है कि वृक्षादि में वह चेतना प्रच्छन्न होती है। वास्तव में जीवन-चेतना एक ही है, मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि उस जीवन चेतना की अलग-अलग आभायें हैं। अतः इस जीवन का कोई एक स्रोत होना चाहिए। वाल्मीकि समस्त प्राणियों का एक स्रोत स्वीकार करते हैं और "सर्वभूत समुद्भव" का प्रतिपादन करते हैं[1]। इस दृष्टि से कर्दम, विकृत, शेष, संश्रय, बहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, विवस्वान्, अरिष्टनेमि और कश्यप जीवन तथा जगत् को पूर्णता के साथ रुपायित करने वाले क्रमिक विकास की श्रृंखला की परस्पर जुड़ी हुई कड़ियां हैं।

रामायण के अरण्यकाण्ड में जटायु के मुख से वाल्मीकि ने कहलाया है कि पूर्वकाल में वन और समुद्रों सहित सारी पृथ्वी दैत्यों के अधिकार में थी

दितिस्त्वजनयत् पुत्रान् दैत्यांस्तात यशस्विनः
तेषामियं वसुमती पुरासीत् सवनार्णवा।। रामा. 3.14-15 1/2

अव्यवस्था का नाम दिति है और पुराकाल में वन एवं अर्णव सभी अव्यवस्थित थे। आदिकवि के अनुसार कश्यप की पत्नी अनला ने समस्त पवित्र फल वाले वृक्षों को जन्म दिया[2]। वस्तुतः अनला पृथ्वी के अन्दर छिपी कोई ऐसी ऊष्मा रही होगी जिसमें खाद्य फलवाले वृक्षों के बीज निहित रहे होंगे जो कश्यप तत्व के सम्पर्क में सृष्टि के पहले चरण में सुगबुगा उठे। महाभारतकार भी इस सदर्भ में आदिकवि का अनुगमन करते हैं।

---

1 रामा 3-14-5

2 सर्वान् पुण्यफलान् वृक्षाननलापि व्यजायत । राम. 3-14-31

काव्य, कला और अध्यात्म के साथ वन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वैदिक वाङ्मय का एक अंग आरण्यक मनुष्य के चिन्तन में वन के सम्बन्धों का सूचन करता है। हमारे दो महान् आर्ष काव्य - रामायण और महाभारत में क्रमशः "अरण्यकाण्ड" और वन पर्व वन का कृतज्ञतापूर्वक ज्ञापन करते हैं। हमारे चार आश्रमों में "वानप्रस्थ आश्रम" का आश्रय ही वन है। कहना न होगा मानव के ऐहिक अभ्युत्थान और पारलौकिक निःश्रेयस के विषय में जो भी चिन्तन किया गया वह वन में। मानव की अभिव्यक्ति को प्रखर व प्रभावपूर्ण बनाने के लिए वन ने अनेक उपमान और मुहावरे प्रदान किये हैं। वन ने अपने व्यक्तित्व से मनुष्य को उत्प्रेरित किया तो मनुष्य ने भी वन को पहचाना। उसने नाना प्रकार की लताओं को विभिन्न स्थानों में उत्पन्न होने की कामना की[3] और पृथ्वी से प्रार्थना की कि उसके ऊपर लहराते हरे भरे जंगल सुखप्रद हों[4]। "वनानां पतये नमः" "वृक्षाणां पतये नमः" तथा "अरण्यानां पतये नमः" कहकर उसने वन और वृक्षों की रक्षणकारी शक्ति के प्रति नमन निवेदित किया[5]।

हमारे चिन्तक ऋषियों ने मनुष्य के शरीर संस्थान को हू-ब-हू वृक्ष की तरह देखा, रोमावली पत्तों के समान, त्वचा बाहर की छाल के समान, त्वचा से बहता हुआ रक्त वृक्ष की त्वचा से निकलते उत्पट - रस के समान, मांस पेशियां छाल के भीतरी भाग के समान, सिर नाड़ी जाल वृक्ष के कीनाट लकड़ी से लगे हुए कोमल भाग के तुल्य और हड्डियां अन्दर की लकड़ी तथा मज्जा-मज्जा के सदृश[6]। रामायण में रावण राम को एक ऐसे वृक्ष के रुप में देखता है सीता जिसमें पुष्प और फल हैं, सुग्रीव, जाम्बवान् कुमुद, नल, द्विविद, मैन्द, अंगद, गन्धमादन, हनुमान, सुषेण और अन्य सारे वानर सेनापति उस वृक्ष की शाखा-प्रशाखायें हैं[8]। इसी प्रकार रावण को भी एक ऐसे वृक्ष के रुप में देखा गया है जिसमें धैर्य पत्ते, हठ ही सुन्दर फूल, तपस्या बल और शौर्य ही मूल है। राम रुपी मारुत के द्वारा इतना सुदृढ़ होने पर भी रावण-वृक्ष उखाड़ कर नष्ट भ्रष्ट कर डाला गया[9]।

रामायण में धरती के वसन और जीवन के रुप में वनों की प्रतिष्ठा की गई है। वाल्मीकि समुद्र, पर्वत और वनराजि के बिना तो पृथ्वी की कल्पना भी नहीं करते[10]। वाल्मीकि रामायण में सरोवर हो या नदी, वृक्षों के बिना उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती[11]। वाल्मीकि जब मन्दाकिनी के किनारों पर अनेक प्रकार के फल और फूल वाले वृक्षों की सघनता की उपस्थिति बताते हैं तो स्वभावतः ये वृक्ष नदी रुप रमणी के वसन भूषण प्रतीत होने लगते हैं।

---

3 पृथग् जायन्ता वीरुधो विश्वरुपाः। अथर्व -4-15-3, 4 -अरण्य ते पृथिवी-स्योनमस्तु । वही. 12.1.11,

5 रुद्राष्टाध्यायी 5-19-20,

6 वृहदा 3-9-28/ 1,2,3,

8 रामवृक्ष रणे हन्मि सीतापुष्पफलप्रदम्। प्रशाखा यस्य सुग्रीवो जाम्ववान् कुमुदो-नलः।। द्विविदश्चैव मैन्दश्च अंगदो गन्धमादनः। हनुमाश्च सुषेणश्च सर्वे च हरियूथपाः।। रामा-6-99-4,5

9 धृतिः प्रवालः प्रसभाग्रयपुष्पस्तपो बलः शौर्यनिबद्धमूलः। रणे महान् राक्षस राजवृक्षः सम्मर्दितो राघवमारुतेन।। वही. 6-109-9.

10 पृथिवी सगिरिकानना वही 7-36-46. सपवर्तवना कृत्स्ना महीम् वही 1.40-14. पृथिवी---सशैलवनकानना वही 3. 23-16. सनदीगिरिकानना वही 6-99-7

11 द्रुमयुक्ताभिः--सरिद्भिः। रामा 5-14-25, नदी पादपैरुपशोभिताम् -वही 5-14-30

वाल्मीकि के आदर्श वन का स्वरुप है जो विशालकाय मेघों की घटा के समान घना और श्यामवर्ण हो, जिसमें तरह-तरह के अनेक वृक्ष भरे पड़े हों। ऐसा ही एक वन था जिसमें अनेक जातियों के पक्षी समुदाय उसे विलक्षण सौन्दर्य से मंडित कर रहे थे तथा गीदड़ और दूसरे प्रकार के हिंसक पशु चारों तरफ फैले हुए थे[13]। आकाश में उमड़े घुमड़े मेघ समूह के समान सघन व दूर-दूर तक फैली वृक्षावली और उसके भी चारों किनारों पर लगे केले के पादपों को आदि कवि ने बार-बार देखा और जिया है तभी वे उसे चारुता से अंकित करते है[14]। रम्य वन का आदर्श है कुबेर का चैत्ररथ और देवताओं का नन्दनवन, जहां छहों ऋतुओं में भौंरे गुनगुनाते रहते हैं। वाल्मीकि सुगन्धित फूल और सुस्वादु फल को वन का श्रृंगार मानते हैं। फलयुक्त वन अर्थात् "वनानि फलवन्ति[15] उनके मन में बसे हुए हैं। फिर रात के ओस कणों व अन्धकार से आच्छादित तथा प्रातः काल के कुहरे से ढकी पुष्पहीन एवं सोयी हुई-सी वन श्रेणियों की एक निराली छटा होती है

अवश्यायतमोनद्धा नीहारतमसावृताः ।
प्रसुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा वनराजयः।। रामा. 3-16-23

वाल्मीकि के वनों की दो विशेषतायें हैं सार्थकता और सुन्दरता। इनके अतिरिक्त रामायण में वन के दो और रुप मिलते हैं जो जीवन के शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष को निर्दशित करते हैं। शुक्ल पक्ष का प्रतीक हिमवान् के उत्तरवर्ती भाग में प्रवाहित शैलोदा नामक नदी के समीप एक दिव्य वन है जिसके वृक्ष हमेशा पुष्पों, फलों और पक्षियों से युक्त रहते हैं। ये वृक्ष दिव्य गन्ध, रस और स्पर्श वाले हैं तथा सम्पूर्ण कामनाओं का स्रवण करते हैं। वहां के कुछ वृक्ष फल के रुप में अनेक वस्त्र प्रदान करते हैं। इसी प्रकार मुक्ता, वैदूर्य और रंग बिरंगे ऐसे आभूषण देते हैं जो स्त्रियों के साथ-साथ पुरुषों के भी अनुरुप होते हैं। वहां कुछ वृक्ष सारी ऋतुओं के लिए सुखकारी और मूल्यवान वस्तुयें प्रदान करते हैं[16]।

रामायण में दिव्य वन के साथ-साथ एक अभिशप्त वन भी वर्णित है जो विन्ध्य पर्वत के पार्श्वभाग में अवस्थित बताया गया है। इस सुनसान वन में कण्डु ऋषि का आश्रम था। उनके दस वर्षीय पुत्र की वहां अकाल मृत्यु हो गई थी अतः कुद्ध ऋषि ने उसे शाप दे दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि उस वन के वृक्षों में फूल और फलों का आना बन्द हो गया, नदियों का जल सूख गया और मूल लुप्त हो गये। उस वन में न महिष रहे, न हाथी, न शार्दूल और न किसी प्रकार के पक्षी ही। नये पौधों

---

12 नानाविधैस्तीररुहैर्वृता पुष्पफल द्रुमैः। वही 2-95-4

13 वन महामेघनिभ प्रविष्टो द्रुमैर्महद्भिर्विविधैरुपेतम्। नानाविधैः पक्षिकुलैर्विचित्र शिवायुत व्यालमृगैर्विकीर्णम्।। वही 3-3-26

14 एष मेघ इवाकाशे वृक्षषण्डः प्रकाशते। मेघसघातविपुलः पर्यन्त कदलीवृतः। वही 4-13-14.

15 वही 6-23.2 तथा 14-11

16 वही. 4-43/44,45,46,

का उगना बन्द हो गया, औषध, बल्ली और वीरुध सहित सभी कुछ समाप्त हो गया। इस प्रकार वह वन अशरण्य, पक्षियों, तथा जन्तुओं के लिए विवर्जित और दुर्धर्ष हो गया था[17]!

वन ही वन

रामायण में यदि अयोध्या से लंका तक की यात्रा की जाय तो वन और उसमें स्थित आश्रम ही मिलेंगे। जाह्नवी के समीप प्रवाहित होने वाली तमसा नदी के तट पर घूमते हुए विशाल वन दिखाई पड़ते है[18]। अयोध्या "वनमालिनी" और पुण्योद्याना नगरी थी। कोसल जनपद के भूभाग चैत्यवृक्षों[19] और चैत्ययूपों से व्याप्त थे। अंगदेश में स्थित ऋष्यश्रृंग के आश्रम को जाते समय मार्ग में अनेक वन और नदियों को पार करना पड़ता था[20]। गंगा-यमुना के संगम से आगे गंगा के किनारे एक भयंकर जंगल था। उस डेढ़ योजन के जंगल में ताटका रहने लगी थी, इसलिए उसका नाम "ताटकारण्य" या "ताटक वन" पड़ गया था। राम द्वारा ताटका का वध करने के बाद वह वन हिंसा और आतंक से मुक्त होकर चैत्ररथ वन के समान रमणीय हो गया था[21]। ताटकावन से निकलने के बाद सिद्धाश्रम के दर्शन होते थे। सिद्धाश्रम से गंगा के उत्तर तट पर होते हुए विश्वामित्र ने उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया था। शोणभद्र के तट पर एक समृद्ध वन था।

श्रृंगवेरपुर में गंगा के तट भागों में नयी कोंपलों और फूलों से सम्पन्न इंगुदी का वृक्ष था। रथ से उतर कर राम इस वृक्ष के मूलभाग में बैठ गये थे। गंगा-यमुना के संगम से पहले भी एक विशाल वन पार करना होता था। चित्रकूट नानाप्रकार के वृक्षों से हराभरा था। वहां झुंड के झुंड हाथी और हिरन घूमा करते थे[22]। वहां विशाल न्यग्रोध तथा बहुत से दूसरे वृक्ष थे। इस स्थान से एक कोस आगे गहरे रंग का एक दूसरा जगल था जहां सल्लकी और बदरी के मिले जुले वृक्ष थे तथा यमुना के किनारे उगे बाँस इस जंगल को और भी रमणीयता प्रदान करते थे[23]।

अपरताल नामक पर्वत के दक्षिण भाग और प्रलम्ब गिरि के उत्तर भाग में दोनों पर्वतों के बीच बहने वाली मालिनी नदी के तट से होते हुए हस्तिनापुर में गंगा को पार करके पश्चिम की ओर पांचाल देश पहुंचने पर कुरु जांगल प्रदेश के बीच में पक्षियों से सेवित दिव्य नदी शरदण्डा प्रवाहित थी। वहां "सत्योपयाचन" नाम से विश्रुत एक दिव्य वृक्ष था। इसी प्रकार राजगृह जाते समय विपाशा नदी के तट पर एक शाल्मली का प्रसिद्ध वृक्ष दृष्टिगोचर होता था। इस स्थान और गिरिव्रज के बीच बहुत सी नदियां, वापी, तटाक, पोखर, सरोवर --- और भांति-भांति के जन्तु मिलते थे[24]। यह पैदल मार्ग की स्थिति थी। राजगृह से अयोध्या के लिए रथ से प्रस्थान करने पर मार्ग में शल्य कर्षण

---

17 रामा 4-48/9,10,4-40-15,

18 वही 1-2-8,

19 वही 2-56-8,

20 वही 1-11-14, 21 मुक्तशाप वन तच्च तस्मिन्नेव तदाहनि। रमणीयं विवभ्राज यथा चैत्ररथं वनम्।। वही - 1-26-35,

22 वही 2-54-39 तथा 41

23 वही 2-55-6 तथा 8

24 वही 2-70 के आधार पर

नामक एक प्रदेश था। यहां शरीर से काँटे निकालने में सहायता करने वाली औषधि उपलब्ध होती थी। इसके आगे शिलावहा नामक नदी से आगे बढ़ने पर बड़े-बड़े पर्वतों को लांघने के बाद चैत्ररथ नामक वन मिलता था। चैत्ररथ वन से आगे एक भारुण्डवन था तथा कुलिंग नदी को पार कर यमुना तट पहुंचने पर उसके आगे एक विशाल वन के बीच से होकर जाना पड़ता था। अयोध्या की ओर बढ़ने पर प्राग्वट, धर्मवर्धन, जम्बूप्रस्थ और वरुथ नामक बस्तियां पड़ती थीं। वरुथ के आगे उज्जिहाना नामक नगरी में एक बहुत ही सुन्दर उद्यान मिलता था जिसमें कदम्ब वृक्षों का बाहुल्य था (प्रियका यत्र पादपाः)। सर्वतीर्थ, हस्तिकपृष्ठक, लोहित्य नामक गांव एक साल नगर फिर विनत गांव और गोमती पार करने पर कलिंग नगर मिलता था जिसके समीप सालवन विद्यमान था।

इस प्रकार की यात्राओं के प्रकरण से हटकर देखने पर भी भरद्वाजाश्रम, चित्रकूट, सुतीक्ष्ण का आश्रम, दण्डकारण्य, अगस्त्य का आश्रम, पंचवटी, गोदावरी, तथा समुद्रतटवर्ती भाग विविध प्रकार के वृक्षों से सुसज्जित थे। दण्डकारण्य में जहां कबन्ध का वध हुआ था वहां पश्चिम दिशा की ओर फूलों से भरे मनोरम वृक्ष थे तथा वहीं से ऋष्यमूक जाने के लिए सुखद मार्ग था[25]। इस मार्ग में जो वन पहले पड़ता था उसमें अमृत तुल्य मधुर फलों की भरमार थी। वहाँ जम्बू, प्रियाल, पनस, न्यग्रोध, प्लक्ष, तिन्दुक, अश्वत्थ, कर्णिकार, आम, धन्वन, नागवृक्ष, तिलक, नक्तमाल, नीलाशोक, कदम्ब, कखीर, अग्निमुख्य अशोक, लाल चन्दन और पारिभद्रक के वृक्ष विद्यमान थे। इस वन को पार करने के बाद एक दूसरा वन मिलता था जहाँ के वृक्ष उत्तर कुरुवर्ष की भांति मधु टपकाने वाले थे। (पादपा मधुरस्रवाः) तथा उनमें सभी ऋतुओं में फल लगे रहते थे। इस वन में पुष्करिणी पम्पा तक जाते समय मार्ग में अनेक पर्वत और वन मिलते थे। पुष्करिणी पम्पा के दक्षिणी तट पर रमणीय आश्रम था, जो बहुत प्रकार के वृक्षों से घिरा था।

पम्पा सरोवर के तट से थोड़ी दूर पर ऋष्यमूक पर्वत की स्थिति थी। इस सरोवर के तट पर तिलक, अशोक, पुंनाग, वकुल और उद्दालक के वृक्ष शोभित थे[27]। तिलक, बीजपूर, वट, शुक्लद्रुम, करवीर, पुंनाग, मालती और कुन्द की झाड़ियाँ, भडीर, निचुल, अशोक, सप्तपर्ण, केतक तथा अन्य विविध वृक्षों से सजी पम्पा प्रमदा की तरह सुशोभित होती थी (प्रमदामिव शोभिताम्)। इसी पम्पा सरोवर के तट से लगा हुआ विविध धातुओं से मंडित ऋष्यमूक नाम से विख्यात पर्वत था[28]। चित्र विचित्र कानन, पुष्पों और फलों से लदे वृक्षों के अलावा घास के सुरम्य मैदान पम्पा के पार्श्ववर्ती भागों की विशेषता थी। वही उद्यान और उपवन से युक्त श्रमनाशन 'सप्तजनाश्रम' था। सघन वृक्षावली उसकी चहारदीवारी बनी हुई थी[29]। किष्किन्धापुरी से लगा झाड़ियों व लताओं से आच्छादित तथा सभी ओर से घने वृक्षों से व्याप्त प्रस्रवण गिरि था। प्रस्रवण गिरि की गुफा के दक्षिणी भाग में तुंगभद्रा नदी बहती थी जो तटवर्ती चन्दन, तिलक, साल, तमाल, अतिमुक्तक, पद्मक, सरल, अशोक, वानीर, तिमिद, वकुल, केतक, हिन्ताल, तिनिश, नीप, वेतस, कृतमाल आदि वृक्षों से सजकर वस्त्राभूषण सज्जिता युवती सी प्रतीत होती थी[30]। वहाँ माल्यवान पर्वत पर कुटज व अर्जुन की वृक्षावलियाँ[31] तथा केतक के पौधे थे[32]। किष्किन्धा में तो 'सर्वकामफल' वृक्षों का बाहुल्य था[33]। सुग्रीव पितृपरम्परा

---

25 वही 3-83-2. 26 वही 3-83/3,4,5, 27 वही 3-75-16 28 वही 3-75-25 1/2, 29 वही 4-13/17,20, 30 वसनाभरणोपेता प्रमदेवा डम्यलकृता। वही 4-27-19, 31 वही 4-28-4, 32 वही 4-28-9, 33 सर्वकामफले वृक्षे : 4-33/5,15.

से मधुवन के स्वामी थे। वह इतना सुरक्षित वन था कि वहाँ परिंदे भी पर नहीं मार सकते थे[34]। विन्ध्य कानन में लोध्रवन और सप्तपर्ण के जंगल थे[35]।

लंका वनराजिविभूषिता नगरी थी। वहाँ लम्ब पर्वत के शिखर पर केतक, उद्दालक और नारिकेल के पेड़ थे। लंका त्रिकूट पर्वत पर स्थित थी तथा मार्ग मे हरी भरी दूब एवं मकरन्द पूर्ण सुगन्धित वन थे। लंका के कुछ प्रमुख वृक्ष थे- सरल, कर्णिकार, खर्जूर, प्रियाल, मुचुलिन्द, कुटज, केतक, प्रियंगु, नीप, सप्तच्छद, असन, कोविदार और करवीर[36]। लंका के घर-घर में गृहोद्यान थे तथा रावण का भवन भाँति-भाँति के वृक्षों व फूलों से अलंकृत था। वहाँ लाल चन्दन के वृक्ष भी थे[37]। चौराहों पर वृक्षों के नीचे चबूतरे बने होते थे[38]। लंका की अशोकवाटिका एक विशाल वृक्ष- स्थली थी[39]। पद्म के समान वर्ण वाले वृक्षों से युक्त नीली वन श्रेणियां लंका स्थित अरिष्टगिरि का परिधान प्रतीत होती थी। वहाँ दूसरा महेन्द्र पर्वत भी वृक्षों से संकुल था तथा उनका वनोद्देश बहुत ही रमणीय था[40]। इसी प्रकार सह्य नामक पर्वत भी घने वृक्षों से व्याप्त और अनेकानेक काननों से युक्त था[41]। सुवेल पर्वत के पृष्ठ भाग पर चढ़कर देखने से लंका के वन और उपवन स्पष्ट दिखाई पड़ते थे तथा उनमें स्थित वृक्ष अत्यन्त सौम्य, शान्त, सुन्दर, विशाल एवं विस्तृत परिलक्षित होते थे। यथावसर वाल्मीकि ने लंका को 'रम्य काननां' चित्रकानना और रम्या उद्यान शोभिता कहा है। वह सपर्वतवनोद्देश नगरी थी[42]। लंका में गृहोद्यानों के साथ साथ प्रमदावन भी थे।

इन चर्चित वनों और आश्रमों के अतिरिक्त बाल्मीकि ने अपने महान काव्य में स्थल-स्थल पर अनेक वनों और आश्रमों के संकेत किये हैं। क्रौंचवन इतना सघन था कि उसमें बैठना और निकलना दुष्कर था[43]। उन्होने तमाल वन और कूट शाल्मली नामक एक वृहदाकार वृक्ष का उल्लेख किया है[44]। कुक्षि देश पुंनाग से भरपूर, वकुल और उद्दालक से आकुल तथा केतक समूह से सम्पन्न था[46]। इसकी पश्चिमी दिशा में केतक, तमाल और नारिकेल के वन थे। कवि ने मेरु और अस्ताचल के बीच एक ऐसे स्वर्णमय ताड़ वृक्ष का कथन किया है जिसमें दस स्कन्ध थे[47]।

हिमालय के वन

आदि कवि बाल्मीकि ने अनेक स्थलों पर हिमालय का उल्लेख हिमवान् के रुप में किया है और किष्किन्धा काण्ड में 'हिमवद. वनम्' की भी चर्चा की है[48]। उसे विविध वृक्षों से सुशोभित (शोभित विविधैर्वृक्षैः रामा 6-74-57) बताया गया है। गंगा के तटवर्ती न्यग्रोध के साथ बाल्मीकि ने

---

34 वही 5-62-31, 35 वही 4-49-17, 36 वही 5-2/9,10, 37 वही 5-9-18, 38 वही 5-12-18, 39 अशोकवानिका चापि महतीयं महादुमा। वही 5-13-55, 40 वही 5-57/27,29, 41 वही 6-4-70, 42 वही 5-37-39. 43 वही 3-69-9, 44 वही 4-40-39, 45 वही 4-41-14 46 वही 4-42-8, 47 वही 4-42-46, 48 वही 4-11-14.

हिमालय के साल वृक्षों का भी स्मरण किया है[49]। हिमालय को लोध्र और पद्मक की झाडियों और देवदारु के वनों से सज्जित बताया गया है[50]। हिमालय का एक भाग देवसख नामक पर्वत नाना प्रकार के द्रुमों से विभूषित और वनों से अलंकृत था[51]। हिमालय के अंगभूत ऋषभ और कैलास पर्वतों के बीच सर्वविध औषधियों का एक पर्वत था जिसके ऊपर चार औषधियां दसों दिशाओं को प्रकाशित किया करती थी। ये औषधियाँ मृतसंजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और सन्धानी नाम से विख्यात थी[52]। इस पर्वत विशेष को 'ओषधिपर्वतेन्द्र' तथा 'महोदय' के नाम से जाना जाता था। इस पर्वत पर अनेक प्रकार के पुष्पमय वृक्ष विद्यमान थे[53]।

वन वृक्षों की समृद्धि की दृष्टि से वशिष्ठ और अश्वमुनि के आश्रम[55] तथा श्वेतवन[56] शैल[57] वन नामक गिरि[58] मलयोपवन[59] मन्दर[60] महेन्द्र[61] ऋष्यमूक[62] संरोचन[63] तथा महामेरु [64] दृष्टव्य हैं।

आदि कवि ने अपनी महान कृति में जिन वनस्पतियों का उल्लेख किया है उनमें प्रमुख है अगुरु, अतिमुक्तक, अरिष्ट, अरिष्टक, अर्जुन, असन, अश्वत्थ, अशोक, आमलक, आम्र, उदुम्बर, कदली, श्वेत तथा रक्त करवीर, पीत करवीर, किंशुक, चन्दन, चम्पक, कुश, कुटज, कुरबक, कोविदार, खदिर, जम्बू, ताल, तिनिश, तिन्दुक, देवदारु, दाड़िम, धन्वन, धव, नागवृक्ष, नारियल, न्यग्रोध, पद्मक, पिप्पली, प्रियंगु, प्रियाल, प्लक्ष, बदर, बिल्व, भल्लातक, भूर्ज, भव्य, मधूक, मल्लिका, मुचुकुन्द, लकुच, लोध्र, वंश वेतस, बिभीतक, शमी, शर, शाल, शाल्मली, शिरिष, शिंशपा, सप्तपर्ण, सरल, अश्वकर्ण, उशीर, ककुभ, कदम्ब कुन्द, कुमुद, कुष्ठ, खर्जूर चूर्णक, तमाल, पनस, बन्धुजीव, भण्डीर, मरिच, सल्लकी, सर्ज, सिन्दुवार, हिन्ताल, रन्जक, अंकोल, कल्हार, काश्मरी, कीचक, केतकी, जाति, नक्तमाल, निम्ब, नीलाशोक, पाटल, पाटलिका, पुंनाग, बदरी, वरुण, वानीर, बीजपूर, माधवी, मालती, श्यामा, स्थगर, ईक्षु, करीर, इषीका, चैत्य, बीजक, बंजुल, स्यन्दन, पर्णास, महासाल, शुक्लद्रुम, श्लेष्मातक, रक्त कुरबक, गजपुष्पी, तिमिद, मुचुलिन्द, नीपिका और सन्तानक लता आदि। कवि द्वारा वर्णित कुछ वृक्ष नाम पर्याय रुप भी हैं साथ ही गुग्गुल, बाराही कन्द आदि की ओर भी वाल्मीकि ने संकेत किये हैं। आदिकवि को शाद्वल बहुत प्रिय है जिसे कहीं नील (नीलम) वैदूर्य के समान और कहीं नीलपीतवर्ण का चित्रित किया गया है।

बाल्मीकि के अनुसार सन्तान के जन्म और परिपालन की तरह मनुष्य वृक्ष का भी रोपण व संपोषण करता है। वे वन की रक्षा को पुत्र की रक्षा के समान मानते हैं[65]। इस प्रकार बाल्मीकि का वन प्राण व्यक्तित्व भी हमें उनकी रामायण में स्पष्ट झलकता दृष्टिगोचर होता है।

---

49 न्यग्रोधानिव गांगेयान् सालान् हैमवतानदि वही 6-28-2, 50 -वही 4-43-13, 51 वही 4-43/17,18 52 वही मृतसंजीवनीं चैव विशल्यकरणी मपि। सुवर्णकरणीं चैव सन्धानीं च महौषधिम्। वही 6-101-31, 53 फुल्लनानातरुगणम् वही 6-101-38 54 वही 1-51/23/24/25/28, 55 वही 2-116-20, 56 वही 3-30-27, 57 वही 5-2-7, 6-4-54, 58 वही 4-42-25, 59 वही 5-1-204, 60 वही 5-10-9 61 वही 5-58-29, 62 वही 5-58-138 63 वही 6-26-27 64 वही 2-27-34, 65 वनेस्मिन मामके नित्यं पुत्रवत परिरक्षिते। पत्राकुरविनाशाय फलमूलभवाय च।। वही 4-11-51.

वन में नदी, नद, निर्झर, सरोवर, गिरिगह्वर आदि सभी होते हैं। अपनी जीवन रक्षा में व्यस्त पशु, पक्षी, एवं कीट पतंगों आदि के लिए अपनी विविधता सहेजे वन ही आश्रय होता है। अतः ऐसे ही वन भागों के चितेरे वाल्मीकि के लिए स्वाभाविक था कि वे समस्त जन्तुजात का यथाप्रसंग वर्णन करते। उन्होने ऐसा ही किया भी है। जलचर जीवों के रुप में हम देखते हैं कि शामित्र कर्म में कूर्म तथा अन्य जलचर लाये जाते हैं[66]। वे जलचारियों को महात्मा कहते हैं तथा उनके प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते हैं[67]। शिशुमार, नक्र भुजंग[68] वर्षा हर्षित भेक[69] तिमि[70] मद्गुक (जलकाक) रोहित[71] वक्रतुण्ड, नलमीन[72] दात्यूहक[73], ग्राह[74] झष[75] महासागर के तिमिंगल व सर्प[76], मकर[77] आदि कवि के प्रमुख जल जीव है। जहाँ तक जल के पक्षियों का सम्बन्ध है वे आत्म रक्षा और जीविका जुटाने के लिए प्रायः नदी, नद, पोखर, झील, सरोवर आदि को अपना आश्रय बनाते हैं, ये पक्षी स्थल भाग से भी जुड़े होते हैं और अपने नीड़ों का निर्माण स्थल भूमियों में ही करते हैं। ऐसे पक्षियों में हंस[78], सारस[79], चक्रवाक[80], कादम्ब[81] कारण्डव,[82], प्लव, कुरर[83], क्रौंच[84] आदि मुख्य हैं। थलचर व वृक्षवासी पक्षियों में आदि कवि के कोकिल[85], तोता, मोर,[86] जृम्भ[87], कोयष्टिभ [88], नत्यूह[89], उलूक[90], गृध्र[91], कलहंस[92], सिंह पक्षी[93], कुक्कुट[94], कंकपत्र [95], क्राक तथा श्येन[97], कपोत, शारिका[98], नील कंठी[99], बलाका[100] आदि के उन्लेख प्रमुख हैं। बाल्मीकि ने मछली के वर्णन में अपनी अभिज्ञता का परियच दिया है। जल जन्तुओं के प्रसग में तिमि और तिमिंगल के रुप में मछली की चर्चा की जा चुकी है। आदिकवि उस मत्स्य प्रवृत्ति की ओर भी संकेत करते हैं जिसके अनुसार बड़ी मछली छोटी को खा डालती है[101]। तिमिंगल और दूसरे प्रकार के मत्स्यों की विद्यमानता सागर में दिखाई गई है[102]। एक स्थल पर सागर को तिमि, नक्र और झष से संकुल (तिमिनक्रझषाकुले रामा 5-37-57) बताया गया है। मछली वंशी में फंसी छोटी मछली या केंचुए को खाने दौड़ती है और स्वयं अपने को काँटे में फंसाकर जान दे देती है। झषवद् वडिशं गृहय क्षिप्रमेव विनश्यति जैसे दृष्टान्त वाक्य में वाल्मीकि ने इस सत्य को उजागर किया है।

---

66 रामा. 1-14-31, 67 वहवश्च महात्मानो वहयन्ते जलचारिणः वही 1-39-25, 68 वही 2-50-25, 69 वही 2-63-16, 70 वही 2-81-16, 71 वही 3-56-20, 72 वही 3-75-14, 73 वही 4-1-24, 74 वही 4-42-11, 75 वही 5-7-74, 76 वही 5-9-7, महाग्राहैः कीर्णा तिमि तिमिंगलैः वही 6-4-111. 77 वही 6-4-113, हसकारण्डवाकीर्णा पमिनी साधुपुष्पिता 79 वही 4-13-8, 80 वही 2-50-19, 3-11-3, 3-11-6, 81 वही 3-11-6, 82 हसकारण्डवाकीर्णा पम्पा सौगन्धिका युता। वही 4-1-63, कारण्डवैः सारसैर्हसैर्वन्जुलैर्जल कुक्कुटैः। चक्रवाकैस्तथा चान्यैः शकुनैः प्रतिनादितम।। वही 4-13-8 तथा वही 3-11-80, 83 वही 3-73-12, 84 वही 6-4-83, 85 वही 1-64-6, कोकिलोहृदयग्राही माधवे रुचिरदुमे । वही 1-64-6, पुस्कोकिलरुतैरपि वही 4-1-28, 86 वही 2-10-13, वर्हिणां च निर्घोषः श्रूयते नदतां बने।। वही 2-52-3, एष क्रोशति नत्यूहस्त शिखी प्रतिकूजति। रमणीये बनोद्देशेपुष्पसंस्तरसंकटे।। वही 2-56-9 87 वही 2-35-20, 88 वही 2-54-43, 89 वही 2-56-9, 90 वही 2-114-2, 91 वही 3-47-47,3-49,-36, 92 वही 4-30-9, 93 वही 4-42-16, 94 वही 6-13-4, 95 वही 6-14-13, 96 वही 6-23-11, 97 वही 6-35-31. 98 वही 6-35-32,5-23-15, 99 वह 100 वही 3-35-10, 101 वही 2-67-31, मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम्। वही2-67-31, 102 वही 5-9-7

मछली की भाँति कवि ने सांपों की कुछ जातियों और कुछ विलक्षण प्रकारों का भी कथन किया है। जिन वन में साँपों का आतंक होता है वह जन समुदाय के लिए दुर्गम हो जाता है[103] कुद्ध होकर साँप फुफकारता है वाल्मीकि ने इसे उपमान के रुप मे अनेक स्थलों पर प्रयुक्त किया है[104]। कृष्ण सर्प[104] के अलावा महाकवि ने सर्प जाति के दो ऐसे विचित्र प्रकारों का उल्लेख किया है जो बहुत पौराणिक प्रतीत होते हैं। तीन मुख वाले साँप [106] और पाँच मुख वाले साँप[107] जिनका वर्णन रामायण में हुआ है, बहुत संभव है तत्कालीन लोक जीवन में कथाओं एवं किंवदन्तियों में चर्चित रहे हों। उन्होने सर्प या सर्पिणी द्वारा केंचुल के त्याग[108] तथा जल में भी उसके वास को वर्णित किया है किन्तु कवि के लिए सर्वाधिक आकर्षण रहा है साँप का क्रोध, जिसके लिए वह प्रसिद्ध होता है[109]।

सर्प के शत्रु के रुप में गरुड़ या सुपर्ण पक्षी का पारम्परिक चित्रण रामायण में मिलता है। पौराणिक मान्यता के अनुसार गरुड़ विष्णु का वाहन है[100] तथा वह गति और पराक्रम का महान आदर्श है[111]। सर्पभक्षी के रुप में गरुड़ का वह स्वरुप हमारे सामने आता है जो परवर्ती साहित्य में प्रथित हुआ। गरुड़ सर्प का प्रबल शत्रु है और वह उसे उठाने या भक्षण करने में कृत संकल्प सा रहता है[112]। वन्य जन्तुओं मे कवि ने मृग के चितकबरे(पृषत) कोमल, ऊंचे चितकबरे साथ ही नीलाग्र रोम वाले (कदली) तथा कोमल, ऊंचे चिकने और घने रोम वाले (प्रियकी) प्रकारों का भी निदर्शन किया है[113] । मृग सिंहों का आसान भोजन है। वाल्मीकि ने विश्वासापन्न निर्भीक तथा आक्रमण भीत मृगों की प्रवृत्तियों का भी सटीक निरुपण किया है[114] (वित्रस्ता दीनमुखा रुरुदुर्मृगपोतकाः) (रामा 3-52-40)

वाल्मीकि को हाथियों के विषय में विशेष ज्ञान था। हिमालय पर उत्पन्न भद्र जाति के, विन्ध्य पर उत्पन्न मन्द्र जाति के तथा सह्य पर्वत पर उत्पन्न मृग जाति के साथ ही इन तीनों जातियों के मेल से उत्पन्न संकर जाति के हाथियों की वे चर्चा करते है[116]। हाथी या हथिनी गति के लिए आदर्श है[117]

---

103 दुर्गवनं व्यालनिषेवितम् वही 2-97-13, वसन्त्यास्मिन् महारण्ये व्यालाश्च रुधिराशानाः -वही 2-119-19, 104 निशश्वास महासर्पो विलस्थ इव रोषितः -वही 2-23-2, रोषिता इव पन्नगाः वही 6-58-38, निःश्वस्य च भुजंगवत् वही 6-69-87, एष ते सर्पसंकाशो बाणः पास्यति शोणितम् । वही 6-71-56, 105 कृष्ण सर्पमिवास्पृशम् वही 2-12-81, 106 त्रिशीर्षाविव पन्नगौ वही 1-22-7, 107 पन्चशीर्षैरिवोरगैः वही 5-49-8, पन्चास्यामिव पन्नगीम् वही 5-51-23, पन्चवक्त्रेण भोगिना वही 5-38-25 108 निर्मुक्तेव पन्नगी वही 2-43-2, मोक्ष्यसे शोकजं वारि निर्मोकमिव पन्नगी वही 6-31-33. 109 तीक्ष्णकोपा भुजगमा वही 4-59-9, पपात भुवि संकुद्धो निःश्वसन्निव पन्नगः वही 2-74-35, कुद्धो नाग इव श्वसन् वही 2-92-28, कुद्धानाशीविषानिव वही 3-28-4, जीवितान्तकरैर्घोरैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः। वही 4-3-18ण् सरोषा भुजगा इव वही 4-8-23, कुद्धः सर्प इव श्वसन् वही 6-88-37, 110 वही 1-14-29, 1-14-17, 111 वही 1-17-34, 1-41-16, गरुडा वेगगामिनः वही 5-1-122. वेगे स गरुडोपम वही 5-1-173 112 वही 2-42-25, आपगा गरुडेनेव हृदादुद्धृतपन्नगा । वही 2-47-17, पक्षिराज इवोरगम् वही 5-1-33, गरुडेन ह्रियमाणो महोरगः- वही 5-1-34, गरुडेनेव पन्नगः वही 6-60-2, नागहेतोः सुपर्णेन यैतयमुन्मथितं यथा। वही 4-19-24, 113 वही 2-93-2, 3-43-41, 114 मृगाणां तु भयं तीक्ष्णम् वही 4-59-9, गीतशब्देन संरुध्य लुब्धो मृगमिवावधीः -वही 2-12-77, मगीवोर्तफुल्लन पना वही 2-38-9, जिहीर्षतिप्रसहच सिंहो रुदती मृगीमिव । वही 20-20-50, 114 पाशवृद्धा मृगी यथा वही -3-56-35 व्याधत्रस्ता मृगा इव वही 3-27 20, 115 प्रशान्तहरिणा कीर्णमाश्रमम् वही 3-12-17, 3-15-1, यैः परिक्रीडसे सीते विश्वस्तैर्मृगपोतकैः वही -3-61-5, 105 विन्ध्य पर्वतजैर्मत्तैः पूर्णा हैमवतैर्वा मदान्वितैरति बलैर्मातंगैः पर्वतोपमैः। वही 1-6-23, तथा गन्धहस्ती वही -6-4-17, 117 वही 1-48-2.

उनका पारस्परिक प्रेम[118] और दु:खावस्था की विकलता[119] भी देखते बनती है। इन चित्रणों के अतिरिक्त वन में शोर मचाते मयूर-वर्हिणां च निर्घोषः श्रूयते नदतां वने (रामा. 2-52-3) पपीहा और मोर के प्रश्नोत्तर, हंस क्रौंच तथा सारसों से आकीर्ण समुद्रतटवर्ती भाग हंस क्रौंच-प्लवाकीर्ण व्याध, कृक, ऋक्ष, तरक्षु और कंक जीवों से भयपूर्ण जन स्थान (राम. 3-46.29 तथा 30) वध से बेसुध मधुर भाषी हंसादि से पूर्ण पम्पा वल्गुस्वरा निकूजन्ति पम्पा सलिलगोचराः । नोद्विजन्ते नरान् दृष्ट्वा वधस्या कोविदाः शुभाः (रामा - 3.73-13) कोकलाकुल सीमान्त (रामा. 4-1-32) पेड़ पर बैठा प्रसन्नता पूर्वक बोलता कौआ - वायसः पादपगतः प्रहृष्टमभिकूजति (रामा. 4-1-55) शार्दूल, मृग, भीम शब्द करने वाले सिंह, ऋक्ष, वानर, गोपुच्छ मार्जार से निषेवित प्रस्रवण गिरि -शार्दूल मृग संघुष्टं सिंहैभीमरवैर्वृतम्। ऋक्षवानर गोपुच्छै र्मार्जारैश्च निषेवितम् (रामा - 4-27-2,3) महोरग निषेविता नर्मदा नदी (रामा 4-41-8) सिंहाधिष्ठितकन्दर और व्याघ्रसमाकीर्ण अरिष्टगिरि (रामा - 5-56-36,37) लाल पंजे और सफेद पंख वाले कबूतर - पाण्डुरा रक्तपादाश्च - कपोताः (रामा - 6-35-31) ची ची कू ची करती घर में पाली गई मैना - ची ची कूचीति वाशन्त्यः शरिका वेश्मसु स्थिताः (रामा 6-35-32 तथा 5-13-15) रस्सी से बांधी गई वानरी (रामा - 2-78-7) तिमिनागसंवृत सरोवर (रामा - 2-81-16) दीना और कराहती हुई कुररी (रामा. 3-63-11] 4-19-28, यौवन दर्पित सिंह (रामा - 6-71-43) जैसी कितनी ही वन्य गतिविधियां रामायण में अंकित हैं।

आदि कवि ने आदिकाल से परस्पर शत्रुता या वैपरीत्य भाव रखने वाले जीव जन्तुओं[120] और सामान्य रुप से भक्ष्य जीवों[121] का भी यथा प्रसंग वर्णन किया है। इसी तरह कुछ अशुभ समझे जाने वाले पशु पक्षियों के भी नाम लिए हैं जो हैं बिडाल, उलूक[122] काक, श्येन, शिवा[123] आदि। दंश, मशक, कीट[124] भी उनकी सूक्ष्मदर्शिनी दृष्टि के विषय बने हैं। वाल्मीकि ने ऊंचाई के हिसाब से आकाश में मार्गों का निर्धारण करते हुए भिन्न भिन्न पक्षियों की उड़ान एवं गति की चित्रणा की है। इस प्रसंग में कवि ने कहा है

आद्यः पन्था कुलिंगानां ये चान्ये धान्यजीविनः ।
द्वितीयो बलिभोजानां ये च वृक्षफलाशनाः ।।
भासास्तृतीयं गच्छन्ति क्रौन्चाश्च कुररैः सह । रामा. 4-58-27

---

118 वही 5-11-12, वने, वासितया सार्धं करेणवेव गजाधिपम्। वही 5-21-18, 119 वही 2-10-26 यथा नादः करेणूनां बद्धे महति कुंजरे वही 2-40-29 2-51-27, 2-72-51, 2-20-58, 2-26-23, 2-87-3, 2-65-30, 4-18-59. 120 निहन्यादन्तरं बदध्वा उलूको वायसानिव। वही 6-17-19, सिंहैरिव महाद्विपाः वही 6-31-33. यदन्तरं वायसवैनतेययो र्यदन्तरं मंगुमयूरयोरिव। यदन्तर हसक गृध्रयोर्वने वही 3-47-47, 121 मयूर, कुक्कुट, वराह, गोंडा, साही, एक शल्य नामक मत्स्य, मृग, कृकल, छाग, शशक, महिष, मेष आदि वही 5-11/15,16,17, 122 वही 2-114-2, 123 वही -6-23-11. स्वाशिताश्च मांसेन गृध्रगोमायु वायसाः वही 6-79-20. अथ काकाश्च गृध्राश्च ये च मांसाशिनो परे ।। वही 6-95-20. विनेदुरशिवा गृध्रावायसैरभिमिश्रिताः ।। वही 6-95-47.

श्येनाश्चतुर्थं गच्छन्ति गृध्रा गच्छन्ति पन्चमम्
*बलवीर्योपपन्नानां रुप यौवनशालिनाम्।।*वही -5-58-28
षष्ठस्तु पन्था हंसाना वैनतेयगतिः परा।
*वैनतेयाच्च नो जन्म सर्वेषां वानरर्षभाः।।*वही 4-58-29

अभिप्राय यह है कि आकाश का पहला मार्ग धान्य जीवी कुलिंगों का, दूसरा बलिजीवियों और वृक्ष के फल खाने वाले पक्षियों का, तीसरे मार्ग में कुरर, क्रौन्च और भास पक्षी उड़ते हैं, आकाश के चतुर्थ मार्ग में बाज तथा पंचम में गीध जाते हैं, छठे मार्ग में बलशाली हंस तथा उनसे आगे सप्तम मार्ग में गरुड़ की गति होती है।

इस प्रकार वनों के रक्षक सिंहों से लेकर नदी-नद, कछार, तृण, तरुवल्लियों, समुद्र, पर्वतों, गुफाओं आदि में रहने वाले वन्य जीवों का समाहार प्रसंगानुसार अपने आदि काव्य में करते हुए बाल्मीकि ने न केवल उनके विषय में अपने सूक्ष्म ज्ञान का परिचय दिया है, बल्कि आश्रमों के वातावरण को प्रस्तुत करते हुए इन वन्य जीवों के साथ मानव को प्रेम और मैत्री के साथ ज्ञान का भी सन्देश दिया है जो आज की ही नहीं सार्वकालिक आवश्यकता है मानव और मानवेतर जीवधारियों के सह अस्तित्व की। वस्तुतः सह अस्तित्व ही अस्तित्व का अपरिहार्य आधार है।

पश्चिमी हिमालय के कुछ संरक्षित क्षेत्र

पूरन चन्द्र पन्त

यह एक निर्विवाद सत्य है कि प्राणी मात्र परोक्ष अथवा अपरोक्ष रुप से वनस्पतियों पर निर्भर है। बढ़ती हुई जनसंख्या की बढ़ती हुई विविध आवश्यकताओं के कारण प्रकृति के अविवेकपूर्ण दोहन ने पूरे जीव-मण्डल के सन्तुलन को असन्तुलित कर दिया है। वन संकुचित होते जा रहे हैं, अनुवांशिक सम्पदा का ह्रास होता जा रहा है, पौधों और पशुओं की जातियां विलुप्त होती जा रही हैं। प्रकृति का हर अवयव - जीवित और अजीवित एक दूसरे पर आश्रित है, एक दूसरे का पूरक है और इस प्रकार पूरी प्रकृति एक बहुत ही सुन्दर तरीके से सन्तुलित है। हर अवयव का अपना अपना नियम स्थान, कार्य और उपयोगिता है। एक छोटी सी भूल विभिन्न स्तरों पर प्रतिक्रियाओं को जन्म देती है। आज मनुष्य को असन्तुलित जीव मण्डल में अपना असुरक्षित भविष्य नजर आने लगा है। उसे इस बात की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है कि जीव मण्डल को विनाश से बचाना है। वह प्रकृति-सन्तुलन के महत्व को समझने लगा है। ऐसे कार्यक्रमों की योजनायें बनाई जा रही हैं कि प्रकृति के विनाश तथा अपरोक्ष रुप से अपने विनाश को रोका जा सके तथा साथ ही इसकी दिशा को वापस मोड़ा जा सके। इसी योजना के अन्तर्गत संरक्षित क्षेत्रों की श्रृंखला बनाने का कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है।

आज से लगभग 42 वर्ष पहले सन् 1952 में इन विचारधाराओं के प्रेरणा स्वरुप भारतीय वन्य-जीव परिषद (इन्डियन बोर्ड ऑफ वाइल्ड लाइफ) की स्थापना हुई तथा सन् 1972 में भारतीय वन्य-जीवन (सुरक्षा) अधिनियम 1972 (इण्डियन वाइल्ड लाइफ (प्रोटेक्शन) एक्ट 1972) लागू हुआ, जिसके अन्तर्गत देश के विभिन्न भागों में अभयारण्य, राष्ट्रीय उद्यान और जैव-मण्डल सुरक्षित क्षेत्र के रुप में कुछ सुरक्षित क्षेत्रों का विकास करने की योजना शुरु की गई। इस योजना के पीछे विचार यही था कि इन सुरक्षित क्षेत्रों में कम से कम मानवीय गतिविधियां होंगी जिससे कि इन क्षेत्रों की वनस्पतियों और पशुओं का संरक्षण हो सकेगा। सन् 1976 में भारत कन्वेन्शन आन इन्टरनेशनल ट्रेड आफ इन्डैन्जर्ड स्पीसीज आफ फाना एण्ड फ्लोरा का सदस्य बना। इसके अतिरिक्त भारत इन्टरनेशनल यूनियन फार कन्जरवेशन आफ नेचर एण्ड नेचुरल रिसोर्सेस तथा वर्ल्ड वाइड फंड फार नेचर का भी सदस्य है। पश्चिमी हिमालय की भंगुर परिस्थितिकी तत्र को देखते हुए इस क्षेत्र के कई हिस्सों को विभिन्न प्रकार के सुरक्षित क्षेत्रों में परिवर्तित किया जा चुका है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने इन विशेष सुरक्षित क्षेत्रों की वनस्पतियों का अध्ययन करने हेतु विशेष कार्यक्रम बनाया है। प्रस्तुत लेख में पश्चिमी हिमालय के मुख्यतः जम्मू एवं कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश के कुछ मुख्य राष्ट्रीय उद्यानों तथा अभ्यारण्यों पर प्रकाश डाला गया है।

(क) जम्मू-कश्मीर राज्य के कुछ मुख्य राष्ट्रीय उद्यान एवं अभयारण्य क्षेत्र:

भारत के शीर्ष प्रान्त जम्मू-कश्मीर में अनुमानतः 2500 से अधिक पुष्पीय पौधों की जातिया पाई जाती हैं। यहां की वनस्पति को स्वरुप के आधार पर सुविधा के लिये तीन हिस्सों में बाँट सकते हैं यथा :-

1. जम्मू की वनस्पति
2. कश्मीर घाटी की वनस्पति
3. लद्दाख की वनस्पति

जम्मू क्षेत्र की वनस्पतिः- यहां के वन साधारणतः पर्णपाती या मिश्रित पर्णपाती हैं, इनमें निम्न जातियों का प्रतिनिधित्व मिलता हैः

अकेसिआ मोडेस्टा, मित्रागाइना पार्वीफ्लोरा, ट्रेमा पॉलीटोरिआ, टर्मिनेलिआ चेबुला, ब्राइडेलिया विस्कोसा के वृक्ष। झाड़ियों का प्रतिनिधित्व करने वाले कुछ सदस्य इस प्रकार हैः *माइमोसा रुबीकाउलिस, डोडोनिआ विस्कोसा, वुडफोर्डिआ फ्रुटिकोसा* व *नेरियम इन्डिकम*। यत्र तत्र, अंराल से जम्मू क्षेत्र की वनस्पति में *पाइनस राक्सबर्घी* के वृक्षों का बाहुल्य पाया जाता है, यदा-कदा *कैरिसा स्पाइनेरम* व *निक्टेन्थस आरबोर-ट्रिसटिस* के वृक्ष देखे जा सकते हैं।

स्थान-स्थान पर जलवायु व ऊंचाई के अनुसार वनस्पति का स्वरुप बदलता देखा जा सकता है, जैसे "पतनी टॉप" के पर्वतों पर अधिकांश रुप में *सेड्रस देवदारा* और पाइनस के वृक्ष पर्वतों के ढलानों पर *इन्डिगोफेरा, जेरार्डिआना, रोजा माइक्रोफिल्ला, बरबेरिस सेराटोफिल्ला,* आदि का बाहुल्य नजर आता है, चिनाब घाटी में पाइनस *रॉक्सबर्घी व कुएरकस डायलाटटा* के वृक्ष व झाड़ियों में *मिर्सीन अफ्रीकाना, जिम्नोस्पोरिआ रॉयलेआना, लेसपेडेजा सेरिसिआ, प्यूनिका ग्रानाटम* आदि एवं पुंछ के आस-पास *उलमस वालिचियाना, सेड्रेला तूना, जीजीफस बुल्गारिस* व *वाइटेक्स निगन्डो* देखने में आता है।

शाकीय पौधों में यदा-कदा *यूफोर्बिआ हेलियोस्कोपिआ एपिलोबियम पार्वीफ्लोरम* आदि मिलते रहते हैं, इनके अतिरिक्त *एकोनाइटम, साउस्सुरेआ कोस्टस, पोडोफिल्लम हेकसान्ड्रम, व वेलेरिआना वालिचिई* आदि औषधीय पौधों को भी देखा जा सकता है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णित विधि से वनस्पति क्षेत्रों में स्थित कुछ क्षेत्रों को निम्नवत प्रस्तुत किया जा रहा है।

कश्मीर घाटी की वनस्पतिः- शीतोष्ण वनों के इस क्षेत्र में अधिकांश रुप से अनावृतबीजी जातियां पाई जाती हैं, जिनमें *सेड्रस देवदारा, पाइनस वालिचिआना, पिसिआ मोरिन्डा, ऐबीज पिन्ड्रो एवं टैक्सस बकाटा* आदि मुख्य है। शंकुकुल की इन जातियों के अतिरिक्त *जुगलान्स रेजिआ, एस्कुलस इन्डिक* एवं ऊंचे पर्वतों पर *बेटुला युटिलिस* जैसे सवृत्तबीजी चौड़ी पत्ती वाली वनस्पति पाई जाती है। इस प्रदेश की झाड़ीदार वनस्पति में *पैरोटिआ जैक्यूमौन्शियाना, वाइवरनम कोटोनिफोलियम, अष्ट्रागेलस क्लोरोस्टेकिस, लोनिसेरा स्पाइनोसा, ऱ्होडोडेन्ड्रोन कम्पानुलाटम, जैसमिनम हुयूमाइल* एवं *सिरिन्गा* इमोडी पाए जाते हैं।

शाकीय वर्ग में *यूफेर्बिआ वालिचिआना, कोरीडेलिस रैमोसा, जिरेनियम वालिचिआनम, एन्ड्रोसासे प्रिमुलोइडेस, रैननकुलस हिटेलस,* व *पिम्पीनेल्ला डाइवर्सीफोलिआ* आदि देखे जाते हैं।

बर्फ से ढके रहने वाले कुछ स्थलों पर *प्रिमुला इलिप्टिका, कोरीडेलिस क्रैसिस्सिमा व कोरीस्पोरा सैबुलोसा* इत्यादि के पौधों को अनेक लुभावने रंगों के फूलों में देखा जा सकता है।

लद्दाख की वनस्पतियां:- शुष्क जलवायु वाले इस भाग में वर्षा नहीं के बराबर होती है। पूरा क्षेत्र वृक्ष विहीन व मरुस्थलीय है। इस भाग में झाड़ियों का बाहुल्य देखा जाता है, जिनमें कुछ जातियां इस प्रकार हैं:-

मिरिकेरिआ इलिगेन्स, रोजा वैबियाना, कैरागैना वर्सीकोलर, जूनिपेरस स्क्वामाटा, एकेन्थौलिमोन लाइकोपोडिओइडेस, थाइलैकोस्पर्मम सेस्पीटोसम, इफेड्रा जिरार्डिआना यदा कदा नजर आते रहते हैं। *स्टेकिस तिबेतिका, क्रिस्टोलिआ क्रैस्सिफोलिआ, नेपेटा फ्लोकुलोसा* आदि विस्तृत रुप से, क्षेत्र की वनस्पति में फैले हुए मिलते हैं।

जम्मू कश्मीर क्षेत्र के कुछ महत्वपूर्ण सुरक्षित क्षेत्र:-

1. **जसतोरा वन्यजीव अभयारण्य:-** पंजाब राज्य की सरहद से लगे इस अभयारण्य का क्षेत्रफल 10 वर्ग कि0मी0 है। इस क्षेत्र में चीता, फ्लाइंग फॉक्स, चीतल, काकड़, जंगली सूअर, बन्दर एवं पक्षी हैं।

2. **रामनगर वन्यजीव अभयारण्य:-** जम्मू में शिवालिक की निचली ऊंचाई वाली पहाड़ियों पर स्थित यह अभ्यारण्य 13 वर्ग कि0मी0 में फैला है। इस अभयारण्य के वन्य जीवों में चीता, जंगल कैट, तेंदुआ, सांभर, चीतल, भालू, सेही आदि देखे जा सकते हैं।

3. **सूरनसार, मनसार वन्यजीव अभयारण्य:-** उद्यमपुर जिले के 40 वर्ग कि0मी0 क्षेत्र में स्थापित इस अभयारण्य में चीता, जंगली सूअर, फ्लाइंग फाक्स एवं कुछ प्रवजन पक्षी देखे जाते हैं।

4. **त्रिकूट वन्यजीव अभयारण्य:-** जम्मू की पहाड़ियों पर स्थापित यह क्षेत्र काफी छोटा है, इस अभयारण्य का क्षेत्रफल 3 व0 कि0मी0 है। यहां तेंदुआ, चीतल, जंगली सूअर, जंगल कैट देखे जा सकते हैं।

5. **"शंकराचार्य हिल" वन्यजीव अभयारण्य:-** यह क्षेत्र डल झील के निकट, बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण प्रतिक्रिया द्वारा, तदुपरांत इस क्षेत्र में कुछ स्तनधारी जीवों को प्रविष्ट कर विकसित किया गया है।

6. **ओबेरा - आरु वन्यजीव अभयारण्य:-** यह स्थान लिड्डर घाटी में 425 वर्ग कि0मी0 क्षेत्रफल में है। यहां पर हांगुल, कस्तूरी मृग, सराऊ, लंगूर, चीता, भूरा भालू एवं कई पक्षियों की जातियां देखने को मिलती है।

7. **दाचीगाम राष्ट्रीय उद्यान:-** यह राष्ट्रीय उद्यान 141 वर्ग कि0मी0 क्षेत्र में एक उच्च स्थलीय

पर्वतीय भू-भाग है। इस उद्यान के वन्य जीवों में कश्मीर स्टैग एक प्रमुख आकर्षण है, इसके अतिरिक्त कस्तूरी मृग, ब्राउन वीयर (भालू), ब्लैक बीअर, उच्च पर्वतीय क्षेत्र के जंगली भेड़ व बकरी आदि भी देखने में आते हैं।

8. **किश्तवार राष्ट्रीय उद्यानः-** यह एक अत्यधिक ऊबड़-खाबड़ 425 वर्ग कि0मी0 क्षेत्रफल में स्थित क्षेत्र है। इस उद्यान में चीता, सीभेट कैट, हंगुल, कस्तूरी मृग, मारखोर, भूरा लंगूर एवं कई प्रकार के पक्षी आदि देखे जा सकते हैं।

9. **गुलमर्ग वन्यजीव अभयारण्यः-** प्रसिद्ध पर्यटल स्थल में स्थित यह अभयारण्य 180 वर्ग कि0मी0 क्षेत्रफल का है। इस जीवमंडल में चीता, भूरा भालू, आइबैकस, मारखोर एवं कुछ स्थानीय पक्षियों को देखा जा सकता है।

10. **हैमिस राष्ट्रीय उद्यानः-** पूर्वी लद्दाख के मरुस्थलीय क्षेत्र में यह राष्ट्रीय उद्यान लगभग 600 वर्ग कि0मी0 क्षेत्र में फैला है। हैमिस राष्ट्रीय उद्यान में विरल एवं संकटग्रस्त सूचि, का जीव हिम रीछ (स्नो लैपार्ड), आइबैकस, भरड़ एवं स्नोकाक जैसी वन्य जीव सम्पदा देखने को मिलती है।

(ख) हिमाचल प्रदेश राज्य के कुछ मुख्य राष्ट्रीय उद्यान एवं अभयारण्य क्षेत्रः

हिमाचल प्रदेश में लगभग 3500 पुष्पीय पौधों की जातियां होने का अनुमान है और पूरा प्रदेश भारत वर्ष के सर्वाधिक वन आच्छादित क्षेत्रों में से एक है। इस क्षेत्र की वनस्पतियों को निम्न वर्गों में बांट सकते हैं:

1. उप उष्णकटिबन्धीय वन
2. उप उष्णकटिबन्धीय शुष्क सदाबहार वन
3. शीतष्ण कटिबन्धीय आद्र वन
4. शीतोष्ण कटिबन्धीय आद्र शुष्क वन
5. उप हिमाद्रि वन
6. हिमाद्रि वन

1. **उप उष्णकटिबन्धीय वनः-** यह वन हिमाचल प्रदेश राज्य के 7300 वर्ग कि0मी0 क्षेत्रफल में पाये जाते हैं। चीड़, पाइन वृक्षों के बाहुल्य वाले इन वन क्षेत्रों में *बरबेरिस, रुबस, कैरिस्सा* एवं *एउफोर्बिआ रायलेआना* के क्षुप पाए जाते हैं।
2. **उप उष्णकटिबन्धीय शुष्क सदाबहार वनः-** इन वनों में *ओलिआ, टर्मिनेलिआ, अल्वीजिआ, एनोजिसस* व *अकैसिआ* आदि के वृक्षों को देखा जा सकता है। झाड़ियों में *कोरिआरिआ, डेस्मोडियम* व *जैन्थोजाइलम* आदि होते हैं। *थेमेडा, हिटरोपोगॉन, सिम्बोपोगान* व *सैकरम* आदि घास की जातियां भी यत्र-तत्र बिखरी मिलती हैं।

3. **शीतोष्ण कटिबन्धीय आद्र वनः-** इन वनों में पाये जाने वाले मुख्य वृक्ष व झाड़ियां क्रमशः *कुएरकस इनकाना, कु0 डायलाटाटा, कु0 सेमीकार्पीफोलिआ पिसीआ स्मिथिआना, एबीज पिन्ड्रो, सेड्रस देवदारा, पाइनस वालिचिआना, एस्कुलस इन्डिका, जुगलान्स रेजिआ, सिम्प्लोकॉस* आदि है। शाकीय पौधों में *साइनोग्लोसुम* यत्र-तत्र नजर आते रहते हैं।

4. **शीतोष्ण कटिबन्धीय आद्र शुष्क वनः-** इन वनों में मुख्यतः *कुएरकस, आइलेक्स, पाइनस जिरार्डियाना एसर, सैलिक्स, मोरस* आदि वृक्षों की जातियाँ पाई जाती हैं। झाड़ियों में *प्रूनस, डैफ्नी, कोर्नस, व फ्रैक्सीनस* आदि मुख्य हैं।

5. **उप हिमाद्रि वनः-** इन वनों में मुख्यतः *रहोडोडेन्ड्रोन कम्पानुलाटम* व *बेटुला यूटिलिस* (बर्च या भोज पत्र), *एबीज पिन्डो* (फर) वृक्ष वर्ग के प्रतिनिधि हैं। शाकीय पौधों में से कुछ इस प्रकार हैं :- *सैक्सीफ्रेगा, इफेड्रा, जेरार्डिआना, मोरिना कोल्टेरिआना व इरिमुरस हिमालाइकस।*

6. **हिमाद्रि वन :-** स्नो लाइन से 3500 मीटर तक के स्थान, इन वनों में *जूनिपेरुस कमयूनिस, जू0 स्क्वामाटा, रहोडोडेन्ड्रोन एन्थोपोगा रो0 लेपिडोटम,* की झाड़ियों वाली वनस्पति पाई जाती है। शाकीय वर्ग के सदस्यों मे *प्रिमुला, कोरीडेलिस, एनाफेलिस, सास्सुरेआ पिप्टाथिरा, कोटोनेआस्टर प्रोस्टाटस को0 माइक्रोफिल्लम, ड्राबा, सेनिसिओ* एवं *पोआ* आदि पाए जाते हैं।

हिमाद्रि वनों के पथरीले रेगिस्तानी क्षेत्रों में विशिष्ट "गद्देदार" स्वरुप की वनस्पति भी पाई जाती है एवं इन्हीं हिमाद्रि वनों में आद्र क्षुप जैसे *रहोड्रोडेन्ड्रोन बरबेरिस, सेलिक्स, एकोनाइटम, लोनीसेरा, कोटोनेआस्टर, एस्ट्रागेलस, आइरिस, एल्लियम, पैडिकुलैरिस* आदि काफी मात्रा में पाए जाते हैं। इसी क्षेत्र के शुष्क क्षुप वाले प्रभाग में जूनिपेरुस की झाड़ियों का बाहुल्य नजर आता है। शाकीय वर्ग में *पिमुल्ला सिडम, ड्राबा, साउस्सुरेआ, एनीमोन, मैकोनोप्सिस, साकसीफ्रागा, करेक्स पोआ* एवं *फेस्टुका* को यत्र-तत्र देखा जा सकता है।

हिमाद्रिमिडों क्षेत्रों में घास के मैदानों में *एनीमोन, एग्निेरिआ, जियम, कोराडेलिस* व प्रिमुला के पौधों को साधारणतः बड़ी मात्रा में अक्सर देखा जाता है। साथ ही इन वनों में यदाकदा परोपजीवी पौधे जैसे : *स्कुरुला इलाटा, स्कु0 पुल्वैरुलेन्टा, टैक्सील्लम वेरिटटस, विस्कम अल्बम,* एवं *कस्कुटा* की जातियां पाइ जाती हैं। परोपजीवी वर्ग में *आर्स्यूथोबियम माइनुटिस्सिमम* जिसे वनस्पति जगत का सूक्ष्मतम पुष्पीय पौधा माना जाता है भी इन वनों में देखा जाता है।

हिमाचल प्रदेश स्थित कुछ महत्वपूर्ण राष्ट्रीय उद्यान एवं अभयारण्यः

1. **जवाहर लाल नेहरु ग्रेट हिमालयन राष्ट्रीय उद्यानः-**

यह राष्ट्रीय उद्यान एक विशाल क्षेत्र में स्थित है, इस राष्ट्रीय उद्यान का क्षेत्रफल 1760 वर्ग कि0म0 है। चीता,तेंदुआ, सीभेद कैट, भूरा एवं काला भालू, कस्तूरी मृग एवं घूरड़ वन्य जीव इस राष्ट्रीय उद्यान में पाये जाते हैं।

2. **पिनघाट राष्ट्रीय उद्यानः-**

उत्तर-पूर्व हिमाचल प्रदेश में यह एक उच्चस्थलीय राष्ट्रीय उद्यान है। उद्यान का अधिकांश भाग बर्फ से ढका रहता है। पिन घाटी राष्ट्रीय उद्यान में हिम रीछ (स्नो लैपर्ड), उच्च स्थलीय हिमालय की भेड़ और बकरी की जातियां। पक्षी जैसेः चील एवं बाज।

3. **बनडी वन्यजीव अभयारण्यः-**

मंडी जिले में स्थित इस अभयारण्य का क्षेत्रफल 41 वर्ग कि0मी0 है। इस क्षेत्र में पाई जाने वाली वन्यजीवन संपदा में चीता, जंगल कैट, काला भालू, घूरड़, जंगल फाउल एवं चील है।

4. **गोबिन्द सागर वन्यजीव अभयारण्यः-**

गोबिन्द सागर बांध के इर्द-गिर्द स्थित इस अभयारण्य का क्षेत्रफल 100 वर्ग कि0मी0 है। प्रवजनीय एवं स्थानीय जल पक्षी इस आरक्षित जीव मंडल में देखे जा सकते हैं।

5. **कैरा वन्यजीव अभयारण्यः-**

कुल्लू जिले में लगभग 13.7 वर्ग कि0मी0 में स्थित इस अभयारण्य में चीता, काला भालू, भूरा भालू व कस्तूरी मृग पाए जाते हैं।

6. **काला तोप - खज्जीहार वन्यजीव अभयारण्यः-**

यह जीव मंउल 47 वर्ग कि0मी0 क्षेत्र में फैला है। इस क्षेत्र में जंगल कैट, सिमट कैट, भूरा व काला भालू, पर्वतीय भेड़ व बकरी एवं स्थानीय पक्षी पाए जाते हैं।

7. **कनवार वन्यजीव अभयारण्यः-**

पार्वती नदी के तट पर 8 वर्ग कि0मी0 में स्थित इस अभयारण्य में चीता, घूरड़, कस्तूरी मृग, कोकलर, खलिज, चीर व ट्रैगोपन फीजैन्ट देखे जाते हैं।

8. **खोखन वन्यजीव अभयारण्यः-**

13 वर्ग कि0मी0 का यह अभयारण्य कुल्लू जिले में स्थापित किया गया है। इस अभ्यारण्य में चीता, जंगल कैट एवं काला भालू पाए जाते हैं।

9. **कुगटी वन्यजीव अभयारण्यः-**

यह चम्बा जिले में 118 वर्ग कि0मी0 क्षेत्र में स्थित है। इस जीवमंडल में चीता, कस्तूरी मृग, काकड़, ताहर, आइबेकस, खलीज, मोनाल, ट्रैगोपैन फीजैन्ट आदि है।

10. **लिप्पा असरंग वन्यजीव अभयारण्यः-**

किन्नौर जिले के 109 वर्ग कि0मी0 में स्थित इस अभयारण्य में चीता, आइबेकस, भरड़, कस्तूरी, मृग, स्नोकाक, जंगल फाउल व फीजैन्ट देखने को मिलते हैं।

11. **मनाली वन्यजीव अभयारण्यः-**

व्यास नदी के ऊपरी जलागम क्षेत्र में यह अभयारण्य 31 वर्ग कि0मी0 में स्थित है। इस अभयारण्य में चीता, सीराउ, कस्तूरी मृग, हिम चीता (स्नोलैपर्ड अप्रवासी) मोनाल व स्नो काक देखने में आते हैं।

12. **नागरु व बिन्च वन्यजीव अभयारण्यः-**

हिमाचल प्रदेश के मध्य क्षेत्र में लगभग 278 वर्ग कि0मी0 क्षेत्र में स्थित है। इस अभयारण्य में चीता, काला एवं भूरा भलू, कस्तूरी मृग, फिजैन्ट, टिट, चील आदि हैं।

13. **नैना देवी वन्यजीव अभयारण्यः-**

बिलासपुर जिले में लगभग 163.5 वर्ग कि0मी0 क्षेत्र में स्थित इस अभयारण्य में चीता, जंगली भालू, फीजैन्ट व कठफोड़वा देखने में आते हैं।

14. **पोंग झील वन्यजीव अभयारण्यः-**

इस जीव मंडलीय क्षेत्र में ऊना व कांगड़ा जिला एवं पोंग बांध के क्षेत्र आते हैं इस अभयारण्य में मध्य एशिया व साइबेरिया क्षेत्र से आने वाले कई जल पक्षी देखे जाते हैं।

15. **रकछम चितकुल वन्यजीव अभयारण्यः-**

किन्नौर जिले में इस अभयारण्य का क्षेत्रफल 138 वर्ग कि0म0 है। इस अभयारण्य में हिम रीछ (स्नोलैपर्ड, अप्रवासी), भालू, पर्वतीय भेड़ एवं बकरी, मोनाल, चील व बाज पक्षी देखे जाते हैं।

16. **रेनूका वन्यजीव अभयारण्यः-**

यह क्षेत्र रेनूका झील के इर्द-गिर्द 13.5 वर्ग कि0मी0 है। इस अभयारण्य में चीता, चीतल, जंगली सूअर, चीर, फीजैन्ट व जंगल फाउल को देखा जा सकता है।

17. **शिकारी देवी वन्यजीव अभयारण्यः-**

मंडी जिल में 213 वर्ग कि0मी0 में स्थित इस अभयारण्य में चीता, तेंदुआ, भूरा एवा काला भालू, घूरड़ फीजैन्ट देखने में आते हैं।

18. **शिली वन्यजीव अभयारण्यः-**

यह आरक्षित भाग सोलन जिले में है। 20 वर्ग कि0मी0 क्षेत्र के इस अभयारण्य में लोमड़ी, चीर फीजैन्ट एवं जंगल फाउल पाए जाते हैं।

पर्यावरण एवं प्राकृतिक सम्पदा का संरक्षण

हर्ष चौधरी

आज जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि एवं तकनीकी व औद्योगिक विकास के फलस्वरुप जीवमण्डल की परिस्थितिक अवस्था दिन प्रतिदिन असंतुलित होती जा रही है जो प्राणिमात्र के लिये चिन्ता का विषय है। इन सभी समस्याओं का यदि समय रहते निदान न किया गया तो समस्त जीवमण्डल के लिये एक ऐसा संकट पैदा हो जायेगा जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। मनुष्य अपनी निजी रोजमर्रा की जिन्दगी की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक निधियों, संसाधनों का आज जिस गति से सर्वनाश कर रहा है यदि इस पर उचित व समयानुसार रोक नहीं लगाई गई तो आने वाले कुछ वर्षों में ही हमको इसके गंभीर परिणाम भुगतने होंगे। अभी कुछ समय पूर्व ही ईथोपिया में पड़े भयंकर सूखे एवं अकाल से हजारों की सख्या में मनुष्यों एवं लाखों पशु पक्षियों की अकाल मृत्यु शायद ही किसी को भूली हो मगर शायद सबको ये नहीं मालूम होगा कि इस भयंकर प्राकृतिक दुर्घटना का मुख्य कारण क्या था? जी हां! केवल मानव। शायद इस कथन पर हर एक को सहज ही विश्वास नहीं होगा किन्तु ये उतना ही कटु सत्य है जितना कि "सूर्य का पूर्व में उदित होना" है। इस प्रकार के अनेक ऐसे उदाहरण मिल जायेंगे जहाँ अल्प-कालिक लाभ के लिये मनुष्य ने अपनी अमूल्य प्राकृतिक धरोहर का विनाश किया है जिसके फलस्वरुप प्राकृतिक संतुलन प्रायः नष्ट हो गया है और वो स्थान उचित वातावरण न रहने के कारण जीवों के लिए उपयुक्त नहीं रह गया है। शायद आज के युग में मनुष्य अपनी बढ़ती विज्ञान एवं तकनीकी सभ्यता द्वारा सुख ऐश्वर्य के साधन जुटाने में इतना उलझा हुआ है कि वह यह तथ्य भूल गया है कि समस्त जीव प्रकृति का ही अभिन्न अंग है।

हमें गर्व है कि हम अपनी उन्नत विज्ञान एवं तकनीक द्वारा अनेक क्षेत्रों में सफलता पा चुके हैं और आज हम कृषि तथा अन्य क्षेत्रों में आत्मनिर्भर है। आज समुद्र तल से चन्द्रमा तक हम कुछ भी कर सकते हैं परन्तु हमारी आवश्यकता केवल भोजन वस्त्र तक ही सीमित नहीं है। स्वच्छ वायुमण्डल व वातावरण उतना ही आवश्यक है जितना कि भोजन। ये हर्ष का विषय है कि मनुष्य इस तेजी से नाश होते हुए प्राकृतिक संतुलन को समझने लगा है और उसको इसका भी ज्ञान हो गया है कि वह इसको नष्ट करने या उचित वातावरण का सृजन करने में पूर्ण रुप से सक्षम है। प्राकृतिक संतुलन बनाये रखने से वर्तमान समय के अनेक संकट दूर किये जा सकते हैं। परन्तु संरक्षण का अर्थ केवल सुरक्षा ही नहीं बल्कि प्राकृतिक सम्पदा का समुचित व मितव्ययी उपयोग भी है।

हम अपने दैनिक जीवन में प्राकृतिक साधनों का कई प्रकार से उपयोग करते हैं। ये साधन मुख्यतया दो प्रकार के हो सकते हैं

1. **नवीनीकरण योग्य साधनः**

जल, मृदा, वन, वनस्पति तथा जंगली जीवजन्तु इत्यादि ऐसे प्राकृतिक साधन हैं जो पुनः प्राप्त किये जा सकते हैं इस कारण ये नवीनीकरण योग्य साधन कहलाते हैं।

2. **नवीनीकरण के अयोग्य साधनः**

ये ऐसे साधन हैं जो कि एक बार प्रयोग में लाने से हमेशा के लिए समाप्त हो जाते हैं जिनमें खनिज तेल, कोयला, लवण इत्यादि मुख्य हैं।

विकासशील उद्योग धन्धे के लिये, जो आज की बढ़ती हुई जनसंख्या के अनुरुप द्रुतगति से बढ़ रहे हैं ज्यादा से ज्यादा लकड़ी, कोयला, व खनिज तेलों, की आवश्यकता है। इन सब साधनों को उपलब्ध कराने के लिये भूमि की आवश्यकता पड़ती है। फलस्वरुप मानव वनों को काट रहा है। इन वनों के कटने से अनेक जन्तुओं, वनस्पतियों की जातियाँ समाप्त हो गई हैं या लुप्तप्राय हैं। आज खनिज तेलों, कोयला तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध प्रयोग हो रहा है जिनके घातक परिणाम शायद हम नहीं समझ पा रहे हैं। उचित यही होगा कि हम समय रहते इन सभी समस्याओं का समाधान ढूंढें। इसके लिए आवश्यकता है अधिक से अधिक परती पड़ी जमीन में वृक्षारोपण करने की तथा जल, कोयला, खनिजों, वन, वन्यप्राणियों तथ मृदा के संरक्षण की। साथ ही प्रदूषण को कम करने के उपायों पर भी नये सिरे से विचार करना होगा। आज मनुष्य का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि वह इन साधनों को कितनी मितव्ययिता एवं बुद्धिमत्ता से उपयोग करता है। लगातार व अव्यवस्थित उपयोग से साधन समाप्त भी हो सकते हैं। खनिज तेलों के विषय में ऐसा अनुमान है कि यदि इसी गति से इनका उपयोग होता रहा तो आगामी 25 से 30 वर्षों में शायद इस पृथ्वी पर एक बूंद भी तेल उपलब्ध न होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए ऊर्जा के नये स्रोतों पर अविराम खोजें व नित नये प्रयोग किये जा रहे हैं। इसी प्रकार पीने योग्य जल का भी विकट संकट भविष्य में पैदा हो सकता है। कुछ प्रमुख प्राकृतिक निधियों के संरक्षण के विषय में नीचे उल्लेख किया गया है:

वन संरक्षणः

वन प्राकृतिक निधियों का भंडार व जीव जन्तुओं का आश्रय स्थल है। मनुष्य को वनों से अनेक उपयोगी वस्तुएं प्राप्त होती हैं जिनमें लकड़ी, जड़ी, बूटियाँ आदि मुख्य हैं। वन अनेक जैविक तथा अजैविक तत्वों का एक व्यापक तंत्र है जिसे वन पारिस्थितिक तंत्र कहते हैं। वनों का नाश वन्य पशुओं तथा पूरे वन परिस्थितिक तंत्र को नष्ट करता है। गत कई दशकों में वन्य प्राणियों का विनाश हुआ है। वनों के कटाव से अनेक प्राकृतिक समस्यायें जुड़ी हुई हैं। जिनमें मुख्य हैं वर्षा में कमी के कारण सूखा पड़ना, बाढ़, भूमि का कटाव, इत्यादि। वन संरक्षण के अन्तर्गत वृक्षारोपण, लकड़ी काटने पर रोक तथा इसका मितव्ययी उपयोग, स्वास्थ्य वन वृक्षों के लिये रोगों पर नियंत्रण, आदि विषय मुख्य हैं।

इसके लिए भारत सरकार का वन एवं पर्यावरण मंत्रालय विशेष प्रयत्न कर रहा है। वनों के कटने से कभी-कभी ऐसी वनस्पतियाँ, जीव जन्तु नष्ट हो सकते हैं जो अन्यत्र नहीं पाये जाते और इस प्रकार उनका धरती से अस्तित्व ही मिट सकता है। एक मोटे अनुमान के अनुसार पौधों की लगभग 5000 ऐसी जातियां हैं जो केवल भारत में ही पाई जाती हैं, अन्यत्र नहीं। इनमें से लगभग आधी जातियां आज संकट ग्रस्त हैं जिसके लिये मूलरुप से हम जिम्मेदार हैं। इनमें से कुछ लुप्त प्रायः हैं और अनेक ऐसी जातियां हैं जो दुबारा अनेकों प्रयास करने के बाद भी नहीं मिल सकी हैं। शायद ये लुप्त हो चुकी हैं। ऐसे संकट ग्रस्त पौधों का संरक्षण अति आवश्यक है। भारतीय वनस्पति

सर्वेक्षण ऐसे पौधों पर पिछले कुछ वर्षों से निरन्तर कार्यरत है और अनेक संकटग्रस्त पौधों को जंगलों तथा अन्य दुर्गम क्षेत्रों से खोजकर अपने उद्यानों व विशेष प्रकार की परीक्षणशालाओं में उगा रहा है जिससे इनको लुप्त होने से बचाया जा सके। अनेक ऐसे पौधों की जातियां खोज निकाली गई हैं जिनके बारे में सोचा जाता था कि वे लुप्त हो चुकी हैं।

वन्य पशुओं एवं पक्षियों का संरक्षण:

पशु और पक्षियों का संहार मानव अपने दैनिक जीवन की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये करता है जिसमें मुख्य भोजन है। अनेक जन्तुओं की खाल से वस्त्र, जूते, सूटकेस आदि बनाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक जंतुओं के बाल, सींग, एवं दाँतों से अनेक उपयोगी वस्तुयें बनती हैं। इतना ही नहीं, जंगली जीव जन्तु मनोरंजन एवं जीवकोपार्जन के भी महत्वपूर्ण साधन हैं। इसी कारण गत कई शताब्दियों में वन्य जन्तुओं का अधिकाधिक विनाश हुआ है। एक अनुमान के अनुसार विगत 3 शताब्दियों में लगभग 370 जातियां विलुप्त हुई हैं जो कि प्राकृतिक संतुलन को नष्ट करने वाली एक भयंकर दुर्घटना है। यदि वन्य पशु संरक्षण के और अधिक कड़े, दंडनीय नियम नहीं बनाये गये होते तो शायद शीघ्र ही कस्तूरी मृग, गेंडा, शेर, बाघ, तेंदुआ, हिरण इत्यादि भी लुप्त हो जायेंगे। कुछ वन्य पक्षी, जैसे वन मुर्गी, काला तीतर, बटेर, सारंग, गुलाबी सरवाली बत्तख की संख्या में भी काफी कमी आई है। कभी-कभी ऐसा भी देखने में आया है कि किसी एक जन्तु के समाप्त होने पर उससे संबंधित दूसरे जन्तु व वनस्पतियाँ भी समाप्त हो जाती हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है डोडो नाम का एक पक्षी जो अपने बड़े शरीर व छोटे पंखों के कारण उड़ने में असमर्थ था। किसी समय में ये पक्षी काफी भारी संख्या में मारीशस में पाये जाते थे। जब वहाँ विदेशी नागरिक आकर बसे तो उनके साथ ही आये घरेलू पालतू पशुओं, जिनमें कुत्ते व बिल्ली मुख्य, थे ने इस पक्षी का काफी बड़ी संख्या में संहार किया। साथ ही मनुष्यों ने भी उनका जमकर शिकार किया क्योंकि यह पक्षी तेज भागने या उड़ने में असमर्थ था। कालान्तर में ये पक्षी इस पृथ्वी से लुप्त हो गया साथ ही एक वृक्ष *कैल्वेरिया* भी समाप्त हो रहा है। केवल गिनती के कुछ वृक्ष बचे हैं जो कि मात्र कुछ समय में ही समाप्त हो जायेंगे। कारण केवल इतना है कि इस वृक्ष के बीज जब तक डोडो पक्षी की आहार नलिका द्वारा नहीं गुजरते वे अंकुरित नहीं होते हैं तात्पर्य ये है कि कभी-कभी एक जीव के विनाश से उनसे संबंधित अनेक अन्य जीवों का अस्तित्व संकट में पड़ सकता है।

हमारा यही प्रयास होना चाहिये कि जो जातियां आज उपलब्ध हैं वे अधिकाधिक समय तक इस धरा पर जीवित बनी रहें। ये हमारा कर्तव्य तो है ही मगर इससे ज्यादा इसमें हमारा स्वार्थ निहित है। इस सन्दर्भ में आज आवश्यकता है : वनों के विनाश को रोकना, दैनिक जीवन में उपयोगी वृक्षों को उस भूमि पर उगाना जो कृष योग्य नहीं है या जहाँ वन नहीं हैं तथा जल, वायु आदि के प्रदूषण पर रोक लगाना। संकटग्रस्त पौधों व जीव-जन्तुओं का समुचित संरक्षण करना तथा उनके प्राकृतिक निवास को नष्ट होने से बचाना।

महत्वपूर्ण एवं ध्यान देने योग्य बात ये है कि वनस्पति पर्यावरण के प्रदूषण को रोकने व समस्त जीव जन्तुओं को स्वच्छ व स्वस्थ्य वायुमण्डल प्रदान करने में पूर्णतया सक्षम हैं और शायद एकमात्र उपाय।

प्रदूषण का पता लगाने में हरितोद्भिदों का योगदान

जे० एन० वोहरा एवं सर्वेश कुमार*

वायुमण्डल में प्रदूषण का पता लगाने में हरितोद्भिद सांकेतिक पौधों के रुप में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। इन पौधों की कार्यकी एवं जैव-रसायन अध्ययनों द्वारा यह ज्ञात किया जा चुका है कि इनमें वायुमण्डल में उपस्थित भारी धातुओं को अवशोषित करने की अद्भुत क्षमता है। वायुमण्डल में भारी धातुऐं बड़े-बड़ें शहरों में वाहनों व औद्योगिक संस्थानों से उत्पन्न हुए धुएं में काफी मात्रा में पाई जाती हैं व वायु के प्रदूषण के लिये जिम्मेदार है। अतः इन क्षेत्रों के पौधों, विशेषकर हरितोद्भिदों में उपस्थित भारी धातुओं की मात्रा से उस क्षेत्र में प्रदूषण की स्थिति का सही अनुमान लगाया जा सकता है।

हरितोद्भिदों की विभिन्न जातियों पर प्रदूषक गैसों के प्रभाव भी भिन्न-भिन्न होते हैं। कई जातियों में प्रदूषक तत्वों को सहन करने की अत्यधिक क्षमता होती है तथा ये बिना किसी गम्भीर क्षति के प्रदूषकों को अपने में समेटे रहती हैं। कुछ अन्य जातियां काफी संवेदनशील होती हैं तथा प्रदूषक तत्वों की अल्प मात्रा भी इनके लिए प्राणघातक सिद्ध हो सकती है। सल्फर डाइआक्साइड आदि कई विषैली गैसें अत्यधिक हानिकारक सिद्ध हुई हैं।

हरितोद्भिदों की प्रदूषण संकेतक क्षमता के आधार पर उन्हें तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है: (1) भारी धातुओं का संचयन करने वाले, (2) प्रदूषण क्षेत्रों में पूर्णतः अनुपस्थित रहने वाले, व (3) वितरण नमूनों के संयोजन के आधार पर।

प्रथम श्रेणी में आने वाले भूमिस्थ हरितोद्भिदों में ताम्र संचयी मास प्रमुख है। परसन[1] व शेकलेट[2] ने *मिक्रोफेना, डिप्टीडॉन* तथा *मरसेया* आदि वंशों की कुछ जातियों को ताम्र समृद्ध स्थानों पर उगते हुए पाया व इनमे तांबे की मात्रा भी 67.5 लाखांश तक आंकी गई। शेकलेट ने तो ताम्रस्नेही समुदायों का भी पता लगाया जिनमें *जिम्नोकोलिया एक्यूटीफोलिया* नामक लिवरवर्ट मुख्य अवयव था। इसी प्रकार वाटसन[3] ने जिप्सम एवं लौह सल्फाइड आदि के बाहुल्य क्षेत्रों में उगने वाली अनेकों मास जातियों का पता लगाया व इस बात की पुष्टि की कि मॉस वास्तव में इन धातुओं को संचित करते हैं व संकेतक के रुप में प्रयुक्त किए जा सकते हैं।

---

1. परसन, एच०, जे० : हट्टोरी बॉट. लैब. 17: 1-18 (1956)
2. शेकलेट, एच० टी०, : ब्रायोलॉजिस्ट 64: 1(1961)
3. वाट्सन ई० वी०, : स्ट्रक्चर एण्ड लाइफ आव ब्रायोफइट्स, हचिंसन्न लाइब्रेरी प्रेस, लंदन, (1967)

इसी प्रकार जलीय हरितोद्भिदों में *फिस्सीडेन्स ग्रान्डीफ्रॉन्स, क्रेटीन्यूरॉन फिलीसीनम* आदि कैल्शियम समृद्ध जल में मिलते हैं व जल में कैल्शियम की मात्रा कम करने में सहायक हैं। सहस्त्रधारा (देहरादून) में पाई जाने वाली इनकी कई जातियां, जैसे *हाइड्रोगोनियम ग्रेसील्यूटम, ब्रायम सेलुलेयर, एस्टरेला मेक्यूलेटा,* आदि कैल्शियम की चट्टानों से लगातार बहते पानी के माध्यम से जुड़ी रहती हैं।

हाल ही के अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि मॉस द्वारा अवशोषित भारी धातुओं की मात्रा वायुमण्डल में उपस्थित धातु की मात्रा की समानुपाती होती है। यद्यपि यह अनुपात धातु की भिन्नता व जातियों की भिन्नता पर भी काफी निर्भर करता है। उदाहरण के लिये एक उपरिरोही मॉस *प्टीरोगोनियम ग्रेसाइल* के अध्ययन से पता चला कि सन् 1944 से 1947 तक डेनमार्क के एक स्थल में (जहां यह मॉस पाई गई थी) सीसा, वेनेडियम तथा जस्ते की मात्रा में क्रमशः 155%. 51% तथा 28% तक की वृद्धि हुई। कुछ विशिष्ट संकेतक मॉस भी अध्ययन द्वारा प्रकाश में आई है। *प्लेटीहिप्नीडियम राइपेरिआइडिस* मैगनीज द्वारा प्रदूषण की जानकारी देती है तो *एअरोब्रायोप्सिस लौगिस्सिमा* क्रोमियम के प्रदूषण की।

मॉस की किसी स्थान विशेष पर पूर्णतः अनुपस्थिति भी उस स्थान की प्रदूषित अवस्था की ओर इंगित करती है। सल्फरडाइऑक्साइड की प्रचुरता वाले क्षेत्रों में कतिपय, लिवरवर्टस जैसे *सिरैटोलिज्यूनिया रुबीजिनोसा, कॉलोलिज्यूनिआ ट्यूबरकुलेटा, रेडुला ऐपीफिल्ला,* आदि, की उत्तरी अमेरिका से पूर्णतः लुप्ति के लिए प्रदूषण की अधिकता को ही जिम्मेदार ठहराया गया है।

उपरोक्त उदाहरणों से हम निश्चय ही इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि प्रदूषण का पता लगाने के लिए हरितोद्भिद भरोसेमंद संकेतक हैं व इनमें से कुछ की अत्याधिक प्रतिकूल परिस्थितियों को सह लेने की क्षमता के कारण ये शैवाल व पुष्पी पौधों से भी अच्छे प्रदूषण मापक हो सकते हैं। वर्तमान अध्ययनों में कुछ हरितोद्भिदों की जलशुद्धिकारक भूमिका से तो इनका प्रदूषण निवारक के रुप में प्रयोग किए जाने की संभावनाऐं भी बढ़ी हैं। अतः इस दिशा में और अधिक अध्ययन की आवश्यकता है।

कालिदासीय नाटकों में वन एवं वन्य जीवन

डा0 (कु0) अमिता अग्रवाल

आज पर्यावरण पर देशव्यापी गोष्ठियां हो रही हैं लेकिन वन संपदा का विनाश उसी प्रकार जारी है। इस सन्दर्भ में संस्कृत साहित्य के उज्ज्वल नक्षत्र महाकवि कालिदास के नाटकों का स्मरण सहज ही हो आता है जिसमें उन्होंने प्राकतिक सौरभ लिए वन, आश्रम (तपोवन), पर्वत, नदियों, उद्यान, उपवन, प्रमदवन आदि का रम्य एवं रोमांचकारी चित्रण प्रस्तुत किया है। चिन्तनशील ऋषियों मुनियों की साधना स्थली बने वन विनाश के कगार पर खड़े हैं। यह उस देश में हो रहा है जहां की संस्कृति अरण्य की संस्कृति मानी जाती है। अपने हरे-भरे परिधान से विभूषित वन श्री का जो चित्रण हमारे कालजयी तत्व द्रष्टाओं ने किया है उसकी आज के सन्दर्भ में बड़ी आवश्यकता है।

महाकवि ने वन के स्वरुप में वृक्षों और वन्य जन्तुओं का प्रमुख रुप से समावेश किया है। यहां यह समझ लेना चाहिए कि उनकी दृष्टि में वृक्ष क्या है? वे कहते हैं कि धूप से तपे हुए मनुष्य के लिए तरु की छाया प्रिय होती है[1]। वृक्ष इतना उपकारी होता है कि वह अपने ऊपर धूप सहता है मगर सहारा लेने वालों का परिताप हर लेता है[2]। यथार्थ भी यही है कि छायादार पेड़ सूर्य का ताप अपने ऊपर ही रोक लेते हैं। पेड़ मानव जीवन के लिए कितनी सीख देते हैं इस तथ्य का दर्शन भी कालिदास ने किया है। उनका कहना है कि फल आने पर पेड़ नम हो जाते हैं[3]। राज्य की श्री समृद्धि और सुखोपभोग के बाद निवृत्ति की ओर उन्मुख सम्राटों द्वारा अन्त में तरुमूल का आश्रय लिया जाता है[4]। यदि वृक्ष के विषय में कालिदासीय निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाय तो वह है कि मानव के वनवास के समय पेड़ ही उसके बन्धु होते हैं। ऐसे वृक्षों का समुदाय ही वन कहलाता है जिसमें हिंसक-अहिंसक पशु, विविध पक्षी, सरी-सृप, सरिता, सरोवर, टीले, ढलान आदि सभी सम्मिलित होते हैं।

कवि मूलतः भाव प्रवण होता है वैज्ञानिक नहीं, अतः वह इन्द्र के नन्दन वन और कुवेर के चैत्ररथ वन की चर्चा किये बिना नहीं रह सकता। महाकवि कालिदास ने भी कहीं दिव्य वनों के संकेत किये हैं और कहीं उनके वर्णन। विक्रमोर्वशीयम् में कुमारवन भी एक ऐसा ही वन है जिसे दिव्य तो नहीं किन्तु अर्धदिव्य कह सकते हैं क्योंकि उसकी स्थिति गन्धमादन पर्वत पर बताई गई है[6] और गन्धमादन पृथ्वी का पर्वत है स्वर्गलोक का नहीं। दिव्यता इतनी ही है कि कार्तिकेय के इस वन में स्त्री-गमन

---

1. निर्वाणाय तरुच्छाया तत्पस्यं हिं विशेषतः:- विक्रम 1 श्लोक 21, तृतीय अंक
2. अनुभवति हि मूर्ध्ना पादप्तीव्रमुष्णं।
   शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्।। शाकु.-पचम अंक. श्लो. 7
3. भवन्ति नम्रास्तरुः फलागमैः- वही -श्लोक- 12-5 वा अंक
4. नियतैकयतिव्रतानि पश्चातरु वलानि गृही भवन्ति तेषाम् शाकु. सप्तम अंक श्लोक -20
5. तरुभिरियं वनवासं बन्धुभिः-वही-चौथा अंक श्लोक 10
6. पुराभगवता कुमारेण शाश्वतं कुमारवतं गृहीत्वा कलुषो नाम गंधमादन कच्छोड-ध्यासित विक्रम पृष्ठ 236; उर्वशी किल तं रतिसहायं राजर्षिममात्येषु निवेशित राज्यधुरं गृहीत्वा गन्धमादन वनं विहर्तुगता वही चौथा अंक पृष्ठ 213

प्रतिषिद्ध था। इस प्रतिषेध का उल्लघंन कर वहाँ गई उर्वशी को लता रुप में परिणत होना पड़ा[7]। ऐसी ही कुछ स्थिति अभिज्ञान शाकुन्तलम् में निरुपित मारीचाश्रम की है। इसी नाटक में कालिदास ने हिमगिरि की उपत्यका में स्थित वन का उल्लेख किया है[8] जिसका अभिप्राय मालिनी नदी के तट पर फैले हुए जंगल से था और उसी के एक भाग में महर्षि कण्व का आश्रम स्थित था[9]। आश्रम से लगे इसी जंगल में राजा दुष्यन्त शिकार खेलने के लिए आये थे। नन्दन वन देवताओं का वन है[10] जिसमें सर्व सुख तथा समस्त ऋतुओं के सार्वकालिक वैभव की कल्पना की गई है। कवि ने राजाओं के प्रमदवन के लिए नन्दन वन को उपमान के रुप में चुना[11] है। वास्तव में प्रमदवन राजाओं की रानियों के लिए क्रीड़ा-विलास का उद्यान हुआ करता था जिसमें फूलदार वृक्ष, लता गुल्म, झील और राग रंग के अनेक साधनों की सम्पन्नता होती थी। उसमें एक पर्वत भी बनाया जाता था[12]। झूला झूलने की व्यवस्था होती थी,[13] जाने के लिए एक गूढ़ मार्ग होता था[14] तथा उसकी देखभाल के लिए मालिन या प्रमदवन पालिका नियुक्त की जाती थी[15]। प्रमदवन में वसन्त की जवानी देखते बनती थी[16]। प्रमदाओं का वन होने के कारण ऐसे राजोद्यान का नाम प्रमदवन रखा जाता था। उसका वातावरण मादक होता था।

प्रमदवन की रचना द्वारा प्राचीन स्थापत्य पर भी प्रकाश पड़ता है। किसी न किसी रुप में मनुष्य पेड़ पौधों की समीपता के लिए तृषित रहा करता था।

उद्यान प्राचीन जन-जीवन में इतने घुल मिल गये थे कि कुशलक्षेम के प्रश्न में उनका भी ध्यान रखा जाता था और पूछा जाता था कि आपका उद्यान-व्यापार सुखपूर्वक चल रहा है[17]? कवि ने उद्यान को तापशमनकारी कहा है[18]। कवि की दृष्टि विदिशा के तटोद्यान में सरसे वसन्त पर भी पड़ी है[19]। उद्यान में आम के पेड़ों में कोंपलों का फूटना[20] अतीव रुचिकर लगता है। कोकिल का कलरव[21] उद्यान को संगीतमय बना देता है। उद्यान का ही दूसरा नाम उपवन है।

---

7. ततः साभर्तुरनुनयन प्रतिपद्यमाना गुरुशापस्मृढ हृदया विस्मृत देवता नियमा स्त्रीजन परिहरणीयं कुमारवनं प्रविष्टा। प्रवेशानन्तरं च काननोपान्तवर्ति लताभावेन परिणतमस्या रुपम्-बही-पृष्ठ 214
8. एते खलु हिमगिररुपत्य कारण्य वासिनः काश्यप संदेशमादाय सस्त्रीकास्तपस्विनः संप्राप्ताः शाक पृ० 361, 5वाँ अंक
9. एष खलु कण्वस्य कुलपतेरनुमालिनी तीरम् आश्रमो दृश्यते वही प्रथम अंक, पृष्ठ 68
10. दिष्ट्या चिरस्य कालस्योर्वशी सहायो नन्दनवन प्रमुखेषु देवतारण्येषु विहृत्य प्रतिनिवृत्तः प्रियवयस्यः विक्रम पांचवां अक, पृष्ठ 239
11. एतस्मिन्नन्दन बनैक देश इव प्रमदवने अवतीर्यज्ञास्यावः विक्रम द्वितीयोडङ्कः- पृष्ठ 177
13. इच्छाम्यार्य पुत्रेण सह दोलाधिरोहणभनुभवितुमिति। तत्प्रमदवनमेव-गच्छावः मालवि 3 अक, पृष्ठ 293
14. मा गूढ़ेन यथा प्रमदवनं प्रापय मालवि पृष्ठ 322 चौथा अंक
15. तेन हि प्रमदवन पालिकायाः पृष्ठतो भवामि मालवि पृ० 337, वहीं
16. किंचित्परिवृत यौवन इव वसन्तः प्रमदवने लक्ष्यसे वही, प्र० 342, 5वा अक
17. अपि सुखस्त उद्यान व्यापारः वही -तृतीयोअंकः- पृष्ठ 290
18. उद्यानं तापशान्तये विक्रम द्वितीय अंक श्लो. 5
19. नयसि विदिशातीरोद्यानेष्वमंग इवांगवान् मालवि. पंचम अंक, श्लो.।
20. किमुत मलयवातोन्मूलिता पाण्डुपत्रैः उपवन सहकारैर्दर्शितेष्वङ्कुरेषु- विक्रम द्वितीय अंक, श्लो. 6.
21. गगनोज्जवलकाननै विक्रम चौथा अंक श्लो 59

आश्रम और तपोवन एक दूसरे के पर्याय हैं। कालिदास ने आकाश समान उज्जवल वन की[21] धरती में वर्षा से भीगी हुई बालू का वर्णन किया है[22]। ये आश्रम या तपोवन ऐसे ही वनों का एक भाग विशेष हुआ करते थे। वन में भयमुक्त होने पर भैंसें अपने सींगों से पानी को हिलोरते हुए तालाबों में तैरा करते थे, हरिण के समूह पेड़ों की घनी छाया में घेरा बनाकर जुगाली करते थे और सुअर निडर होकर पोखरों में नागरमोथे की जड़ें खोदते दीख पड़ते थे[23]। इसके विपरीत आश्रम का आदर्श स्वरुप है जहां वृक्षों के नीचे सुग्गों के घोसलों से गिरे हुए तिन्नी के दाने बिखरे पड़े हों, कहीं इधर-उधर पड़े हुए चिकने पत्थर बता रहे हों कि उन पर इंगुदी के फल कूटे गये हों, कहीं निडर खड़े मृग विश्वास से कि उन्हें कोई छेड़ेगा नहीं अतः शब्द सहन कर लेते हों। कहीं जलाशयों पर आने जाने की पगडंडियां में तपस्वियों के वल्कलों से टपके हुए जल की रेखायें बनी हुई हों[24]। आश्रम वन के मध्य मर्यादा की धरती है जिसका चारुचित्रण महाकवि कालिदास की लेखनी से हुआ है। उनके अनुसार आश्रम का मृग अवध्य होता है [25] तथा वहां सात्त्विक भावों की प्रधानता के कारण शान्ति का साम्राज्य होता है[26]। कवि के उल्लेख के अनुसार आश्रम में एक द्वार होता था[27] और उसके एक भाग में वृक्षवाटिका[28]। कालिदासीय नाटकों के अनुसार तपोवन का रक्षक राजर्षि होता था[29]। उसे यह चिन्ता रहती थी कि किसी प्रकार भी तपोवन का उपरोध न हो। वहां के निवासियों को बाधा न पहुंचे[30]। स्वयं प्रजा का स्वामी होकर भी वह विनीतवेश में आश्रम में जाता था[31] और यह कामना करता था कि वहां का कुलपति राजा को स्नेह दे। यदि धर्मारण्य के प्राणियों या पौधों के प्रति कोई असत् चेष्टा करता था तो उसके कुपरिणाम राजा को भुगतने पड़ते थे[32]। तपोवन की अधिष्ठात्री के रुप में वन देवी की भी कल्पना की गई है यथा प्रसंग उसे प्रणाम करने की प्रथा थी[33]। तपोवन के पौधे और लताएं ऋषियों के लिए सन्तान[34] और ऋषि कन्याओं के लिए सहोदर-सहोदरा के तुल्य होती थीं[35] जिनके सिंचन का कार्य वे बड़ी आत्मीयता से करती थीं। मण्डन प्रिय होने पर भी शकुन्तला किसी पौधे की पत्ती तक नहीं तोड़ती थी तथा उसमें पहले पहल फूल आने पर उत्सव मनाया करती थी[36]। लता-वृक्षों से ऋषि कुमारियों की इतनी आत्मीयता थी कि वे उनके नामकरण तक कर देती थीं[37]। वृक्षों के बाद तपोवन के जन्तुओं में मृग को सर्वाधिक स्नेह प्राप्त था। उसे सावा

---

22. मेघाभिवृष्टसिकतासु वनस्थलीषु - विक्रम चौथा अंक 16 श्लोक
23. गाहन्तां महिषा निपान सलिल शृंगैर्मुहुस्ताडित
छायाबद्धकदम्बक मृगकुल रोम न्थमभ्यस्यतु
विश्रब्धं क्रियतां वराहपतिभि र्मुस्ताक्षतिः पल्वले शाक. द्वितीय अंक, श्लो. 6
24. नीवाराः शुकगर्भ कोटरमुख भ्रष्टा स्तरुणामधः
प्रस्निग्धाः क्वचिदगगुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपला।
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्द सहन्ते मृगास्तोया धारपथाश्च वल्कलशिखानिष्टान्दरेखांकिताः शाकु. 14 श्लो. प्रथम अंक
25. राजन् ! आश्रममृगोऽय न हन्तव्यो न हन्तव्यः- शाकु. पृष्ठ -1, पहला अंक, 26. शान्तमिदमाश्रमपद वही श्लोक 4, 27. इदमाश्रमद्वारम् शाकु. प्रथम अंक, पृष्ठ 76, 28. वृक्षवाटिकामालाप वही. पृष्ठ 78, 29. तपोवन रक्षिता राजर्षिः वही पृष्ठ 203 तीसरा अंक, 30. ननु तपोवनोपरोधः परिहरणीय इति- वही. पृ0 178, दूसरा अंक तपोवन निवासिनामुपरोधो मा भूत वही. प्रथम अंक, पृष्ठ 76, 31. विनीत वेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम वही-प्रथम अंक. पृ0 97
32. धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम्।
आहोस्वित्प्रसवो. ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधाम् शाकु-पंचम अंक, श्लो. 9
33. तपोवने देवताभिः प्रणम भगवती: वही-चौथा अ क. पृ0 310
34. त्वत्तोऽपि तातकाश्यपस्याश्रम वृक्षाः प्रियतराः वही पृ0 81 तथा चौथा अंक का 13 श्लो0

नामक धान खिला खिलाकर लड़कियां शिशुओं की तरह परिपोषण किया करती थीं[38]। आश्रम के आम्रवृक्षों में नारियल की पोटली बनाकर टांग दी जाती थी तथा उसमें मांगलिक सामग्री रखी जाती थी। कभी-कभी टिड्डी का दल आश्रम के वृक्षों पर आक्रमण कर दिया करता था[40]।

कालिदास ने वन उपवन और तपोवन के प्रसंग में आम्र[41] अशोक[42] कुरबक,[43] कदम्ब[44], केसर[45], जम्बू[46], वेतस[47] ताल[48], मृणाल[49] शमी[50], सप्तपर्ण[51], भोजपत्र[52], श्यामा[53], चन्दन[54] तिलक[55] शल्लकी आदि वृक्षों के साथ बीजपूरक[55A], सरकंडा[56], निचुल[57], उशीर[58], कुश[59], इंगुदी[60], नवमालिका[61], अतिमुक्तलता[62], प्रियंगु[63] माधवी[64] मालती[65], दूर्वा[66] बकुलावलिका[67] कुन्दलता[68], कन्दली[69], लवली[70] अपराजिता[71] आदि पादप व लताओं का उल्लेख किया है। किन्तु इन सबके मात्र उल्लेख ही नहीं हुए हैं। कालिदास को ऋतुओं का मर्मज्ञान भी है और वे वृक्ष तथा लता प्रजातियों के प्रति अपनी अभिज्ञता भी प्रस्तुत करते हैं। यहां पर उनके द्वारा विशेष रुप से चर्चित कुछ वनस्पतियां विवेचनीय हैं।

तांवई और हरितवर्ण आम को कालिदास ने वसन्त का जीवन कहा है[72]। इसकी मंजरी वसन्त की रानी होती है[73]। कवि ने उद्यान में आम के पेड़ों में कोंपलों का फूटना चारुता से देखा है[74] साथ ही माधवी के साथ उसका प्रणय सम्बन्ध भी। आम और नवमालिका[75A] तथा सहकार एवं अतिमुक्तलता[76] का जोड़ा कवि को बहुत ही हृदय ग्राही प्रतीत होता है।

---

35. न केवलं तातनियोग एवं। अस्ति में सोदरस्नेहोअपि एतेषु प्रथम अंक, पृ0 81 शाकु. 36. नादत्ते प्रियमण्डनापि भवता स्नेहेन या पल्लवम्, आद्ये नः कुसुम प्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः शाकु. चौथा अंक 9 श्लोक, 37. इयं स्वयंवरवधूः सहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनज्योतस्नेति नवमालिका शाकु. प्रथम अंक, पृष्ठ 88, 38. श्यामकमुष्टि परिवर्धितको जहाति, सोयं न पुत्रकृतकः पदवी मृगस्ते शाक. चौथा अंक 14 श्लोक। 39. चूतशाखावलम्बिते नालिकेरसमुद्गके-शाकु. चौथा अंक, पृष्ठ 284, 40. श्लभसमूह इवाश्रमदुभेपु शाकु. प्रथम अंकः 28 श्लोक, 41. शाकु छठा अंक 2 श्लोक, विक्रम 2 अक, 6 श्लोक, माल. चौथा अंक. श्लो.१३ 42. माल द्वितीय अंक. श्लो. 7, चौथा अंक. पृष्ठ 336, विक्रम-चौथा अंक-श्लो "62, 43. माल तीसरा अक- श्लो- 5, पांचवा अंक-श्लो-4, तथा माल-तीसरा अंक पृ 293, 44. विक्रम-चौथा अंक, 61 श्लोक, 45. शाकु चौथा अंक, पृष्ठ-284, प्रथम अंक, प्रथम अंक-पृष्ठ 86, 46. राजजम्बूद्रुमस्य चौथ अंक, श्लो 27, विक्रम, 47. शाकु. 5 वां अंक, 3 श्लोक, 48. विक्रम, पांचवा अंक, पृष्ठ 239, 49. शाकु. छठा अंक, श्लो. 18, 50- शाकु, चौथा अंक श्लो-4, 51. वही-पृष्ठ 100, 52. विक्रम दूसरा अंक, पृष्ठ 179, 53. माल दूसरा अंक, श्लो 6, 54. माल- चौथ् अंक, पृष्ठ 317, 55x. माल तीसरा अंक 5 श्लो., 55A माल तीसरा अंक पृष्ठ 290, 56. विक्रम तीसरा अंक 7 श्लोक, 57. विक्रम चौथा अंक, 13 श्लोक, 58. शाकु. तीसरा अंक पृष्ठ -182, तथा 6 श्लोक, 59.शाकु. दूसरा अंक श्लो 12 60- शाकु-प्रथम अंक श्लो 13, 61. शाकु प्रथम अंक, पृ0 88, 62 माल-चौथा अक. श्लो-13, विक्रम-दूसरा अंक, पृ0 174, 66 शाकु. चौथा अंक पृ0 284, 63. माल तीसरा अंक पृष्ठ 302 (64) - माल चौथा अंक श्लो 13 65 माल तीसरा अंक पृ0 291, 67 माल तीसरा अंक 72. आताम्रहरित पाण्डुरजीवित! सत्यं वसन्तमासस्य। दृष्टोसि चूतकोरक! ऋतुमगलम त्वां प्रसादयामि शाकु छठा अंक, 2 श्लोक, 73. मुग्धे, भ्रमरसंपातो भविष्यतीति वसन्तारतारः सर्वस्वं किं न चूतप्रसवोअवतंसिव्यः-माल-तीसरा अंक, पृ0 305, 74. किमुत मलयवातोन्मूलिता पाण्डुपत्रैः उपवन सहकारैर्दर्शितष्वह कुरेषु-विक्रम-दूसरा अंक, 75. परिग्रहाण गते सहकारता त्वमतिमुक्तजता चरित मयि माल. चौथा अंक- 13 श्लो., 75A चूतेन संश्रितवती नवमालिकेयम् शाकु-चौथा अंक श्लो -13

महाकवि ने लाल[77] और सुनहले अशोक[78] का वर्णन किया है। अशोक के खिलने में कवि ने कवि-प्रसिद्धियों का भी सहारा लिया है जिनके अनुसार यह वृक्ष रमणी के पाद प्रहार से विकसित होता है[79]। कालिदास के नाटकों में इस प्रकार के उल्लेख अनेक स्थलों पर मिलते हैं। वैसे अशोक में फूलों का खिलना वसन्त के आगमन का सूचक होता है[80]। फूल खिल जाने पर घासपात निकालकर अशोक की मेड़ ठीक ढंग से बांध दी जाती है[81] और तदनन्तर धूमधाम के साथ उसकी पूजा होती है[82]। सुनहले अशोक के फूल दर्शन में उत्सव की सफलता निहित होती है[83] जबकि रक्ताशोक का फूल लाल मणि तथा स्त्री के विम्बाधर के समान माना गया है।[84] साज श्रृंगार में भी अशोक के फूल का व्यवहार होता है तथा उसके पत्तों का गुच्छा कानों पर आभूषण के रुप में सजाया जाता है।

महाकवि ने काले, उजले और लाल रंग के कुरबक का उल्लेख किया है। वह यहाँ तक कह उठता है कि काले, उजले और लाल रंग के कुरबक के फूलों ने स्त्रियों के मुख पर रची चित्रकारी फीकी कर दी है[86]। वसन्त में बिखरे कुरबक के फूल मन में जवानी के हिलोरे उठा देते है[87]। कालिदास ने कुरबक के फूल का शीर्ष भाग नारी के नख के समान लाल तथा उसके दोनों छोरों को साँवले रंग का बताया है[88]। कवि-काल में उपहार के रुप में नये खिले सुहावने लाल कुरबक के फूलों का उपयोग किया जाता था[89]।

कालिदास के अनुसार गर्मी बीत जाने पर लाल कदम्ब के पेड़ फूलते हैं। इसके फूल में जब तक केसर नहीं फूटता तब तक वह कड़ा रहता है। इस प्रकार के फूलों से रमणी अपने जूड़े का श्रृंगार किया करती थी[90]। महाकवि द्वारा विशेष रुप से उल्लिखित ऐसे वृक्षों की वानस्पतिक सच्चाई पर गहरे अनुशीलन की आवश्यकता है। चूंकि कविता एक रम्य पृष्ठभूमि चाहती है और वर्णनात्मक अलंकारिता भी, अतः कालिदास हों या कोई अन्य महान कवि, पेड़ पौधों का एक सीमा तक उपयोग पारम्परिक रुप में किया जाता है। भले ही किसी भूमि विशेष में कोई पौधा न उग सकता हो और जलवायु भी उसके अनुकूल न हो, किंतु कवि की प्रतिभा की धरती उसे न केवल उजागर अपितु पुष्प और फल से युक्त करके मानती है। फिर भी कालिदास उन कवियों में है जिन्होंने असंगत और अनर्गल प्रसंगों से अपने को दूर रखने की चेष्टा की है।

---

77. रक्ताशोकमुपोढराग सुभगं माल-द्वितीय अंक 7 श्लो, रक्ताशोक चौथा अंक. श्लो 62, 78. सखि ! सममेव गच्छज्जवः अहमप्यस्य चिरायमाण कुसुमोद्गमस्य तपनीयाशोकस्य दोहदनिमित्त देव्यै निवेदयामि माल तृतीय अंक, पृष्ठ 292, 79. मालविका रचित पल्लवावतंसा पादपशोकाय प्रहिणोति-माल तीसरा अक, पृ० 307, 80. सर्वाशोकतरुणां प्रथमं सूचितरसन्तविभवानाम् माल पांचवा अंक, श्लो 5, 81. उपक्षिप्ते मयाकृत सत्कार विधिस्तपनीयशोकस्य वेदिकाबन्धः माल पांचवा अंक, 82. आज्ञाप्तास्म्यशोक सत्कार व्यापृतया देव्या माल पांचवा अंक, पृ० 340, 83. तपनीयाशोकस्य कुसुमसहदर्शनिन ममारम्भः सफलः क्रियतामिति माल पांचवा अंक, पृ० 342, 84. अये रक्ताशोक प्रसवसमरागो मणिरयं विक्रम चौथा अक, श्लो 63 रक्ताशेक रुचा विशेशित गुणो विम्बाधरांलक्तक माल तीसरा अंक, श्लो 5, 85. एषोऽशोक शाखावलम्बी पल्लव गुच्छः। अवतंसयैनम्-माल. तीसरा अंक, पृ० 306, 86. प्रत्याख्यात विशेषकं कुरबकं श्यामावदातारुणम् माल तीसरा अंक, 5 श्लो., 87. अये विकीर्ण कुरबक फल जालकभिधमान सहकारम्। परिणामाभिमुखमृतोरुत्सुकयति यौवनं चेतः माल-पांचवा अंक, श्लो 4 , 88. अये स्त्रीनख पाटलं कुरबकं श्यामं द्व्योर्भागयोः-विक्रम, दूसरा अंक, श्लो -7, 89. अद्यैव प्रथमावतार सुभगानि रक्तकुरवकाण्युपायनं प्रेष्य-माल-तीसरा अंक पृष्ठ 293, 90. रक्तकदम्ब सोयं प्रियया धर्मान्तशंसि यस्यैकम्। कुसुममसमग्र केसर विषममपि कृतं शिखाभरणम् विक्रम चौथा अंक, 61

लताओं के प्रति कालिदास का बहुत ही रागात्मक सम्बन्ध है। वृक्ष और लता का पुरुष तथा रमणी भाव तो वैदिक काल से ही प्रसिद्ध है। पुरुष कहता है कि जिस तरह लता वृक्ष से संसक्त होती है तू उसी प्रकार मेरा आलिंगन कर[91]। कालिदासीय नाटकों में लतायें सहेली, प्रिया और ममतामयी धात्री आदि अनेक रुपों में प्रस्तुत होती हैं। वयोवृद्ध कुलपति कण्व को लताओं की उतनी ही चिन्ता होती है जितनी आश्रम की परिपोषित कन्याओं की। वृक्ष से संयुक्त होने पर ऋषि उसी प्रकार निश्चिन्त हो जाता है जैसे उत्तम वर को कन्या सौंप देने के पश्चात् पिता।[92] अनसूया, प्रियंवदा और शकुन्तला के लिए लतायें सहोदरा हैं। शकुन्तला से अनसूया कहती है कि तात काश्यप को ये पौधे तुझसे भी अधिक प्रिय है तभी तो उन्होंने तुम्हें इनके आलवाल जलपूरित करने में लगाया है[93]। इस पर प्रतिवाद करती हुई शकुन्तला कहती है कि केवल पिता का आदेश ही नहीं है कि लता-वृक्षों को सींचो बल्कि इनके प्रति मेरा सहोदर स्नेह भी है[94]। आज जब वन वृक्षों की ओर हमारा ध्यान पुनः जा रहा है तब महिला समुदाय को वनस्पतियों के साथ उनके पुरातन सम्बन्धों की याद दिलाने के लिए ऐसे प्रसंग बहुत ही उपयुक्त है।

कालिदास को लताओं में नवमालिका बहुत रुचा है। वैसे मालती, माधवी और प्रियंगु आदि के प्रति उनका राग कम नहीं है[95]। उन्हें आम के साथ नवमालिका की जोड़ी बहुत अच्छी लगती है। कवि शकुन्तला द्वारा उसका नामकरण वन ज्योत्स्ना करा देता है[96]। इस प्रकार के नामकरण प्रगाढ़ आत्मीयता के सूचक होते हैं। लतायें वसन्त की शोभा से मिलकर अतीव कमनीया लगती है[97]। कालिदास ने उतारने से मुरझाती हुई मालती की माला[98] गर्भवती नारी के मुख पर लवली के पत्ते की कान्ति[99] कन्दली के वृक्ष के जल भरे लाल फूल[100] मर्दित होने पर और भी अधिक सुगन्ध विखेरती वकुलावलिका[101] आदि को अत्यन्त निकट से देखा है। केसर मालिका[102], लोकाचार में काम आती वेतस लता[103], अग्निगर्भ शमी,[104] मृणाल वलय,[105] छायादार सप्तपर्ण[106], मंजरियों के चंवर झलते निचुल[107] नारी के माथे के तिलक के समान भौरों से लिपटे तिलक[108] आदि कालिदास के वनस्पति जगत् का निर्माण करते हैं। ये वन-वृक्ष और लतायें कालिदास के उपमान हैं और उपमेय भी। कालिदास लोकोक्तियों, मुहावरों, दृष्टान्तों तथा जीवन के तथ्य निरुपण में इन सबका इस तरह व्यवहार करते हैं कि वन की यह सम्पदा मानव जगत् की अभिव्यंजक बन जाती है।

---

91. यथा वृक्षं लिबुजा समन्त परिषस्वजं। एषा परिष्वजस्वमा यथा कामिन्यसो यथा मन्नागणा असः अथर्व -6-8-1, 92. संकल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे। भर्तारमात्म सदृशं सुकृतैर्गता त्वम। चूतेन संश्रितवती नवमातिकेयमस्यामहं त्वयि च संप्रति वीतचिन्तः शाकु-चौथा अंक श्लो 13, 93. तातकाश्यपस्याश्रमवृक्षाः प्रियतरा इति। येन नवमालिकाकुसुमपेलवापि-त्वमेतेषामालवाल पूरणे नियुक्ता शाकु. प्रथम अक, पृष्ठ 81. 94. न केवलं तातनियेग एवं अस्ति मे सोदरस्नेहोअपि एतेषु वही, 95. माल तीसरा अंक, पृ0 291 (मालती), विक्रम दूसरा अंक, श्लो 4 (माधवी) माल, तीसरा अंक, पृ0 302 (प्रियंगु) 96. इयं स्वयंवरवधूः सहकारस्य त्वया कृतनाम धेया वन ज्योत्स्नेति नवमालिका-शाकु. प्रथम अंक, पृ0 88, 97. सखी भिर्याति संपर्क लताभिः श्रीरिवार्तवी-विक्रम, प्रथम अंक, श्लो -14, 98. मालविकाप्येषु दिवसेष्वनुभूतमुक्तेव मालती माला क्लाना लक्ष्यते-माल, तीसरा अंक, पृ0 291, 99. लवलीदल पाण्डुराननच्छायम् विक्रम-पांचवा अंक, 8-श्लो., 100. आरक्तराजिभिरियं कुसुमैर्नव कन्दली सलिल गर्भः विक्रम-चौथा अंक, श्लो-15, 101. विमर्द सुरभि बंकुलावलिका सल्वहम् माल तीसरा अंक, पृ0 305, 102. केसर मालिका शाकु चौथा अंक, पृ0 284, 103. आचार इत्यवहितेन मया गृहीता, या वेत्रयष्टिखरोध गृहेषु राज्ञः शाक पांचवा अंक, श्लो-3,104. शाकु. श्लो-4,चौथा अंक, 105. मृणालैक्वलयं-शाकु श्लो-6, 106. प्रच्छायशीतलायां सप्तवर्ण वेदिकायां-शाकु.प्रथम अंक.पृष्ठ 100, 107.व्याधूयन्ते निचल तरुभिर्मन्जरी चामराणि-विक्रम चौथा अंक,श्लो-13

वन्य वृक्षों की भांति वन्य पशु पक्षियों के साथ भी महाकवि के आत्मीयता पूर्ण सम्बन्ध हैं। अपने नाटकों में उन्होंने जैसे जंगली प्राणियों के साथ मानव जाति का मिलन कराकर मानों साहचर्य भाव का सन्देश दिया है। जब मनुष्य द्वेष और द्रोह का व्यवहार करता हुआ वन्य जन्तुओं के प्रति आक्रामक बन जाता है तभी वे जीव भी डरते, भागते और प्रतिशोध की ज्वाला में जलने लगते हैं। कालिदास द्वारा चित्रित, आश्रमों के सात्विक वातावरण में पशु पक्षी और मानव एक दूसरे के पारिवारिक बन जाते हैं। जहां तक वन्य पशुओं का सम्बन्ध है, संस्कृत साहित्य के इस महान कवि ने हाथी, मृग, महिष तथा शूकर आदि का सजीव और स्वाभाविक चित्रण किया है।

कालिदास ने गज की मनोवृत्ति को बड़ी सूक्ष्मता से परखा है। भयभीत होकर या बिगड़कर हाथी द्वारा वृक्षों की जो विध्वंस लीला की जाती है उसकी ओर कालिदास के पूर्ववर्तियों का भी ध्यान गया था किन्तु जिस सर्वांगीणता से कालिदास ने शिकार से भयभीत हाथी द्वारा वृक्ष तोड़ने, लताओं को चरण पाश बनाकर जन-जीवन में उद्वेग फैलाने और अन्य जीवों को भयाक्रान्त कर देने का वर्णन किया है[109] वह अन्यत्र दुर्लभ है। हाथी यूथ का संचालन करता है[110]। प्रणयी रुप में वह प्रिया वियोग में पागल हो जाता और मौत की भी परवाह नहीं करता[111], प्रणयमग्न हो वह कदम्ब की डाल पर अपनी हथिनी के साथ सूंड टिकाता[112], शल्लकी के पेड़ की शाखायें खिला-खिलाकर अपनी प्रियतमा की चाटुकारिता करता[113], तथा प्रतिपक्षी हाथी को पछाड़कर ही राहत की साँस लेता है[114]। उन्होंनें पराक्रमी गजशावक के साहस का भी उल्लेख किया है[115]। हाथी के चर्म से बने शिव के वसन[116] की चर्चा करके कालिदास गज की त्वचा के उपयोग पर भी प्रकाश डालते हैं।

मृग कालिदास का बहुत ही प्रिय वन्य पशु है। जिस प्रकार नवमालिका को वन ज्योत्स्ना का नाम देकर कवि लता विशेष के प्रति अपनी प्रगाढ़ आत्मीयता प्रकट करता है उसी प्रकार की आत्मीयता मृगशावक का नाम करण "दीर्घापांग"[117] करके प्रकट की गई है। छाया में झुण्ड बनाकर बैठना और फिर जुगाली करना[118], अशोक के पत्ते चरना[119] व्याधों के गीत सुनकर मुग्ध होकर जाल में फंसना[120] मृगया से भीत होकर प्राणों के मोह में तीव्र गति से भागना, और भागते समय भय की विविध मुद्राएं एवं भंगिमाएं प्रदर्शित करना[121] प्रीतिमुग्ध होकर सींग की कोर से अपनी प्रियतमा के

---

108. आक्रान्ता तिलक क्रिया य तिलकैर्लग्न द्विरेफान्जनै माल तीसरा अंक, श्लो. 5, 109. तीव्राघातप्रतिहत तरुः स्केन्ध लग्नैकदन्तः। पादाकृष्ट व्रतति वलयासंग संजात पाशः मूर्तो विघ्नस्तपंस इव नो भिन्नसारंगयूथो धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्कन्दना लोकभीतः शाक श्लो-29, प्रथम अंक, 110. यूर्थानि संचार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानाभिव द्विपेन्द्रः शाकु पांचवा अंक, श्लो-5, 111. मर्मररणितमनोहरे कुसुमित तरुवरपल्लवे। दयिता विरहोन्मादितः कानने भ्रमति गजेन्द्रः विक्रम चौथा अंक, श्लो-5, 112. एष नीपस्कन्ध निषण्णहस्तः करिणी सहायो नागर जष्तिष्ठति विक्रम - चौथा अंक, पृ0 226, 113. अयमचिरोद्गत पल्लवमुपनीतं प्रियकरेणु हस्ते अभिलषतु तावदासवसुरभि रसं शल्लकी-भंगम्-विक्रम-चौथा अंक, श्लो 114. अन्योन्य कलह प्रिययोर्मत हस्तिनोरेकतरस्मिन्न निर्जिते कृत उपशमः- माल- पाचवा- अंक, पृष्ठ 274, 115. शमयति गजानन्यान्गन्ध द्विपः कलभोपि सन् ननु कलभेन यूथपतेरनुकृतम् विक्रम पाचवा अंक, श्लो 18, 116. कृत्तिवासाः माल प्रथम अंक, श्लो -1, 117. दीर्घापांगों नाम मृगपोतक उपस्थितः शाकु पांचवा अक, पृ0 401, 118. छायाबद्ध कदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु शाकु. दूसरा अंक, 6 श्लोक, 119. एव बालाशोक वृक्षस्य पल्लवानि लगयति हरिणः माल. चौथा अंक, पृच 328, 120. आत्मनो वन्जनावचनं प्रमाणी कृत्याक्षिप्तया व्याधजनगीत गृहीत चित्तयैव हरिण्यैतन्न विज्ञातं मया-माल-तीसरा अंक पृ0 310

बायें नेत्र-प्रान्त खुजलाना[122] आदि मृगप्रवृत्तियों का महाकवि ने बहुत ही सजीव चित्रण किया है। भीरु मृग मानव का विश्वास पाकर निर्भीक हो जाते हैं। मृगशावक किस तरह अपनी जननी से बिछुड़ कर उसे खोजता है[123] गर्भमन्थरा मृग वधू किस तरह उटज के आसपास फिरती है[124] तथा मृगी की चितवन कितनी मनोहर होती है[125] यह वही समझ सकते हैं जिन्होंने मृग जीवन को निकट से देखकर कालिदास के साहित्य का अनुशीलन किया हो।

गज और मृग के अतिरिक्त कालिदास ने मांस लोभी गृध्र[125A] नर-नासिका लोलुप रीछ[126] सींग पटक पटक कर पोखर में अवगाहन करने वाले जंगली महिष[127] तीखे खुरों से पृथ्वी खोदते, मोथा नोचते और अपनी टेक पर अड़ जाते शूकर[128] पर्वत गुफाओं को गुंजाते और हाथियों को अपनी दहाड़ से दहलाते सिंह[129] और साँप[130] आदि के स्वाभाविक वर्णन किये हैं।

कालिदास ने पक्षियों में मदनदूती कोयल[131] का बहुधा स्मरण किया है। कोकिल की मीठी कूक से वृक्ष सुहावने प्रतीत होने लगते हैं[132]। यह पक्षी फरैना जामुनों के रसपान में अधिक रुचि लेता[133] और कौवे द्वारा अपने बच्चों का पोषित कराने का चातुर्य प्रदर्शित करता है[134]। महाकवि को मयूर भी बहुत भाते हैं। मोर का नामकरण मणिकण्ठ करना[135] उसी प्रकार की प्रियता का परिचय देता है जैसे नवमालिका का वनज्योत्स्ना और मृगपोतक का दीर्घापांग नामकरण करना। प्रबल वातवेग से मोर की कलँगी छितरा उठती है, वह बादल को देखकर कें कें करने लगता है[136]। इस प्रकार स्पष्ट है कि उजले कोनों की काँखों वाला मानव-प्रेम में नृत्य निरत मोर[137] कालिदास को अतीव प्रिय है।

---

121. ग्रीवाभंगाभिरामं मुहुरनुपतति स्पन्दने बद्धदृष्टिः पश्चार्धेन प्रविष्ट शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् दर्भैरर्धावलीढैः श्रमः विवृत मुख भ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा। पश्योदग्प्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोक भूर्व्या प्रयाति शाकु. प्रथम अंक, श्लो 7, 122. श्रृंगे कृष्ण मृगस्य वाम नयनं कण्डूयमानां मृगीम् शाकु छठा अंक, 17 श्लोक, 123. यथैष दूतो दत्तदृष्टिरुत्सुको मृगपोतको मातरमन्विष्यति शाक. तीसरा अंक, पृ० 234 124. एषोटज पर्यन्त चारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदानघ प्रसवा भवति तदा मस्यं कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जयिष्यथे शाकु. चौथा अंक, पद्य 316, 125. पृथुलोचना सहचरी यथैव ते सुभगं तथैव खलु सापि वीक्षते माल चौथा अंक, श्लो 60, 125A. भवानपि सूना परिसरचर इव गृध्रे आमिषलोलुयो भीरुकश्च माल दूसरा अंक, पृ० 289, 126. तावदरवीतोडरवीमाहिण्डमानो नरनसिंकालोलपस्य जीर्ण त्रसस्य कस्यापि मुखे पतिष्यस शाकु. दूसरा अंक, पृ० 145, 127. गाहन्तां महिषा निपान सलिलं श्रृंगैर्मुहस्ताडितं शाकु द्वितीय अंक, श्लो 6, 128. प्रस्तृतरवरदारितमेदनि र्वन गहनेडविचलः। परिसर्पति पश्यंत लीनो जिजकार्योयुक्तः कोलः- विक्रम-चौथ् अंक, श्लो 48, 129. हरेर्हिनस्ति नागान् विक्रम पंचम अक, श्लो 17, 130. महोरगः श्वभ्रमिव प्रविष्टम् माल प्रथम अंक, श्लोक 119, माल चौथ् अक पृ० 319 पर, 131. त्वां कामिनो मदनदूतिमुदाहरन्ति मानाव भंगनिपुण् त्वममोघमस्त्रम् विक्रम चौथा अंक, श्लोक 25, 132. अभिनव कुसुमस्तवकिततरु वरम्य परिम्परे, मद गकल कोकल कूजित ख मनोहरे विक्रम चौथा अंक, श्लोक 56, 133. अधरमिव मदान्धाः पातुमेपा प्रवृत्ता फलमभिमुख पाक गजजम्बूदुमस्य विक्रम चौथा अक, श्लोक -27, 134. प्रागतन्रिक्षगमनात् स्वमपत्यजातमन्यै द्विजैः परभृता पोपयन्ति शकुन्तल 22 श्लो, पाचवा अक, 135. तं जातकलापं प्रेषय मणिकण्ठकं शिखिनम् विक्रम पांचवा अक 13 श्लो० 136. आलोकयति पयोरा प्रबल पुरोवात ताडित शिखण्डः, केकागर्भेण शिखी दूरोन्नमितेन कण्ठेन- विक्रम चौथा अंक, 18 श्लो.
137. दीर्घापांगसितापांग, विक्रम, चौथा अंक, श्लोक 21,

इसी प्रकार प्रेम के मद में भरे हंस का सरोवर में खेलना[138], जोड़े के साथ घूमना[139] तथा राजहंसी द्वारा टूटे हुए कमल के डंठल से तन्तु का खींचना[140] आदि कवि-वर्णना के अंक रहे हैं। इनके अतिरिक्त कवि ने गोधा[141] मत्स्य[142] और वानर[143] आदि जन्तुओं का यथा प्रसंग वर्णन किया है। कवि और कलाकार अपने समय की संस्कृति और जीवन को अपने साहित्य एवं कला के द्वारा सुरक्षित कर देते हैं जो भावी के लिए युग सत्य का प्रकाशक साथ ही प्रेरणादायक भी होता है। इस दृष्टि से महाकवि कालिदास की कृतियों में वर्णित वन एवं वन्य जीवन आज के समाज के लिए प्रेरणा की दृष्टि से बहुत उपादेय है।

138. सरसि हसयुवा क्रीडति कामरसेन विक्रम चौथा अक, श्लो. 41, 139. कार्या सैकतलीनहसमिथुना स्रोतो वहा मालिनी शाकु. छठा अक. श्लोक 17, 140. मृगागना कर्षति खण्डिता ग्रान्सूत्र मृणालादेव राजहसी विक्रम.प्रथम अक, 166 पृ0, 141. जानुक, विस्रगन्धी गोधादी मत्स्यबन्ध एव नि:सराय शाक. छठा अक, पृ0 427, 142. पिगलवानरेण माला चौथा अक, पृ0 335, नन्चाश्रम वास परिचित इव शाखामृग: विक्रम पाचवा अक, पृ0 247

पर्यटक गतिविधियों द्वारा जम्मू-कश्मीर राज्य की वानस्पतिक सम्पदा का ह्रास

श्री कृष्ण मूर्ति, सर्वेश कुमार एवं भोला दत्त नैथानी

जम्मू-कश्मीर हमारे देश का एक प्रमुख पर्यटन स्थल है। यहाँ की गगनचुम्बी हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखलायें, कलकल करते झरने, सुरम्य घाटियां, मनमोहक वन-उपवन व उनमें विचरण करते अनेकानेक जीव-जन्तु बरबस ही देशी-विदेशी पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। देश के शीर्ष में स्थित होने एवं अपार प्राकृतिक सौन्दर्य एवं वन सम्पदा का स्वामी होने के कारण यह प्रान्त हमारे देश के गौरव का प्रतीक बन गया है। यहाँ का नैसर्गिक सौन्दर्य सदियों से मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है व इसे विभिन्न उपमाओं से सम्बोधित किया जाता रहा है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस प्रान्त का एक विशिष्ट महत्व है। जम्मू नगर की स्थापना राजा जम्बुलोचन द्वारा नवीं शताब्दी में की गई जबकि कश्मीर घाटी के प्रमुख नगर श्रीनगर की स्थापना महान सम्राट अशोक द्वारा ईसा से 300 वर्ष पूर्व हुई। बाद में मुगलों ने यहां कई सुन्दर मस्जिदें एवं बाग-बगीचे बनवाये। सन् 1947 ई0 में जम्मू-कश्मीर प्रान्त भारत संघ का एक अभिन्न अंग बन गया। विभिन्न देशों की सीमाओं से लगे होने के कारण यह प्रान्त भौगोलिक दृष्टि से भी अति महत्व का है। 73^{0}-80^{0} पूर्व देशान्तर एवं 33^{0}-37^{0} उत्तर अक्षांशों के मध्य स्थित इस प्रान्त का क्षेत्रफल 2,22,236 वर्ग कि0मी0 है। इस प्रान्त के उत्तर, पूर्व व पश्चिम में चीन, अफगानिस्तान एवं पाकिस्तान की सीमायें है तथा दक्षिण में हिमाचल प्रदेश व पंजाब राज्य की सीमाएं हैं।

जम्मू-कश्मीर प्रान्त विशाल हिमालय पर्वत की श्रेणियों के मध्य स्थित है। प्राकृतिक दृष्टि से इस प्रान्त को चार हिमालय, क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है।

1. उप-हिमालयी शिवालिक क्षेत्र 2. बाह्य-हिमालयी क्षेत्र 3. केन्द्रीय हिमालय एवं 4. लद्दाख के शीत मरुस्थली क्षेत्र सहित आन्तरिक हिमालय।

जम्मू-कश्मीर राज्य की वानस्पतिक सम्पदा किसी भी हिमालय क्षेत्र में पाई जाने वाली वनस्पति का प्रतिबिम्ब परिलक्षित करती है। अर्थात उपरोक्त चारों हिमालय क्षेत्रों में यहाँ की वनस्पति में भी समुद्र-तल से उंचाई के अनुसार विविधतायें मिलती हैं। वानस्पतिक सम्पदा की दृष्टि से इस प्रान्त को तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

1. जम्मू क्षेत्र की उष्ण कटिबन्धीय एवं उपोष्ण कटिबन्धीय वनस्पति।
2. कश्मीर घाटी की उपोष्ण कटिबन्धीय, शीतोष्ण एवं हिमाद्रि वनस्पति।
3. लद्दाख के शीत मरुस्थल।

प्रस्तुत लेख में जम्मू-कश्मीर की वनस्पति के बारे में विस्तृत चर्चा करना अधिक उपयोगी एंव तर्क संगत नहीं है। तथापि यहाँ उन विरल, विशेष क्षेत्री एवं आर्थिक महत्व की पादप जातियों के विषय में उल्लेख करना आवश्यक है, जिनके सरंक्षण की दिशा में यदि उपयुक्त कदम नहीं उठाये गये तो अनियोजित पर्यटन कार्यक्रमों के कारण इनमें से कई हमेशा के लिये विलुप्त हो सकती हैं।

जम्मू-कश्मीर राज्य में अनेकों विशेष क्षेत्री पादप जातियां है। ये इस प्रान्त के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं पाई जातीं। यहाँ पाई जाने वाली कुल पादप जातियों में से 58 प्रतिशत विशेष क्षेत्री हैं जिनमें 39 प्रतिशत द्विबीजपत्री एवं 19 प्रतिशत एक-बीजपत्री पौधों की जातियां हैं। कुछ मुख्य व विशेष क्षेत्री पादप कुलों की स्थिति इस प्रकार है- ऐडोक्सेसी (100%), बरबेरीडेसी (64%), बालसेमिनेसी (66%) ऐस्टरेसी (52%), सैक्सीफ्रेगेसी (53%), फ्यूमेरियेसी (55%), जेन्शियानेसी (73%)। इनके अतिरिक्त अन्य विशेष क्षेत्री पादप कुलों मे लेमियेसी, ब्रेसीकेसी, रैननकुलेसी एवं प्रिमुलेसी आदि मुख्य हैं। (धर एवं कचरू[1])।

कुछ मुख्य आर्थिक महत्व के पौधे भी इस क्षेत्र में पाई जाने वाली वानस्पतिक सम्पदा के महत्व को दशति हैं। औषधीय पौधों में *बरबेरिस, एकोनाइटम, जेन्शियाना, स्वेर्शिया, मैकोनोप्सिस, नार्डोस्टेकिस* आदि वंशों की जातियां तथा *एट्रोपा एक्यूमिनेटा, बर्जीनिया, लिगुलेटा, डायास्कोरिया डैल्टोइडिया, पोडोफिल्लम हेक्सेन्ड्रम* आदि पादप जातियाँ मुख्य हैं। उपरोक्त वानस्पतिक विवरण किसी भी दशा में जम्मू-कश्मीर क्षेत्र की वनस्पति का परिपूर्ण चित्रण प्रस्तुत नहीं करता परन्तु इससे यह स्पष्ट रुप से परिलक्षित होता है कि इस प्रान्त की अपार वानस्पतिक सम्पदा बहुमूल्य है, व इसमें किया गया थोड़ा सा भी हस्तक्षेप् इस प्रान्त को विनाश के कगार तक ले जा सकता है, जिसकी भरपाई असम्भव नहीं तो मुश्किल अवश्य है।

जम्मू-कश्मीर राज्य के परितंत्र पर पर्यटन गतिविधियों का प्रभाव:

पर्यटक स्थल के रुप में जम्मू-कश्मीर प्रान्त का स्थान सर्वविदित है। यह राज्य पर्यटन से सम्बधित सभी आवश्यकताओं को अपने आप में संजोये हुये है एवं पर्यटक को किसी भी प्रकार की जरुरत के लिये नहीं सोचना पड़ता है। चाहे वह दृश्यावलोकन हो, तीर्थयात्रा हो, पर्वतारोहण, नौकायन, अन्य खेलकूद या वन्य जीवनदर्शन अथवा मेडीटेशन ही क्यों न हो और यही कारण है कि यह प्रान्त भारत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पर्यटक केन्द्र बन गया है। पर्यटन से सम्बन्धित विभिन्न स्थान तालिका -। में दशयि गये हैं।

उपरोक्त पर्यटन गतिविधियों के अतिरिक्त अन्य बहुत से प्रकृति प्रेमी, शोध छात्र तथा विभिन्न विषयों के वैज्ञानिक इस प्रान्त के अध्ययन, सर्वेक्षण, संग्रहण एवं अन्य ऐसे ही उद्देश्यों की पूर्ति के लिये प्रतिवर्ष इस प्रान्त की यात्रा करते हैं, इन लोगों के लिये महत्वपूर्ण विभिन्न स्थान तालिका-2 में दशयि गये हैं।

---

1. धर, यू.एवं पी. कचरु : एलपाइन फ्लोरा आफ कश्मीर हिमालया, साइन्टिफिक पब्लिशर जोधपुर, (1983).

उपरोक्त तालिकाओं में वर्णित विभिन्न पर्यटन स्थलों से इस प्रान्त में उपलब्ध पर्यटन क्षमता का पता चलता है। पर्यटन उद्योग यहाँ की आय का मुख्य स्त्रोत है। यद्यपि इस विषय मे एक दम सही आंकड़े तो उपलब्ध नहीं है किन्तु इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि यहाँ पर्यटन उद्योग तीव्रता से बढ़ रहा है। उदाहरण के लिये सन् 1974 में जबकि केवल 22,000 विदेशी पर्यटकों के इस प्रदेश में आने के प्रमाण हैं, सन् 1977 में 46,000 पर्यटकों ने इस प्रान्त का भ्रमण किया। पिछले कुछ वर्षों में तो यह संख्या 1,00,000 प्रतिवर्ष से भी अधिक जा पहुंची है। आधुनिक तकनीकी विकास एवं विभिन्न सामाजिक आथिक परिवर्तनों के कारण आने वाले वर्षो में पर्यटन आन्दोलन के और अधिक फलने-फूलने की सम्भावनायें हैं। अतः पर्यटन के विकास के लिये नये सिरे से सोचने की आवश्यकता है।

पर्यटन द्वारा पारिस्थितिक संसाधनों का बड़े पैमाने पर उपभोग होता है। अतः पर्यावरण संरक्षण एवं बड़े पैमाने पर पर्यटन के मध्य एक सीधा - साधा सम्बन्ध है। ज्यों-ज्यों पर्यटन का विकास होगा, पर्यावरण संरक्षण के मार्ग में उतनी ही बाधायें खड़ी होंगी क्योंकि पर्यटक अधिक सुख सुविधाओं एवं आराम की तलाश में जाने अनजाने पर्यावरण का क्षरण करते ही हैं। यह समस्या गुलमर्ग, सोनमर्ग, पहलगाम, अमरनाथ, वैष्णोदेवी आदि मुख्य पर्यटन केन्द्रों, तीर्थस्थलों में और भी गम्भीर है। इसलिये यह अति आवश्यक है कि इन क्षेत्रों में पर्यटन का विकास नियोजित तरीके से किया जाय जिससे कि यहाँ के भंगुर परितत्र को और अधिक विनाश से बचाया जा सके। पर्यावरण विनाश का एक प्रत्यक्ष उदाहरण श्रीनगर की डल झील है जो कि पिछले 80 वर्षों में सिकुड़ कर आधी हो गई है। सन 1907 के उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार इस झील का क्षेत्रफल 24 वर्ग किमी० था जो कि अब घट कर मात्र 11-12 वर्ग किमी० रह गया है। इतना ही नही, इस झील के चारों ओर बनाये गये हाऊस बोट आदि से यह समस्या और भी बढ़ गई है। हाल ही में समाचार पत्र में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार हाऊस बोटों की संख्या सन् 1975 में 400 से बढ़कर सन 1987 में 1400 तक हो गई है व अभी भी यहाँ निर्माण कार्य रुके नहीं हैं। परिणाम स्वरुप इन हाउस बोटों एवं अन्य होटलों से बहने वाला सम्पूर्ण मल-मैल, कूड़ा-करकट इस झील में डाला जाता है। जिससे न केवल इस झील का जल प्रदूषित हो गया है अपितु जलीय वनस्पति एवं जन्तुओं की संख्या में भी भारी कमी हो गई है।

पर्यटन द्वारा किये जा रहे अन्य सीधे विनाशकारी प्रभावों में पर्यटकों द्वारा फूल तोड़ना, पिकनिक आदि के दौरान जंगल में खाना पकाना, कूड़ा करकट फेंकना, पेड पौधों को कुचलना व तापने के लिए लकड़ी जलाना आदि गतिविधियां प्रमुख हैं। पर्यटन के परोक्ष प्रभाव इससे भी कहीं अधिक गम्भीर हैं जिन पर अत्यधिक ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण विभिन्न गैर-नियोजित विकास गतिविधियाँ हैं जो केवल पर्यटकों को सुख - सुविधायें पहुँचाने के नाम पर यहाँ के पर्यावरण का ह्रास कर रही हैं। अन्धाधुन्ध पेड़ों की कटाई से पहाड़ नंगे हो गये है और जहाँ कभी सघन वनस्पतियां दिखाई देती थीं, वहाँ पथरीले पहाड़ अपनी करुण कहानी कहते नजर आते हैं। विकास के नाम पर किये जाने वाले सड़क, होटल, टूरिस्ट हट आदि का निर्माण, विद्युतीकरण आदि ने यहाँ की जैवीय सम्पदा को विनाश के कगार पर पहुंचा दिया है। प्राकृतिक संसाधन संकुचित हो गये हैं। उदाहरण के लिए यहाँ पाये जाने वाले कस्तूरी मृग, हिम तेंदुए, बारहसिंघे आदि जन्तु, एवं विभिन्न

चीड़ के वन लुप्तप्राय हो गये (गुप्ता[2]) डल, मानसबल, वुलर, कौसरनाग, होकरसर आदि झीले न केवल प्रदूषित हो गई हैं अपितु, विनाश के कगार पर हैं। झेलम, सिन्धु, चेनाब आदि नदियों में बाढ़ की घटनायें अपेक्षाकृत पहले से कहीं अधिक बढ गई हैं। जिसके परिणाम स्वरुप यहाँ के लघु एवं दीर्घ जलवायु परिस्थितियों में भारी बदलाव के लक्षण स्पष्ट दिखने लगे हैं। जंगलों के कटाव का स्पष्ट प्रभाव चारी शरीफ के निकट अर्जन गर्जन बांध में स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है जो कि मात्र 5 वर्षों में ही सतही भूमि के कटान के कारण बालू से भर गया है। इसी प्रकार मृदा हानि द्वारा हो रहे पहाड़ों का स्खलन जम्मू श्रीनगर राष्ट्रीय राजमार्ग पर पतनी एवं नासरी स्लिप में देखा गया है। सड़क एवं बांध निर्माण के लिये किये जा रहे विस्फोट तथा वाहनों के अत्यधिक प्रयोग से पर्यावरण प्रदूषण की समस्या और भी गम्भीर हो गई है जिसने इस प्रान्त की वानस्पतिक सम्पदा को भारी नुकसान पहुंचाया है।

सुधार के उपाय:

पर्यटन द्वारा किये जा रहे उपरोक्त विनाशकारी प्रभावों से एक प्रश्न उठता है कि क्या पर्यटन को तुरन्त बन्द कर दिया जाये या पर्यटक गतिविधियाँ कम कर दी जायें। उत्तर एक प्रभावकारी "नहीं"। समस्या का हल पर्यटन बन्द करने में नहीं अपितु सुनियोजित विकास योजनाओं एवं पर्यावरण प्रबन्धों में निहित है। यह विचारधारा कोई नई नहीं है। शायद सरकार भी इस बात से पूरी तरह परिचित है कि पर्यटन उद्योग के विकास के लिये नियोजित योजनाबद्ध कार्यक्रमों की आवश्यकता है। अभी हाल ही में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के लिये गठित जम्मू एव कश्मीर परिषद की बैठक तथा जम्मू के निकट महामाया वन परियोजना सरकार द्वारा किये जा रहे प्रयासों को दशति हैं, किन्तु सही मायनों में स्वस्थ पर्यावरण के विकास के लिये सरकारी स्तर पर कुछ कठोर निर्णय लेने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए डल झील के किनारे बनाये जा रहे हाउसबोटों की संख्या में कमी व आगामी निर्माण कार्यों को पूरी तरह रोकना होगा। इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों को जीव मंडल निचय, राष्ट्रीय पार्क, वन्यजीव अभयारण्य तथा जलीय निचय के रुप में संरक्षित क्षेत्र घोषित किया जाना चाहिये। संरक्षित क्षेत्रों के रुप में घोषित करने के लिये ऊधमपुर जिले के गूल क्षेत्र के आसपास की पहाड़ियों, बारामूला जिले के सरबल झील एवं किशन गंगा घाटी, कोल्हाई गेलशियर, अफरवत तथा सिमथन दर्रा आदि के नाम यहाँ सुझाये जा रहे हैं। कुछ वैकल्पिक पर्यटक स्थलों का विकास भी किया जाना चाहिये जिससे कि प्रमुख पर्यटन-महीनों में आने वाली भीड़ को इन स्थानों की ओर आकर्षित किया जा सके। ऊधमपुर जिले के गूल एव पंचरी क्षेत्र इस उददेश्य के लिये विकसित किये जा सकते हैं। विभिन्न सामाजिक वानिकी कार्यक्रम उच्च प्राथमिकता तथा पवित्र भावना से क्रियान्वित किये जाने चाहियें। नंगे पहाड़ी क्षेत्रों में तीव्रता से बढ़ने वाले ईधन के पेड़, चारे की फसलें तथा अन्य आर्थिक महत्व के पौधे बड़ी संख्या में लगाये जाने चाहिये। पर्यटकों द्वारा कम हस्तक्षेप वाले क्षेत्रों में कुछ महत्वपूर्ण एवं विरल पादपजातियों का "इन-सीटू" उत्पादन किया जाना चाहिये जिससे कि उन्हें विलुप्त होने से बचाया जा सके।

पर्यावरण विशेषज्ञों, सरंक्षण-वादियों एवं सरकारी एजेन्सियों द्वारा पर्यावरण संरक्षण के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है किन्तु परिणाम विशेष उत्साहजनक नहीं है। यह बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण विषय

---

2. गुप्ता, बी. आर.: अवेअरनेस 1: 43-46, (1977)ण

है कि पर्यटन को बढ़ावा देने के हिमायती, इस उद्योग को बढ़ाने की धुन में पर्यावरण के विषय में या तो बिल्कुल ही नहीं सोचते अथवा इसकी रक्षा हेतु नगण्य प्रयास ही करते हैं जिससे कि दिन प्रतिदिन पर्यावरण का क्षरण होता जा रहा है। पुराने अनुभवों ने हमें दिखा दिया है कि प्राकृतिक संसाधन एक बार समाप्त होने के बाद पुनः प्राप्त नहीं किये जा सकते। अतः यह हमारा पुनीत कर्तव्य है कि अपने पर्यावरण की रक्षा, जिसके हम भी एक अंग है, हर कीमत पर करें, तभी हम सही मायने में अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकेंगे।

तालिका-1 पर्यटकों के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थान:

ऐतिहासिक स्थल	धार्मिक स्थल			प्राकृतिक सौन्दर्य स्थल		अन्य महत्वपूर्ण स्थल				
	मन्दिर	मस्जिद	मोनास्ट्री	प्राकृतिक दृश्यावली	झीलें	बाग	मछली पकड़ने के स्थल	पर्वतारोहण	वन्य जन्तु स्थल	खेल
बहू किला	वैष्णव देवी	हजरत बल	हेमिस गोम्पा	श्रीनगर घाटी	डल	शालीमार	एरिन	अमरनाथ	गुलमर्ग	श्रीनगर
हरीपर्वत किला	रघुनाथ जी	चरारी शरीफ	लेह	लोलाब घाटी	वूलर	निशात	फिरोजपोरा	कोल्हाई	किश्तवार	गुलमर्ग
अवन्तीपुर	रणवीरेश्वर	जियारत बाबा रेशी	रिंगदोम गोम्पा	गुलमर्ग	मानसबल	चश्माशाही	गंगबल	आरु	ओवेरा	चौग्लम
मारतन्ड	सुध महादेव	शाह हमदान		पहलगाम	मनसर	चार चिनार	वेरीनाग	लिडरवट	ओवेरा आरु	
पाटन	अमरनाथ	पाघन	मुलबेक गोम्पा	अनन्तनाग	सुरिनसर	चोग्लमसर	नीरु	अफरवत	रामनगर	
बुर्जाहोम	मट्टन	जामिया मस्जिद		अच्छबल	कौसरनाग		कोकरनाग	गंगबल	नंदिनी	
पान्डेथान	शंकराचार्य	इब्राहीम मस्जिद	सेमो गोम्पा	गान्दरबल	मरसर		शेषनाग	शेषनाग	त्रिकुटा	
भामज्	पुरमन्डल	पीर रोशन	संकर गोम्पा	कोकरनाग	तुलियान		लिद्दर	सोनासर	सुरिनसर	
शादीपूर		लेह मस्जिद	लिकिर गोम्पा	सोन मर्ग	अलपत्थर		अखनूर	हरमुख	मनसर	
लेह खार महल			लामायुरु	वेरीनाग	कन्तरनाग		किश्तवाड़	लामायुरु	दाचीगाम	
			अलेही गोम्पा	जांसकर	गंगबल		विशनसर	पदम	हेमिस	
				कारगिल	होकरसर		किशनसर			
				पत्नीटाप						

तालिका-2: वानस्पतिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थान

जीव मंडल आरक्षण क्षेत्र	राष्ट्रीय उद्यान	अभयारण्य	उद्यान	उच्च पर्वतीय घास के मैदान	वन	वनस्पति विविधता क्षेत्र	जलीय प्राकृत-वास
गुलमर्ग ओवेरा-आरु	दाचीगाम किश्तवाड़ हेमिस	ओवेरा रामनगर नन्दिनी त्रिकुटा सूरिनसर मनसर	शालीमार निशातबाग चश्माशाही कोकरनाग चोग्लामसर चार चिनार	गुलमर्ग सोनमर्ग खिलनमर्ग तंगमर्ग यूसमर्ग लियनमर्ग सरबल थजवास आरु	पहलगाम अनन्तनाग त्रागबल पत्नीटाप लिद्दरवाट अच्छबल अहरबल अफरवात थजवास कुंगवतन	किशनगंगा घाटी गुरेज सरबल हरमुख किश्तवाड़ अफरवात जान्सकर हेमिस	डल वूलर मनसबल मनसर किशनसर विशनसर शोरसर तरसर मरसर अल्पत्थर गंगबल कातरनाग

थाइलाकोस्पर्मम सेस्पिटोसम (कैम्ब0) शिश्किन एक विशिष्ट शीत मरुस्थलीय पौधा

इकाइनोप्स कार्निजेरुस डीसी0 समशीतोष्ण एवं शीत मरुस्थल में प्रायः पाये जाने वाला पौधा

हिप्पोफी रहैम्नोइडिस लिन० - एक उपयोगी पौधा।

कुएरकस इन्काना रॉक्सवर्घ (वाज) व कु० डायलाटाटा लिण्डले (खिरास)
चारे की भेंट

सिम्बीडियम हुकेरियानम वालिच एक्स लिन्डले एक सुन्दर एवं दुर्लभ आर्किड।

सिम्बीडियम इर्गडिओइडेस डी० डान - एक सुन्दर एवं संकटग्रस्त आर्किड।

डेन्ड्रोबियम हेटरोकार्पम वालिच एक्स लिन्डले   आकर्षक आर्किड

प्लियोनि प्रीकाक्स (स्मिथ) डी० डान   एक अत्यन्त आकर्षक किन्तु दुर्लभ आर्किड

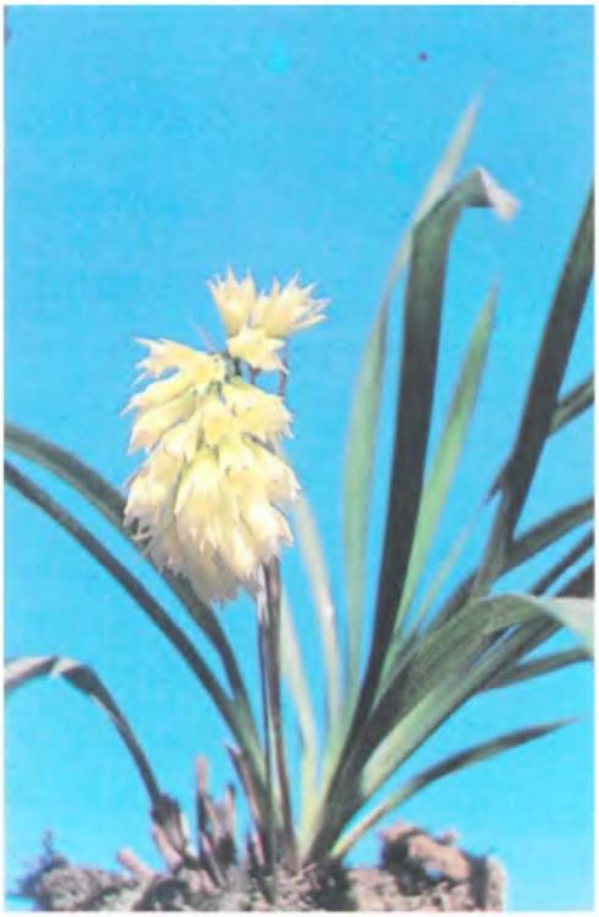

सिम्बीडियम इलीगेन्स लिन्डले
एक सुन्दर एवं दुर्लभ आर्किड

गेनियोला फाल्कोनेरी हुक० एफ०
एक दुर्लभ मृतजीवी आर्किड

उत्तरी परिमण्डल के नवस्थापित कम्प्यूटर कक्ष का एक दृश्य

उत्तरी परिमण्डल में नवस्थापित उत्तक सवर्धन प्रयोगशाला का एक दृश्य

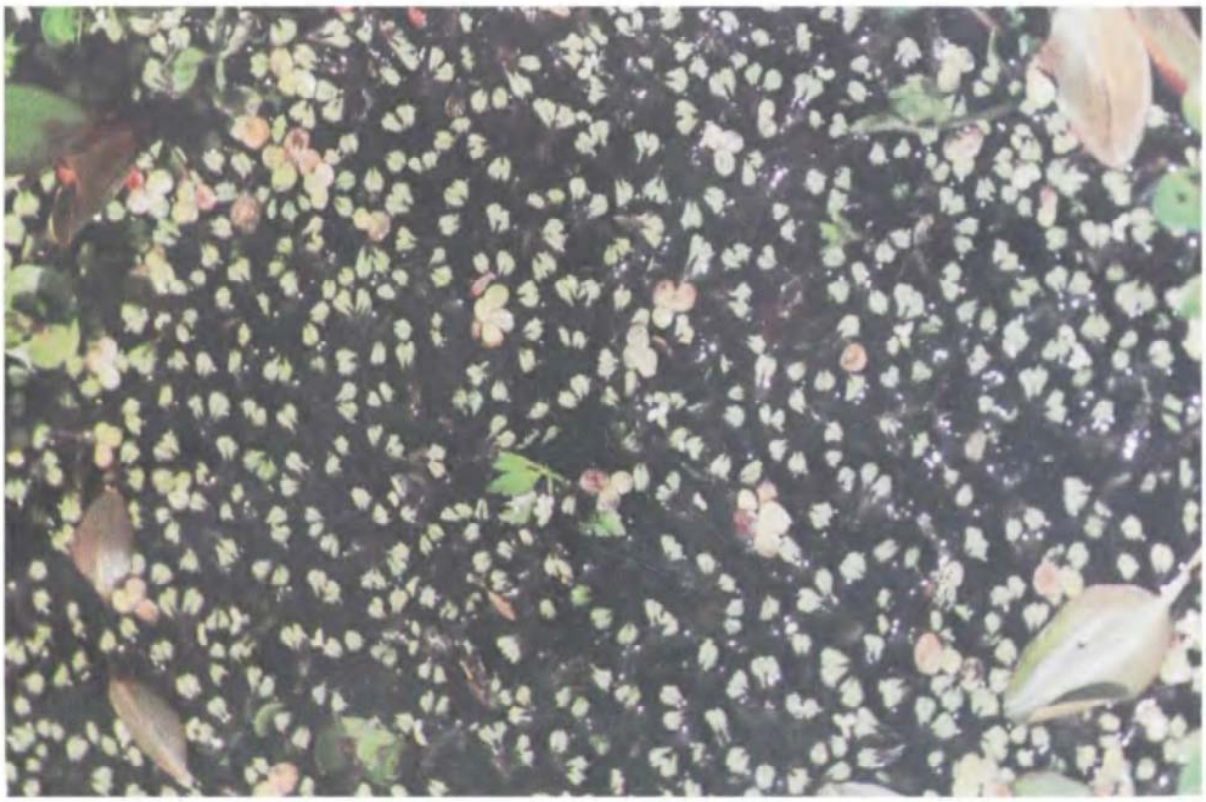

रिक्सियोकार्पस नैटन्स कोर्डा उष्ण कटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय अनुक्षेत्र के नम-स्थलों में प्रायः पाया जाने वाला एक जलीय लिवरवर्ट।

मार्केन्शिया पॉल्मामार्फा लिन० शीतोष्ण अनुक्षेत्र में प्रायः पाया जाने वाला एक स्थलीय लिवरवर्ट।

फोर्मास फोमेन्टेरियस (फ्राइस) किक्स शीतोष्ण वनों में प्रायः पाई जाने वाली परपोषी कवक जाति

ग्यॉन्जिपेल्लिस डेलेक्टेन्स (पैक्क) मुरिल समशीतोष्ण वनों में पाई जाने वाली एक विरल व परपोषी कवक जाति

"ऋणी तेरे"

भगवती प्रसाद उनियाल

उतर कर क्रोड़ से तेरी
जगत कल्याण को तत्पर।
सरस जलधार बह आई,
हिमालय! हम ऋणी तेरे।।

शिखर पर श्वेत हिम- चादर,
हरित परिधान है तन पर।
कि आंखें देख हरषाई,
हिमालय! हम ऋणी तेरे।।

कहीं तूफान बर्फीले
कहीं है रेत के टीले।
कि दुनिया देख भरमाई,
हिमालय! हम ऋणी तेरे।।

पाकर गंध पुष्पों से,
चुराकर रंग पुष्पों से।
फिजा रंगीन हो आई,
हिमालय! हम ऋणी तेरे।

तेरे उत्तुंग शिखरों ने
भरा उत्साह सीनों में
कि तन में स्फूर्ति भर आई
हिमालय! हम ऋणी तेरे।।

तपस्यारत गुफाओं में,
तपस्वी कंदराओं में।
कि श्रद्धा मन में भर आई,
हिमालय! हम ऋणी तेरे।

असम्भव जल बिना जीवन,
न सम्भव वायु बिन जीवन।
कि दोनों तुमसे ही पाई,
हिमालय! चिर ऋणी तेरे।।